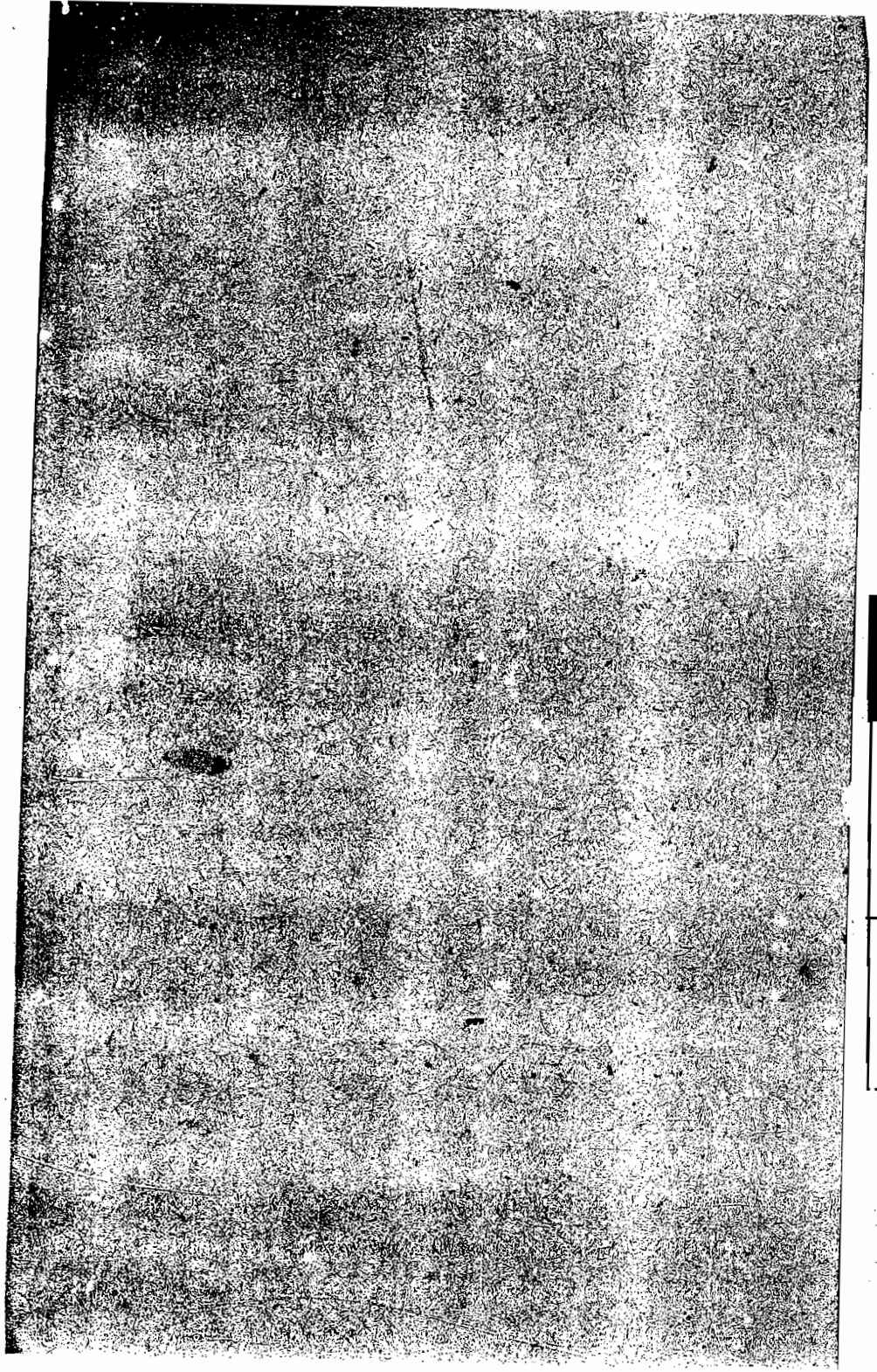

According to the syllabus of C.C.I.M., New Delhi.

शारीर क्रिया विज्ञान

(भाग २)

वैद्य शिवाजी वाव्हल एम्. एफ्. ए. एम्.	वैद्य राजेंद्र देशपांडे एम्. डी (शारीर क्रिया, कायचिकित्सा)
प्राचार्य, विभाग प्रमुख, शरीर रचना विज्ञान, गं. शा. गुणे आ. म. वि., अ. नगर. (निवृत्त),	**विभाग प्रमुख,** शारीर क्रिया विज्ञान, आयुर्वेद महाविद्यालय, निगडी, पुणे – ४४. फोन – (०२०)२७६५९५७८ Cell : 9226810630
विभाग प्रमुख, शरीर रचना विज्ञान, येरला आयुर्वेद महाविद्यालय, खारघर, मुंबई.	

शंतनू प्रकाशन

www.shantanuprakashan.com

ISBN-978-93-80414-01-0

शंतनू प्रकाशन

www.shantanuprakashan.com

Copyrights © 2010 with the Publisher. All the rights reserved.

प्रकाशक	-	शंतनू शिवाजी वाव्हळ (B. E. Production)
पुणे		फ्लॅटक्र. १३+१४, साक्षात्कार को. ऑप. हाउसिंग सोसा., १२८, बुधवार पेठ, पुणे – ४११००२
	Cell :	98 22 08 55 06
अहमदनगर		दिल्ली गेट, सातभाई मला, डी. एड्. कॉलेज के पास, अहमदनगर – ४१४००१.
	Ph. :	0241 - 2 321724

Email : shantanu@shantanuprakashan.com

Web : www.shantanuprakashan.com

DOWNLOADED FROM
WWW.AYUTECH.NET
AyuTech™
WHATSAPP - 9420697079

Price : 175 /-

लेखक परिचय

वैद्य राजेंद्र देशपांडे

- एम्। डी।, शारीर क्रिया विज्ञान एवं कायचिकित्सा ।
- आयुर्वेद चिकित्सा तज्ञ।
- विभाग प्रमुख, शारीर क्रिया विज्ञान, आयुर्वेद महाविद्यालय, आकुर्डी, पुणे, महाराष्ट्र।
- शालेय स्तर से शैक्षणिक गुणवत्ता, नाट्य, वक्तृत्व आदि में अनेक पारितोषिक प्राप्त।
- राज्यस्तरीय, राष्ट्रीय एवं आंतरराष्ट्रीय शास्त्रीय परिसंवादों में तथा नियतकालिकों में शोध निबंध प्रस्तुत।
- शास्त्रीय परिसंवाद तथा आरोग्य विषयक शिबिरों का यशस्वी आयोजन।
- पदवी एवं पदव्युत्तर परीक्षाओं के लिए परीक्षक, मॉडरेटर एवं पेपर सेटर के स्वरुप में १५ वर्ष कार्यरत।
- आदर्श शिक्षक पुरस्कार २ बार, मा. वा. कोल्हटकर संशोधन पुरस्कार।
- वृत्तपत्र, मासिकों के आरोग्य विषयक स्तंभों में सातत्यपूर्ण लिखाण।
- आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर आरोग्य विषयक कार्यक्रमों का संचालन तथा तज्ञ के स्वरुप में सहभाग।
- आयुर्वेद शास्त्र विषयक अनेक ग्रंथों का लेखन।
- आयुर्वेद प्रचार-प्रसारार्थ अमरीका, जर्मनी, स्विट्झर्लंड, स्पेन, इटली आदि देशों का का दौरा।

वैद्य शिवाजी वाव्हळ

- प्राचार्य, गं. शा. गुणे आयुर्वेद महाविद्यालय, अहमदनगर, महाराष्ट्र।
- विभाग प्रमुख, शरीर रचना विज्ञान, गं. शा. गुणे आयुर्वेद महाविद्यालय, अहमदनगर, महाराष्ट्र।
- विभाग प्रमुख, शरीर रचना विज्ञान, येरला आयुर्वेद महाविद्यालय, खारघर, मुंबई।
- सिनेट सदस्य, महाराष्ट्र आरोग्य विज्ञान विद्यापीठ, नासिक (Principle forum)।
- आयुर्वेद चिकित्सा तज्ञ।
- पी. एच्. डी. मार्गदर्शक एवं परीक्षक।
- संचालक, आयुर्वेद शास्त्र सेवा मंडल, अहमदनगर, महाराष्ट्र।
- पुणे विद्यापीठ, तथा महाराष्ट्र आरोग्य विज्ञान विद्यापीठ, नासिक द्वारा मान्यताप्राप्त अनेक ग्रंथों का लेखन।
- 'शरीर रचना विज्ञान' विषय में ३४ वर्ष अध्यापन अनुभव।
- पदव्युत्तर (एम्. डी.) अध्ययन के लिए पुणे विद्यापीठ मान्यताप्राप्त प्राध्यापक।
- एम्. डी. आयुर्वेद प्रिलिमिनरी एवं फायनल परीक्षा के लिए मार्गदर्शक सूचनाओं पर विमर्श करने के लिए पुणे विद्यापीठ के Basic board of studies द्वारा नियुक्त उपसमिती में कार्य।
- शरीर रचना विज्ञान - प्रात्यक्षिक पुस्तिका की निर्मिति करने के लिए Basic board of studies द्वारा नियुक्त उपसमिती में कार्य।
- संचालक, लक्ष्मीनारायण पतसंस्था, अहमदनगर।
- उपाध्यक्ष, अहमदनगर जिला स्वकुल साली समाज।
- आयुर्वेद महाविद्यालय, संगमनेर यहां प्राचार्यों के Interview के लिए पुणे विद्यापीठ द्वारा नियुक्त तज्ज्ञ।
- भारती विद्यापीठ, पुणे तथा आयुर्वेद महाविद्यालय, संगमनेर एवं राहुरी यहां अध्यापकों के Interview के लिए पुणे विद्यापीठ द्वारा नियुक्त शरीर रचना विषय तज्ज्ञ।
- सचिव, निमा, अ. नगर शाखा (निवृत्त)।
- खजाँची एवं सचिव, आयुर्वेद महाविद्यालय अध्यापक संघ (निवृत्त)।
- मानद वैद्यकीय अधिकारी, अवतार मेहेर बाबा ट्रस्ट संचलित धर्मार्थ रुग्णालय।
- व्याख्याता, योग प्रवेश एवं योग परिचय कोर्स (योग विद्याधाम, नासिक द्वारा संचलित)।

मनोगत

जागतिक स्तर पर लोकप्रियता एवं लोकमान्यता प्राप्त आयुर्वेद का अध्ययन करनेवाले सभी छात्रों का अभिनंदन। प्रथम वर्ष बी.ए.एम्.एस्. यह आयुर्वेद की शैक्षणिक इमारत की नींव ही है। प्रथम वर्ष में शारीर क्रिया विषय, **मनुष्य शरीर के प्राकृत घटकों एवं क्रियाओं का ज्ञान कराता है।**

इस विषय में वर्णित संकल्पनाएं, केवल तृतीय वर्ष तक ही नहीं, बल्कि यशस्वी चिकित्सा करने के लिए भी उपयुक्त हैं। आप सभी छात्र आयुर्वेद अध्ययन का प्रारंभ कर रहे हैं, यह समझते हुए ग्रंथ की भाषा सुलभ एवं आकलनीय करने का संपूर्ण प्रयत्न किया गया है। आवश्यक स्थानों में समर्पक आकृतियां, Charts, Tables भी दिए हैं।

C.C.I.M., New Dehli द्वारा निर्धारित अभ्यासक्रम (Syllabus) पूर्णतः मुद्रित कर **अभ्यासक्रम का प्रत्येक मुद्दा ग्रंथ में किस पृष्ठ पर वर्णित है, उसका पृष्ठक्रमांक मुद्रित किया है,** अतः वस्तुतः यह ग्रंथ अभ्यासक्रम के अनुसार रचित है, ऐसा आत्मविश्वासपूर्वक कहा जा सकता है।

अंतिम परीक्षा के लिए शारीर क्रिया विज्ञान विषय की प्रत्येक ९० गुण की २ प्रश्नपत्रिकाएं होती हैं। इसके अनुसार हमने **शारीर क्रिया विज्ञान – भाग १, शारीर क्रिया विज्ञान – भाग २,** पाठ्यांश की Rapid rivision के लिए - **शारीर क्रिया विज्ञान – Handbook,** श्लोक मुखोद्गत करने के लिए - **शारीर क्रिया विज्ञान – श्लोकावली** ऐसे विविध ग्रंथ सुलभ अध्ययन तथा यशःप्राप्ति के लिए प्रकाशित किए हैं, उनका अवश्य लाभ उठाएं।

श्री धन्वन्तरी के आशीर्वाद, सभी सहकारी अध्यापकवृन्द का सहकार्य एवं छात्रों का लोभ इन्हीं की प्रेरणा से हम यह कार्य सम्पन्न कर सके।

आयुर्वेद के छात्रों के लिए अनेकानेक उपयुक्त ग्रंथ प्रकाशित करनेवाले शंतनू प्रकाशन के श्री. शंतनू शिवाजी वाव्हळ के भी हम आभारी हैं।

धन्यवाद।

लेखक

अभ्यासक्रम

द्वितीय प्रश्नपत्रम् - गुणांक १००

विभाग १ - ५० अंकाः

गट १

१) आहारस्य रसधातोः उत्पत्ति वर्णनम् ----- २२
रसायनी क्रिया (And Study of Lymphatic System)
रसधातोः स्थानगुणकर्माणिच, रस क्षय वृद्धि, लक्षणानिक, ----- २९
रसधातु प्रमाणाम् ----- २३
अष्टविध सार वर्णनम्
त्वकसार पुरुषस्य लक्षणम् ----- २७
लसिकास्याः उत्पत्तिः कार्यम् संवहनम् च ----- ३१
(And Study of Lymph Formation, Transport, and Functions etc.)

२) रक्तधातोत्पत्ति, स्थानम्, रक्तवह स्त्रोतसः क्रिया वर्णनम्,
रंजक रसरागत्वम् ----- ४४
शुद्ध रक्त लक्षणम्, रक्तस्य विशिष्टत्वं कार्यच वर्णनम् ----- ४५
(रक्तस्य संगठनम्), (Composition of Blood) ----- ५४
विविध रक्तपेशिका उत्पत्ती, (Haemopoesis Process) ----- ६२
रक्तस्कंदन प्रक्रिया वर्णनम्
(And Study of Blood Clotting) ----- ६३
रक्तवर्गस्य ज्ञानम् (Study of Blood Groups, Study of Blood in Various Points Like Definition, Composition, Formation, Function etc.) ----- ६६
रक्तसार पुरूषरूप लक्षणम् ----- ४९
रक्तधातोः वृद्धि क्षय लक्षणानि वर्णनम् ----- ५०

गट २

१) मांसधातु वर्णनम् - उत्पतिः, मांस - पेशी सूत्रस्य स्वरुपम्, गुणकर्म स्थान वर्णनम्,
मांसपेशी संकोचन क्रिया, तज्जन्य परिवर्तन वर्णनं च ----- ७७
(And Study of Muscle Tissue In Various Aspects Like Composition, Structure, Type, Functions etc.) ----- ८४
मांससार पुरुषस्य लक्षणम् ----- ८१
क्षय वृद्धि लक्षणानि च ----- ८३

२) मेदोधातु वर्णनम् - उत्पत्तिः, गुण, कर्म, स्थान, मेदोवह स्त्रोतस वर्णनम् ----- ९५
मेदसार पुरुष लक्षणम् ----- ९७
तस्य क्षयवृद्धि लक्षणानि च ----- ९९
(And Study of Adipose Tissue in Various Aspects Like Composition, Functions, etc.) ----- १०१

३) अस्थिधातु वर्णनम् - उत्पतीः, स्वरूपं च ----- १०६
अस्थि वातयोः आश्रयाश्रयी भाव वर्णनम् ----- १०५
अस्थिवह स्त्रोतसां क्रिया वर्णनम्, तस्य कार्यवर्णनम् ----- १०४
अस्थि सार पुरुषस्य लक्षणम् ----- १०९
क्षयवृद्धि लक्षणानि च ----- १११
(And Study of Osseous Tissue in Various Aspects Like Composition, Functions etc.) ----- ११४

४) मज्जाधातु वर्णनम् - उत्पत्ति, तस्य स्वरुप, गुण, कर्माणि स्थानं च वर्णनम् ----- १२०
मज्जासार पुरुषस्य लक्षणम्, क्षयवृद्धि लक्षणं च ----- १२५
(And Study of Bone Marrow And Nervous Tissue) ----- १२६

गट ३

१) शुक्रधातु वर्णनम् - उत्पत्तिः स्थानम्, शुक्रवहस्त्रोतसां वृषणयोः क्रिया वर्णनम. तस्य स्वरूपं लक्षणम् च ----- १३३

शुक्रसार पुरुषस्य लक्षणम् ----- १४२

(And Study of Male and Female Genital System) ----- १४५

२) ओज स्वरुप भेद - प्रमाणम्, कार्यम्, महत्वम् च ,तस्य स्थानम्, ओज बलमोश्च वर्णनम्, तस्य भेदः ----- १५०

व्याधी क्षमता वर्णनम् (And Study of Immunity) ----- १५८

३) उपधातोत्पत्ति संख्या ----- १६३

स्तन्य स्वरुपं उत्पत्तिः, गुणकर्माणि, (And Study of Breast Milk) ----- १६५

आर्तवोत्पत्तिः, भेद स्वरुपम् ----- १६८

आर्तवचक्र प्रक्रिया वर्णनम् (And Study of Menstrual Cycle) ----- १७५

त्वचा उत्पत्तिः भेद कार्याणि वर्णनम् च ----- १८२

विभाग २ – ५० अंकाः

गट ४

१) आहारधातुमलाना संख्या ----- १९१

पुरीषमूत्रस्वेद मुख्य मलानां उत्पत्तिः, स्थानम्, कार्य च ----- २०७, १९१, २१६

(And Study of Urine, Faeces, Sweat) ----- १९६, २१३

वृक्क, बस्ति, मूत्रवहस्त्रोतसं क्रिया वर्णनम् ----- १९६

(And Study of Urinary System) ----- १९६

२) पंचज्ञानेन्द्रियाणां वर्णनम् ----- २२६, २२७

तेषां अधिष्ठानम्, रुप, रस, गंध आदि ज्ञानग्रहण क्रियावर्णनम् ----- २२७

प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियस्य परिचयः ----- २२७ - २३१

(And Study of Sensory Organs, Centres And Sensory Pathways) ----- २३१

गट ५

१) स्वतंत्र परितंत्र नाडी संस्थानस्य वर्णनम् ----- २५८

विविध संज्ञा चेष्टा क्षेत्राणाम् ----- २५९

(Study of Central Nervous System And Autonomous Nervous System) ----- २७३

अिडा, पिंगला, सुषुम्ना एव षट्चक्र निम्णाणा ----- २७५

२) मनसः स्वरुप, अणूत्वम्, एकत्वम्, ज्ञान कर्मेन्द्रियामत्वंचं, मनसः स्थानम्, संज्ञावह स्त्रोतस वर्णनम्, मानस विषय - चिंत्यादि वर्णनम् तस्य कार्यत्वम्, संकल्पत्वम्, इंद्रियनिग्रहत्वम् च (And Study of Mind) ----- २८३, ३०३

मनः चेतयिता आत्मा तस्य गुणः, सुखदुःखानुभव, ज्ञानोत्पत्तिकारणम्, आत्मान्मनइंद्रिय विषय सन्निपातत्वम् तस्य अभावः अज्ञानम् ----- २९३

निद्रा उत्पत्तिः स्वप्नोपत्तिश्च वर्णनम् (And Study of Sleep, Dreams etc) ----- २९९

मनोवह स्त्रोतस दोष वर्णनं च इंद्रियग्रहणं, ज्ञानसंवहनम् ----- २८५

प्राणस्य ज्ञानमयत्वं, धारकत्वं बलदायकत्व च वर्णनम् ----- २८८

हृदयास्थित साधकपित्तस्य अभिप्रेतार्थ साधकत्वम् ----- २९०

उदानव्यानवायोः इंद्रियप्रेरकत्वम् ----- २८९

बुद्धिः सहकारत्वम् सारासार विवेकत्वं च ----- २८९

मानस शारिर दोषयोः पारस्पारिक संबंधः, तेषाः प्रभावः ----- २२१

पुरुषभिन्नत्वे मनसः भिन्न स्वरुप वर्णनम् ----- २९१

शारीर क्रियात्मक मनोविज्ञान तत्वविवेचनं च । ----- २८१

गट ६

ग्रंथीसंस्थानम् - विभिन्न अंतःस्त्रावी ग्रंथीनां वर्णनं, कार्य वर्णनम् च तेषां शारिर मानस प्रभाव वर्णनम् च तेषां क्षयवृद्धिजन्य लक्षणानि वर्णनम् च (Study of Endocrine System, Endocrine Glands Etc.) ----- ३०७

अनुक्रमणिका

प्रकरण १	धातु – उपधातु मल विचार	-----	१
प्रकरण २	धातुओं का पोषणकर्ता – आहाररस	-----	१७
प्रकरण ३	रसधातु के कारण ताजगी	-----	१९
प्रकरण ४	जीवन प्रदान करनेवाला रक्तधातु	-----	३९
प्रकरण ५	शरीर को आकार देनेवाला मांस धातु	-----	७५
प्रकरण ६	शरीर में स्निग्धता का संचय – मेद धातु	-----	९३
प्रकरण ७	जीवन का आधार – अस्थि धातु	-----	१०३
प्रकरण ८	पूरण करनेवाला – मज्जा धातु	-----	११७
प्रकरण ९	नवनिर्मिती के लिए शुक्रधातु	-----	१३१
प्रकरण १०	ओज – सर्व धातुसार	-----	१५१
प्रकरण ११	उपधातु	-----	१६३
प्रकरण १२	मल – विचार	-----	१९१
प्रकरण १३	इंद्रिय विज्ञानम्	-----	२२७
प्रकरण १४	नाडी संस्थानम्	-----	२५९
प्रकरण १५	मन, आत्मा, निद्रा, स्वप्न	-----	२८१
प्रकरण १६	ग्रंथीसंस्थानम्	-----	३०७
	संदर्भ ग्रंथ	-----	३३३

प्रकरण १

धातु – उपधातु मल विचार

शारीर क्रिया – पेपर २ के अभ्यासक्रम का संक्षिप्त स्वरूप

शारीर क्रिया - पेपर २ - विभाग १ में मुख्यतः निम्न मुद्दों के अनुसार अध्ययन अपेक्षित है।

१) आहार रस, रसायनी क्रिया, लसिका उत्पत्ति, कार्य।
२) रस धातु।
३) रक्त धातु - रक्त कार्य, विविध रक्तकेशिका उत्पत्ति, रक्तस्कंदन प्रक्रिया।
४) मांस धातु - मांस पेशी संकोच क्रिया।
५) मेद धातु।
६) अस्थि धातु।
७) मज्जा धातु।
८) शुक्र धातु।
९) ओज, व्याधिक्षमत्त्व।
१०) उपधातु, स्तन्य, आर्तव।

उपरोक्त प्रत्येक धातु का सभी १२ मुद्दों के आधार पर विस्तारपूर्वक आयुर्वेदोक्त विचार और साथही अर्वाचीन फिजिओलॉजी के विषय में तत् सदृश टिश्यू संदर्भ में विचार, C.C.I.M., New Delhi के अभ्यासक्रम के अनुसार अपेक्षित है।

शारीर क्रिया - पेपर २ - विभाग २ में मुख्यतः निम्न विषयों का समावेश होता है।

१) आहार मल, धातु मल, मूत्रोत्पत्ति क्रिया।
२) पंच ज्ञानेंद्रिय - ज्ञान ग्रहण प्रक्रिया (Pathways)।
३) स्वतंत्र, परतंत्र नाडी संस्थान (Central Nervous System), योग - ईडा, पिंगला, सुषुम्ना नाडी वर्णन, षट्चक्र।
४) मन, आत्मा, निद्रा, स्वप्न।
५) ग्रंथिसंस्थान (Endocrine Glands)।

इस ग्रंथ में अभ्यासक्रम में उल्लेखित उपरोक्त मुद्दों का 'नाति संक्षेप, नाति विस्तार' न्याय से विवेचन किया गया है।

इस ग्रंथ का अध्ययन करने से पहले वैद्य राजेंद्र देशपांडे एवं वैद्य शिवाजी वाव्हल लिखित 'शारीर क्रिया विज्ञान - भाग १' इस ग्रंथ का अध्ययन पहले ही किया है, यह समझकर द्विरुक्ति टालने का प्रयत्न किया गया है।

धातु क्या है ?

आयुर्वेद में 'धातु' शब्द का विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ बतलाया गया है।

व्याख्या - शरीर के पोषण, रचना तथा मुख्यतः स्थिरता को जिम्मेदार घटकों को धातु कहा जाता है।

'धृ - धारयति' इस मूल क्रियापद का अर्थ है - **धारण** करना (To Support) तथा **पोषण** करना (To Nourish)।

धृ - धारयति के अन्य अर्थ

१) **दधाति - धत्ते वा शरीर मन प्राणान् इति धातुः।**

शरीर, मन एवं प्राण को आधार देनेवाले घटकों को धातु कहते है।

२) **दधाति - धत्ते वा रसरक्त मांस मेदो अस्थि मज्ज शुक्रधातुन् इति।**

रस, रक्त आदि शरीर घटकों के द्वारा शरीर को आधारभूत होनेवाले घटकों को धातु कहते है।

३) **दधाति - धारयति शरीरसंवर्धकान् इति धातुः।**

शरीर संवर्धन अर्थात् वृद्धि में सहायता करनेवाले घटकों को धातु कहते है।

मूलभूत घटक

- **दोषधातुमलं मूलं हि शरीरम्॥** ... सु.सू.१५/३
- **यस्मात् शरीरं दोषदिमूलं, यथा वृक्षादोनां संभवस्थिती प्रलयेषु मूलं प्रधानं तथा शरीरस्यवातादय इत्यर्थः॥** ... चक्रदत्त

शरीर की **उत्पत्ति, स्थिति, लय** को तीन मूलभूत घटक जिम्मेदार होते हैं - दोष, धातु, मल।

धातु - निरुक्ति, संख्या, नाम

संदर्भ - निरुक्ति - धारणात् धातवः। **संख्या** - सात।

नाम - रस, अस्रक्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र। ... वा. सू. १

धातु - व्यापक अर्थ

शरीर बनाए रखना, उसका आरोग्य, बल उत्तम रखना इसीको शरीर का धारण कहा जाता है। इस प्रकार धारण कार्य, तीनों भी घटक (दोष, धातु, मल) प्राकृत अथवा समस्थिति में होने पर करते रहते हैं। अर्थात दोष तथा मल भी साम्यावस्था में धातुओं के समान ही कार्य करते हैं, अतः चरकाचार्य ने उन्हें भी 'धातु' यह संज्ञा दी है।

ते सर्वे एवंम् धातवः मलाख्याः प्रसादख्याश्च। ... च.सू.२८/४

'दोष - धातु - मल' - परस्पर सापेक्ष स्थिति

१) धातु घटक, शरीर से बाहर उत्सर्जित नहीं किए जाते अथवा ये घटक शरीर से अलग होना हितकर नहीं (अपवाद - शुक्र धातु), किन्तु मल घटक शरीर से निकलना आवश्यक होता है। क्वचित विकृत दोष शरीर से बाहर निकालने पडते हैं।

२) धातु जन्म के उपरान्त क्रमशः वर्धित होते रहते हैं। दोष तथा मल इस प्रकार बढते नहीं।

३) त्वचा तथा अंतर्गत अवयवों का अंतरावरण इनके बीच के भाग में मुख्यतः धातुओं का अस्तित्व होता है। दोष भी विभिन्न अवयवों के आवरणों के स्थान में स्थित होकर पचन आदि कार्य के दौरान अंतरालों में उदीरित होते हैं (स्रवित होते हैं)। मल का विशिष्ट काल तक संबंधित आशयों मे धारण किया जाता है और तत्पश्चात सुयोग्य काल में शरीर से बाहर उत्सर्जन किया जाता है।

धातु अध्ययन का महत्त्व

आयुर्वेद ने स्वस्थ व्यक्ति की व्याख्या करते हुए 'धातु' घटकों को भी महत्त्व दिया है।

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्न आत्मा इंद्रिय मनः स्वस्थ इति अभिधीयते॥ ... सु.सू.१५/४१

किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य का परीक्षण करने के दौरान धातु की द्रव्यतः, गुणतः, प्रमाणतः, कर्मतः साम्यावस्था है या नहीं यह जाँचना अत्यावश्यक है, जैसे - रक्त की मात्रा कम तो नहीं ? मांस क्षय तो नहीं ? अस्थि-संधियों की गतिविधियाँ प्राकृत है अथवा नहीं ?

वात का 'हलचल (गतिविधि)', पित्त का 'पचन' तथा कफ का 'स्थिरता, पोषण, वृद्धि' ये सभी दोषों के कार्य **धातुओं के माध्यम के द्वारा ही** होते हैं।

धातु दूष्य होते हैं

कोई भी व्याधि निर्माण होने के दौरान मिथ्या आहार-विहार के कारण प्रथमतः दोष विकृत हो जाते हैं। तत्पश्चात ये प्रकुपित दोष शरीर के दुर्बल धातुस्थानों पर हमला कर व्याधि उत्पन्न करते हैं।

दूष्य अर्थात् दोषों के द्वारा बिगाडे जानेवाले घटक। इसी लिए धातु और मल को दूष्य कहा जाता है।

व्याधि किस प्रकार निर्माण होती है ?

दोष - दूष्य संमूर्च्छना जनितो व्याधिः ॥

प्रकूपित दोष और दुर्बल दूष्य के विकृत संयोग के कारण (संमूर्च्छना) व्याधि उत्पन्न होती है। अर्थात् धातु उत्तम गुणवत्ता, उत्तम सारता के होने पर शरीर की व्याधि प्रतिकारक्षमता उत्तम बनी रह सकती है। क्वचित दोष प्रकूपित होने पर भी, धातु उत्तम स्थिति में होने से व्याधि की उत्पत्ति टाली जा सकती है। धातु दुर्बल (असार) होने पर धातुओं को बल प्रदान करनेवाली रसायन चिकित्सा (टॉनिक सदृश) देनी पडती है, जैसे - वार्धक्यावस्था में जोडों में दर्द निर्माण होने के लिए वात दोष के साथही दुर्बल अस्थिसंधि भी कारण होता है। अतः अस्थि सारता बनाए रखने के लिए ४० वर्ष की आयु के पश्चात प्रतिदिन सुबह - शाम कम-से-कम एक खजूर खाने का उपदेश करना, यही अस्थिधातु की रसायन चिकित्सा है। किन्तु धातुओं को रसायन चिकित्सा देने की दृष्टि से धातुओं के संघटन तथा गुण-कर्म का ज्ञान आवश्यक है।

धातु शरीर बनाए रखने का कार्य करते हैं

शीर्यते तत् शरीरम्।

शीर्यते = क्षरण होना, यह शरीर का मुख्य धर्म है, प्रवृत्ति है। क्षरण-आपूर्ति, अपचय-चय ये क्रियाएं किसी चक्र के समान अनवरत चलती ही रहती हैं।

Catabolism + anabolism = metabolism

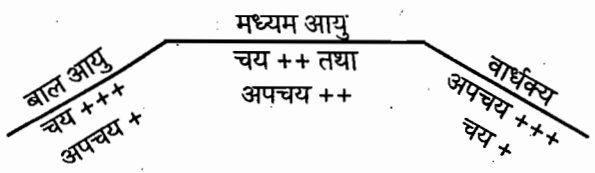

बाल्यावस्था में धातुओं की वृद्धि, पोषण अधिक मात्रा में होती है और वार्धक्यावस्था में धातुओं का क्षरण अधिक मात्रा में होता है।

दोषधातुमलामूलम् हि शरीरम्।

जन्म के समय ही मानवी शरीर दोष, धातु, मल से युक्त होता है। मनुष्यदेह सप्तधात्वात्मक होता है। जन्मतः शुक्रधातु भी उपस्थित होता है। केवल उसकी अभिव्यक्ति कुछ समय के पश्चात होती है। प्रारंभ में शुक्र का कार्य सुप्तावस्था में चलता रहता है। उसके कार्य का प्रकटीकरण पौगंडावस्था में होता है। यही **जात व्यंजन अवस्था** (Maturity - Teen age) है। संक्षेपतः जन्म के समय ही सातों धातुओं की उत्पत्ति होती है, शेष जीवन में होता है - **धातुओं का पोषण**।

धातुओं का पोषण

जीर्ण, क्षरण हुए धातु घटकों का पोषण बाह्यप्राणों के द्वारा होता है। **बाह्य प्राण** का अर्थ है - **अन्न, वायु, जल**। इन बाह्य प्राणों के द्वारा अभ्यंतर प्राणों का (अर्थात **शरीर, इंद्रिय, सत्व, आत्मा**) पोषण होता है।

बाह्यप्राणों का शरीर भाग में **रुपान्तर** करना पडता है। **विजातीय घटकों का** शरीर के **सजातीय घटकों में** रुपान्तर जिस प्रक्रिया द्वारा किया जाता है, वह **पचन** कहलाती है।

अन्नसेवन से ही पचन प्रक्रिया का प्रारंभ होता है। मुख से लेकर **ग्रहणी के अंतिम भाग तक** होनेवाले प्राथमिक पचन को **स्थूल - पचन** कहते है। ग्रहणी के अंतिम भाग में **सार - किट्ट विभजन** प्रक्रिया होती है। इसमें से उपयुक्त (सार भाग) यही **आहार रस** है। **समान वायु की प्रेरणा से** आहाररस, ग्रहणी से **हृदय तक** लाया जाता है और वहाँ से **व्यान वायु की प्रेरणा से**, रस से लेकर शुक्र धातु केपोषण के लिए, **संपूर्ण शरीर में** प्रसृत किया जाता है ।

आहाररस प्रत्येक धातु के समीप पहुँचने पर उसपर अग्नि की प्रक्रिया होती है, तत्पश्चातही **अग्निसंस्कार के उपरान्त** धातुओं का पोषण होता है।

संस्कारो नाम गुणान्तराधानम्।

अग्निसंस्कार के कारण पांचभौतिक आहार में सुयोग्य बदलाव होकर पांचभौतिक धातुओं का पोषण होता है। संस्कार में गुण परिवर्तन करने का सामर्थ्य होता है।

धातु के स्तर पर होनेवाले पचन को **सूक्ष्म पचन** कहते है। सूक्ष्म पचन के लिए धातुओं में उपस्थित **धात्वग्नि** सहायता करती है। धात्वग्नि कुल सात होती हैं, जैसे - रसाग्नि, रक्ताग्नि, मांसाग्नि आदि। प्रत्येक धातु के संदर्भ में एक इस प्रकार स्थूल एवं सूक्ष्म पचन द्वारा धातुओं का पचन (पोषण) होता है।

धात्वग्नि

स्वस्थानस्थस्य कायाग्नेः अंशा धातुषु संश्रिताः।

तेषां सादातिदीप्तिभ्यां धातुवृध्दिक्षयोद्भवः॥ ... वाग्भट सू.११/३४

धात्वग्नि ये जाठराग्नि के ही अंश होते हैं। यदि धात्वग्नि मंद (साद) होगी, तो धातुओं की विकृत वृद्धि होती है। यदि धात्वग्नि अति तीव्र (दीप्ती) होगी, तो धातुक्षय होता है। धात्वग्नि के संस्कार के कारण प्रत्येक धातु से प्रसाद एवं किट्ट भाग की निर्मिति होती है।

सप्तभिर्देहधातारो धातवो द्विविधं पुनः।

यथास्वमग्निभिः पाकं यान्ति किट्ट प्रसादवत्। ... चरक चि.१५/१५

आहार के उपयुक्त अंश पर धात्वग्नि के उष्मा का परिणाम होने से, स्रोतस के माध्यम से पोषक अंश प्राप्त होकर धातुओं का पोषण होता है।

यथास्वेनोष्मणा पाकं शारीरा यान्ति धातवः।

स्रोतसा च यथा स्वेन धातुः पुष्यति धातुत :॥ ... चरक

धातुपोषण न्याय (धातुपरिणाम वाद)

धातुओं का पोषण किस प्रकार से होता है, यह समझने के लिए धातुपोषण न्याय (सिद्धांत) का ज्ञान आवश्यक है।

१) केदारकुल्या न्याय (अंशांश परिणमन)
२) क्षीरदधि न्याय (सर्वात्म परिणमन)
३) खलेकपोत न्याय (पृथक् परिणमन)

स्थूल पचन, सूक्ष्म पचन, धातु परिणामवाद क्या है ? उनके प्रकार कितने होते हैं ? उनका श्रेष्ठाश्रेष्ठत्व - इन सभीं प्रश्नों के उत्तर वैद्य राजेंद्र देशपांडे, वैद्य शिवाजी वाव्हल लिखित 'शारीर क्रिया - भाग १' इस ग्रंथ में दिए हैं। यहाँ द्विरुक्ति टाली जा रही है।

धातुओं का पोषण सम्यक् होने की दृष्टि से

१) आहार सात्म्य, स्वप्रकृति के अनुरूप, षड्रसयुक्त होना चाहिए।
२) जाठराग्नि के उत्तम संस्कार से स्थूल पचन यथायोग्य होकर, सार - किट्ट विभजन सम्यक होना आवश्यक है।
३) प्राण - समान - व्यान वायु का कार्य प्राकृत होना चाहिए।
४) धात्वग्नि का प्राकृतत्व होना चाहिए।
५) सूक्ष्म पचन के लिए स्रोतस, कला ये घटक उत्तम होने चाहिए।

स्रोतस

खानि स्रोतांसि। ... सु.शा.९/१० डल्हण टीका

ख = अवकाश।

रिक्त मार्ग = स्रोतस।

मानवी देह अपरिसंख्येय (अनगिनत) स्थूल, सूक्ष्म अवकाशों से बना हुआ है।

यावन्तः पुरुषे मूर्तिमन्तो भावविशेषाः तावन्त एव अस्मिन् स्रोतसां प्रकार विशेषाः॥ ... च.वि.९/२

स्रोतस संख्या में अनगिनत होने के कारण ही 'स्रोतोमयम् पुरुषः।' ऐसा कहा गया है।

इनमें से १३ महत्वपूर्ण स्रोतस निम्न वर्णित हैं -

बाह्य प्राणद्रव्यों के	(प्राण, उदक, अन्न)	-----	३
धातुओं के स्रोतस	(रसवह स्रोतस, रक्तवह स्रोतस आदि)	-----	७
मलों के स्रोतस	(मूत्रवह स्रोतस, पुरीषवह स्रोतस आदि।)	-----	३

स्रोतस का वर्ण, तद्-तद् धातु के अनुसार और आकार (आकृति) विविध स्वरूप का होता है → वृत्त, स्थूल, अणु आदि।

स्वधातु समवर्णानि वृत्तस्थूलानि, अणूनि च।

स्रोतांसि दीर्घाणी आकृत्या प्रतान सदृशानि च॥ ... च.वि.५/२५

स्रोतस व्याख्या

मूलात् खादंतरं देहे प्रसृतं त्वभिवाहियत्।

स्रोतसः तद् इति त्रिज्ञेयं सिराधमनिवर्जितम्॥ ... सु.शा.९/१३

स्रोतस कार्य तथा उसका महत्व

स्रवणात् स्रोतांसि। ... च.सू.३०/१२

स्रवण, उदीरण की क्रिया जिस स्थान में होती है, उसे स्रोतस कहते है।

स्रोतांसि खलु परिणाम आपद्यमानानां।

धातूनाम् अभिवाहिनि भवन्ति अयन अर्थेन॥ ... च.वि.५/३

प्रत्येक धातु में सभी प्रकार की चयापचय क्रियाएं स्रोतसों के माध्यम के द्वारा ही होती हैं। स्रोतस से पोषक धातुओं का वहन होता है। संक्षेपतः धातु मलों का अध्ययन अर्थात तत् संबंधित स्रोतस का भी अध्ययन यह ज्ञातव्य है।

आयुर्वेद में स्रोतसों का मार्ग शुद्ध रहने पर जोर दिया गया है। स्रोतसों में अवरोध यह व्याधि निर्माण होने का महत्त्वपूर्ण कारण है।

स्रोतोमूल

प्रत्येक स्रोतस से संबंधित दो प्रमुख स्थानों का उल्लेख किया गया है।

मूलम् इति प्रभवस्थानम्।

अपितु ये स्थान निम्न ३ कारणों से महत्त्वपूर्ण होते हैं।

१) इन स्थानों का **निर्मिती स्थान** की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

अथवा २) इन स्थानों का **परीक्षण स्थान** की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

अथवा ३) इन स्थानों का **नियंत्रण स्थान** की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

	स्रोतस	मूलस्थान
१	रसवह स्रोतस	हृदय, हृदयधमनियाँ
२	रक्तवह स्रोतस	यकृत, प्लीहा
३	मांसवह स्रोतस	स्नायु, त्वक्
४	मेदोवह स्रोतस	वृक्क, वपावहन
५	अस्थिवह स्रोतस	मेद, जघन
६	मज्जावह स्रोतस	अस्थि, संधि
७	शुक्रवह स्रोतस	वृषण, शेफ

मल के संदर्भ में

१	मूत्रवह स्रोतस	बस्ति, वंक्षण
२	पुरीषवह स्रोतस	पक्वाशय, स्थूलगुद
३	स्वेदवह स्रोतस	मेद, रोमकूप

प्रत्येक स्रोतस में **४ महत्त्वपूर्ण** प्रक्रियाएं होती हैं।

१	उत्पत्ति	=	निर्मिति।
२	परिणमन	=	अग्नि के द्वारा पचन।
३	वहन	=	पोषक अंश का वहन।
४	उत्सर्जन	=	किट्ट, त्याज्य घटकों का उत्सर्जन।

स्रोतस का अन्य प्रकार से वर्गीकरण

उपरोक्त **अंतर्मुख** स्रोतसों के अलावा ९ प्रकार के बहिर्मुख स्रोतस होते हैं -

श्रोत्र - २	नेत्र - २	घ्राण - २
मुख - १	गुद - १	मूत्रमार्ग / मेढ्र - १

शार्ङ्गधर ने इन बहिर्मुख स्रोतसों के लिए **रंध्र** शब्द का उपयोग किया है। उपरोक्त ९ रंध्र और शिर के स्थान में **ब्रह्मरंध्र**।

अंतर्मुख स्रोतसों का विचार करते हुए, वात, पित्त, श्लेष्मा के दोषों के साथही मनोवह स्रोतस **सर्व शरीर व्याप्त** बताया है।

स्त्रीयों में आर्तववह, स्तन्यवह स्रोतस होते हैं।

सुश्रुताचार्य ने स्वरवह स्रोतस का भी उल्लेख किया है।

कला

स्रोतस के समान धातुओं से संबंधित और एक महत्त्वपूर्ण घटक है - कला।

कला

धात्वाशयान्तरमर्यादा।

धातुओं के अंतर्भाग में स्थित अत्यंत पतले आवरण को कला (Internal Lining, Mucous Membrane) कहते है। धातु परिणमन के संदर्भ में पोषक अंश की प्राप्ति, अग्नि संस्कार आदि गतिविधियाँ कला के माध्यम के द्वारा ही होती हैं।

कला किस प्रकार बनती है ?

धात्वाशयांतरक्लेदो विपक्वाः स्वंस्वम् उष्मणा।

श्लेष्म स्नायु अपराच्छन्नः कलाख्यः कोष्ठसारवत्॥

तसः सप्त ...। **... अ.हृ.शा.३/९, १०**

	सप्त कला		स्थान विशेषता
१	रक्तधरा कला	(२)	सिरा, यकृत, प्लीहा।
२	मांसधरा कला	(१)	मांस स्थित सिरा, स्नायु, धमनी, स्रोतस।
३	मेदोधरा कला	(३)	उदरस्थम्, अण्वस्थिषु च।
४	शुक्रधरा कला	(७)	सर्वशरीरव्यापिणि।
५	पित्तधरा कला	(६)	आमाशय।
६	श्लेष्मधरा कला	(४)	सर्वसंधिषु।
७	पुरीषधरा कला	(५)	पक्वाशय।

वक्तव्य – उपरोक्त तालिका में वर्णित क्रम छात्रों के आकलन की दृष्टि से किया हुआ है। कंस में दिया गया क्रमांक सु. शा. ४/८-२७ के संदर्भ में है।

अस्थि, मज्जा – कला के संदर्भ में

या एव पुरीषधराकला सा एव अस्थिधराकला।

या एव पित्तधराकला सा एव मज्जाधराकला।

धातुपोषण का काल

स्रोतस, कला के माध्यम से, धात्वग्नि की सहायता से धातुपोषण होता है, किन्तु इसके लिए कितनी कालावधि की आवश्यकता होती है ?

संतत्या भोज्यधातुनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत्। ... चरक

आजीवन शरीर का क्षरण और उसकी आपूर्ति करना यह प्रक्रिया किसी चक्र के समान चलती ही रहती है। इसमें रुकावट नहीं होती।

चरक, सुश्रुतोक्त धातुपोषण काल

	धातु	चरक के अनुसार	सुश्रुत के अनुसार
१	रस	१ दिन	१ दिन
२	रक्त	२ दिन	५ दिन
३	मांस	३ दिन	१० दिन
४	मेद	४ दिन	१५ दिन
५	अस्थि	५ दिन	२० दिन
६	मज्जा	६ दिन	२५ दिन
७	शुक्र	७ दिन	३० दिन

उपरोक्त तालिका के अनुसार चरक तथा सुश्रुताचार्य ने बताई हुई कालावधि में सकृत दृष्टि से अंतर दिखाई देने पर भी कुछ अभ्यासकों के अनुसार चरकाचार्य की कालावधि पोषक धातु निर्माण संदर्भ में अथवा पोषण का प्रारंभ हुआ है, यह सूचित करने वाला काल है और सुश्रुतोक्त कालावधि भी पोष्य धातु अथवा धातु का अंतिम - स्थिर स्वरुप निर्माण हुआ है, यह सूचित करती है।

व्यवहार में भी कुछ व्याधियों पर उपचार करने के दौरान भी उपरोक्त स्पष्टीकरण का प्रत्यय आता है, जैसे - पांडु अथवा रक्तक्षय में लोहकल्प आदि औषधि योजनाओं का प्रारंभ करने पर रुग्ण को शीघ्र लाभ होता है। किन्तु प्रयोगशाला में Hb % बढने की जानकारी कम-से-कम ५-६ दिन के बाद ही समझती है। साथही अस्थिभग्न होने पर, अस्थि जुडने के लिए (अस्थिसंधान) कम-से-कम २०-२१ दिन (३ सप्ताह) प्लॅस्टर करना ही पडता है।

धातुओं का अध्ययन किस प्रकार करना चाहिए ?

इसके उपरान्त प्रत्येक प्रकरण में रस से लेकर शुक्र तक ७ धातुओं का विस्तृत अध्ययन निम्न मुद्दों के अनुसार किया जाएगा।

१) धातु नाम, पर्याय, निरुक्ति	२) स्थान	३) संघटन
४) धातु प्रकार	५) परिणति	६) धातु परिणति काल
७) धातु गुण	८) प्रमाण	९) धातु कार्य
१०) धातु सारता	११) उपधातु	१२) मलविचार

अब तक प्राकृत स्तर का विचार किया गया। अब विकृत स्वरूप समझने कि लिए-

१३) धातु वृद्धि लक्षण १४) धातु क्षय लक्षण १५) धातु दुष्टि

उपरोक्त मुद्दों का विस्तृत विवेचन

१) धातु – नाम, निरुक्ति, पर्याय

'निरुक्ति' अर्थात वह शब्द किस मूल धातु (क्रियापद) से बना हुआ है। निरुक्ति, पर्याय से उस धातु की रचना. गुण, कार्य के विषय में अनुमान किया जा सकता है।

२) स्थान

अ) रस तथा रक्त - द्रव स्थिति में होते हैं और संपूर्ण शरीर में (कृत्स्न देह) उपस्थित होते हैं। इसी प्रकार शुक्र धातु भी सर्व शरीरव्यापि, सर्व देहाश्रित होता है।

ब) मांस एवं मेद - शरीर की त्वचा एवं अस्थि के आसमंत में, त्वचा के नीचे और अस्थि के सभी ओर होते हैं।

क) मज्जा - अस्थि के अंतर्गत मज्जा का स्थान होता है।

ड) अस्थि - मांस तथा मेद के नीचे।

प्रत्येक धातु के स्थान में संबंधित स्रोतस, स्रोतोमूल, कला, अवयव आदि का भी उल्लेख करना आवश्यक है।

३) धातु - स्वरुप, संघटन

सर्व इदं पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे।

इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक धातु पंचमहाभूतों से निर्मित है, तथापि 'व्यपदेशस्तु भूयसा' न्याय से, प्रत्येक धातु में एक अथवा अधिक महाभूतों का विशेष आधिक्य बताया जा सकता है, जैसे - रस धातु आप्य अथवा जलीय है तो अस्थि धातु पार्थिव है।

४) धातु प्रकार - प्रत्येक धातु के मुख्यतः २ प्रकार होते हैं

अ) पोषक धातु - धातु के पोषण के लिए उपयुक्त अंश अथवा अस्थायी स्वरुप का घटक अथवा अस्थायी अवस्था। सूक्ष्म घटक।

ब) पोष्य धातु - जिसका पोषण पूर्ण हुआ है, वह स्थायी स्वरूप का घटक। स्थूल घटक।

५) धातु परिणमन

धातु परिणमन का अर्थ है - सूक्ष्म पचन। इस परिणमन में ३ घटक उत्पन्न होते हैं, अतः इसे **त्रिधा परिणमन** भी कहते है। इसकी सर्वसाधारण रुपरेषा निम्न वर्णित है -

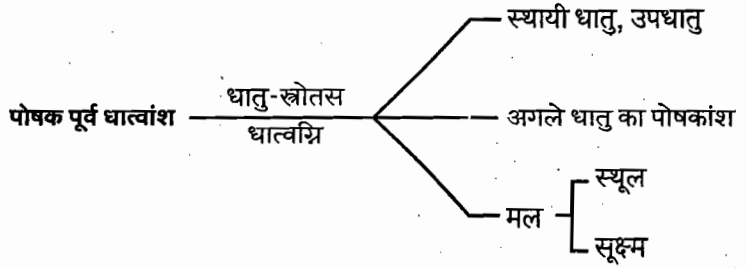

६) धातु पोषण काल

चरक, सुश्रुतोक्त मतानुसार।

७) धातु गुण

गुर्वादि विंशती गुणों में से कौनसे गुण उस संबंधित धातु में मुख्यतः दिखाई देते हैं?

८) धातु प्रमाण

रस, रक्तादि स्वरुप के द्रवरुप धातुओं का मापन करने के लिए हाथ की अंजली यह प्रमाण बताया गया है, और अस्थियों की संख्या बताई है। धातुओं की साम्यावस्था के साथही उनका प्रमाण भी प्राकृत होना आवश्यक है।

९) धातु कार्य

अ) धृ - धारयति - धारण, पोषण इस सामायिक कार्य के अलावा, प्रत्येक धातु के स्वयं के अविशिष्ट कार्य शरीर में प्रतीत होते हैं। धातुओं के कार्य का ज्ञान उनका अध्ययन करने के दौरान होगा ही। तथापि प्रत्येक धातु का एक विशिष्ठ **श्रेष्ठ कर्म** बताया गया है। इस विषय में संक्षेप से जानकारी प्राप्त करते है।

ब) **धातुओं के श्रेष्ठ कर्म**

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे।

गर्भोत्पादश्च धातूनां श्रेष्ठ कर्म क्रमात् स्मृतम्॥ ... वाग्भट सूत्र स्थान

धातु	सर्वश्रेष्ठ कार्य	
रस	प्रीणन	शरीर को जल द्रव्य प्रदान कर ताजगी, तत्काल उत्तेजना प्रदान करना।
रक्त	जीवन	जीवित का रक्षण करना। जीवनो नाम् प्राणधारणम्।
मांस	लेपन	शरीर अवयदों को आवरित कर संरक्षण देना।
मेद	स्नेहन	समस्त शरीर को स्निग्धता प्रदान करना।
अस्थि	धारण	संपूर्ण शरीर अथवा पृष्ठ, हस्त, पाद आदि अवयवों का धारण करना, उन्की प्राकृत रचना, स्थिति बनाए रखना।
मज्जा	पूरण	अस्थि अवकाश का पूरण कर, अवकाश भर कर वातप्रकोप टलना।
शुक्र	गभोत्पादन	मनुष्य जाति का पुनरुत्पादन अथवा शरीर में अणु-परमाणु स्तर पर नवनिर्मिति कराना।

धातुओं के सर्वश्रेष्ठ कर्म के विषय में अधिक विवेचन संबंधित धातु प्रकरण में भी किया गया है। आयुर्वेद के 'सत्कार्यावाद' सिद्धांत के अनुसार धातु का प्रत्येक कार्य किस गुण के कारण होता है, यह समझना भी आवश्यक है।

१०) धातु सारता

सारता यह **गुणवत्ता मापन ही** है। **सार परीक्षण** यह महत्त्वपूर्ण शारीर क्रियात्मक परीक्षण है। इससे शरीर में उत्तम, मध्यम अथवा निकृष्ट स्तर के कौन-कौन से धातु हैं, यह आकलन सुलभता से होता है। 'प्रकृति परीक्षण' यह दोषों का तथा सार्वदेहिक स्वरुप का परीक्षण है और सार परीक्षण यह धातुओं का तथा स्थानिक स्वरुप का परीक्षण है।

'सार धातु' का अर्थ है - 'विशुद्धतर धातु'। **सर्वगुणसंपन्न धातु।** सारता के मुख्यतः

८ प्रकार – ७ धातु की सारता और सत्त्व सारता (मन की गुणवत्ता)

उपप्रकार – प्रत्येक धातु की सारता भी **उत्तम, मध्यम अथवा असार** स्वरूप की है, यह परीक्षण करना आवश्यक होता है।

सारवान धातु होने पर जिन लक्षणों का परीक्षण करना चाहिए उनका वर्णन ग्रंथकारोंने किया है।

सारपरीक्षण का महत्त्व

बलमान विशेष ज्ञानार्थम्।

संबंधित धातु और उस व्यक्ति का बल किस प्रकार का होगा ? यह ज्ञान होता है। जो धातु असार है, उसे रसायन चिकित्सा देकर सारवान बनाना पडता है, अन्यथा असार धातु स्थान संश्रय में सहायता कर व्याधि निर्मिति का कारण होते हैं। कोई धातु असार होने पर उस व्यक्ति को संबंधित धातु के व्याधि अधिकता से होने की संभावना होती है, जैसे - अस्थि असार व्यक्ति को वार्धक्य में संधिवात (संधिगतवात) होने के संभावना अधिक होती है। इसके विपरीत कोई धातु सारवान होने पर भी दैववशात् उस धातु की व्याधि निर्माण होने पर उसका उपशम आसानी से हो सकता है। प्रत्येक धातु के सारता लक्षण संबंधित प्रकरण में वर्णित हैं।

११) उपधातु

धातुओं की अपेक्षा तुलना में गौण, कनिष्ठ किन्तु शरीर क्रिया की दृष्टि से उपयुक्त घटकों को उपधातु कहा जाता है।

रसात् स्तन्यो ततो रक्तम् असृजः कण्डराः सिराः।

मांसात् वसा त्वचा षट् च, मेदसः स्नायुसंभवः॥ ... च.चि.१५/१७

सुश्रुत ने उपधातुओं का वर्णन नहीं किया, तथापि सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने मेद का उपधातु इस प्रकार 'संधि' का वर्णन किया है। कुछ अभ्यासक ओज को ही उपधातु मानते हैं।

धातुओं में धात्वग्नि की सहायता से त्रिधापरिणमन होने के दौरान स्थायी अथवा पोष्य धातु के साथही उपधातुओं की भी निर्मिति अथवा पोषण होता है।

उपधातु 'धातु' समान जाति के होते हैं। उपधातु भी धातुओं के समान ही शरीर का धारण करते हैं, किन्तु पोषण नहीं करते। साथही एक धातु से अगले धातु के पोषक अंश की

निर्मिती होना, यह प्रकार उपधातुओं के विषय में नहीं होता। एक के बाद एक निर्मिती इस प्रकार की गति नहीं होती। इसी लिए उपधातुओं को **गतिविवर्जित** कहा गया है।

धातु मुख्य होने के कारण उनके कार्य विस्तृत स्वरुप के होते हैं, तथापि उपधातुओं के कार्य को कई मर्यादाएँ होती हैं, जैसे स्तन्य का कार्य विशिष्ट आयु में, विशिष्ट काल तक ही मर्यादित होता है। किसी उपधातु का कार्य न होने पर गंभीर हानि नहीं होती, किन्तु किसी भी एक धातु का कार्य पूर्णतः रुक जाने पर जीवन की गुणवत्ता कम होती है अथवा जीवन ही संकट में आ जाता है।

धातुओं की शरीर को नित्यनियम से आवश्यकता होती है। अतः स्वाभाविक रुप से ही धातुओं के क्षरण, हानि, वैगुण्य की सत्वर तथा पूर्णतः आपूर्ति होती है ! इसके विपरीत उपधातुओं की हानि धीरे-धीरे भर आती है।

धातु हमेशा शरीर के अंतर्भाग में स्थित होते हैं (अपवाद - प्रासंगिक शुक्रच्युति) ये घटक शरीर से बाहर निकल जाने पर गंभीर अवस्था उत्पन्न हो सकती है, जैसे - दुर्घटना में जख्मी व्यक्ति के अवयवों से होने वाला अति रक्तस्राव। इसके विपरीत उपधातु कार्य पूर्ति के लिए शरीर के बाहर भी प्रकट होते हैं, जैसे - स्तन्य एवं रज।

उत्क्रांतिवाद का विचार करने पर, अमिबा सदृश सूक्ष्म जीव से लेकर आधुनिक, प्रगत मानव इस श्रृंखला में भी केवल धातुओं का ही अस्तित्व प्रारंभिक प्राणिमात्रों में दिखाई देता है। उपधातु होते ही नहीं। तथापि केवल प्रगत प्राणियों में ही उपधातुओं का विकास हुआ है।

आहार के द्वारा धातुओं का पोषण होता है और प्राकृत धातुओं के कारण उपधातुओं का पोषण होता है। धातु में विकृति उत्पन्न होने पर उसका परिणाम उपधातु पर भी होता है, जैसे - रस बिगडने पर उसके परिणामस्वरुप रजोविकृति निर्माण होती है। उपधातु की विकृति ठीक करने के लिए अनेकदा 'मूल धातु' पर ही उपचार करने पडते हैं, जैसे - स्तन्य विकृति दूर करने के लिए 'रस धातु' पर आमपाचक स्वरूप के मुस्ता (नागरमोथा) जैसे औषधि से चिकित्सा करनी पडती है।

अर्थात धातु दुष्ट होने से निर्माण होनेवाले व्याधि, उपधातुओं की तुलना में अधिक गंभीर स्वरूप के होते हैं।

मनुष्य देह का 'सप्तधात्वात्मक' स्वरूप में जन्म होने के उपरान्त, आमरण सातों धातुओं का अस्तित्व, कार्य दिखाई देता है, किन्तु उपधातुओं का अस्तित्व, कार्य जीवन के विशिष्ठ काल में ही दिखाई देता है, जैसे - यौवनावस्था प्राप्ति के पश्चात ही रजोदर्शन, प्रसुति के पश्चात ही स्तन्य निर्मिति आदि।

प्रत्येक उपधातु का विस्तृत वर्णन संबंधित 'धातु' का अध्ययन करने के दौरान किया जाएगा।

१२) धातुओं के मल

कफः पित्तम् मलः खेषु प्रस्वेदो नखरोम च।

स्नेहो अक्षित्वक् विशामोजो धातुनां क्रमशो मलः॥

धात्वग्नि की सहायता से होनेवाले त्रिधापरिणमन के समय ही सार (उपयुक्त) भाग के साथही कुछ त्याज्य भाग निर्माण होता है, जिसे 'धातु - मल' कहते है। धातुमल के २ भाग होते हैं, जैसे - अ) स्थूल मल - उपरोक्त श्लोक में वर्णित।

ब) सूक्ष्म मल - क्लेद।

पोष्य धातु तथा मल में व्यत्यासात स्वरुप के संबंध होते हैं। अर्थात् नख, केश, लोम की विकृत स्वरूप में, अतिमात्रा में वृद्धि होने पर पोष्य अस्थि धातु की गुणवत्ता क्वचित कम हो सकती है, ऐसा कुछ विद्वानों का मानना है। इसके विपरीत धातु उत्तम, सर्वांग परिपूर्ण शुक्र धातु के समान होने पर उससे मल उत्पन्न ही नहीं होगा।

१३, १४) धातु वृद्धि - क्षय लक्षण

विकृति किस प्रकार उत्पन्न होती है ? उसकी चिकित्सा किस प्रकार करनी चाहिए ? इन प्रश्नों के उत्तर **सामान्य विशेष सिद्धांत के द्वारा** दिए जा सकते हैं।

- विशिष्ट धातु के गुणों के समान आहार-विहार सातत्य से तथा अधिक मात्रा में सेवन करने पर उस धातु में विकृत वृद्धि होगी।

जैसे - मेद धातु के गुण के समान स्निग्ध, गुरु गुण का आहार सातत्य से ग्रहण करने पर मेदोवृद्धि होगी।

- धातु के गुण के विरोधी आहार-विहार सातत्य से तथा अधिक मात्रा में करने पर उस धातु का क्षय होगा।

जैसे - रस धातु का द्रव गुण है। अतिसार, छर्दि आदि विकारों में शरीर में जल की मात्रा कम होने पर (अब् धातु क्षय) रस क्षय के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

वृद्धि की चिकित्सा, विरोधी (विशेष) आहार-विहार से करें और क्षय की चिकित्सा समान आहार-विहार से करें।

'धातु' के विषय में विस्तृत प्रस्तावना तथा कुछ महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक संज्ञाओं का अर्थ स्पष्ट करने के उपरान्त क्रमशः एक-एक धातु का अध्ययन अगले प्रकरणों में किया जाएगा।

प्रकरण २

धातुओं का पोषणकर्ता - आहाररस

मुख से ग्रहणी के अंतिम भाग तक अन्नपचन का प्रथम स्तर संपूर्ण होता है। इस स्थूल पचन के अंत में अन्न का **सार - किट्ट विभजन** होता है। इसमें से सार (उपयुक्त) भाग है - 'आहाररस'।

तत्र पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य।

द्विविधवीर्यस्य अष्टविधवीर्यस्य वा अनेकगुणस्य।

उपयुक्तस्य आहारस्य सम्यक् परिणतस्य यः तेजोभूतः।

सारः परमसूक्ष्मः स रसः इति उच्यते॥ ... सु.सू. १४/३

सभी धातुघटकों का पोषण करने का सामर्थ्य होने के कारण इसे 'तेजोभूत' कहा गया है। शरीर पोषण के लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटकों तक पहुँचने का सामर्थ्य होने के कारण परमसूक्ष्म कहा गया है। साथही सर्भी धातुओं के पोषकांश इसमें सूक्ष्म रुप में उपस्थित होने के कारण भी संभवतः 'परमसूक्ष्म' यह संज्ञा दी गई है।

ग्रहणी से हृदय की ओर

जाठराग्निना विपक्वः सारभूतः आहाररसः ग्रहणीतः।

समान मरुतेः ईरितः सिराभिः हृदयं गच्छति॥ ... शार्ङ्गधर प्रथम खंड

समान वायु की प्रेरणा से आहाररस ग्रहणी से हृदय में लाया जाता है। वहाँ उसका स्थायी अथवा पोष्य रस धातु में रुपान्तर होता है और उसीका विक्षेपण समस्त शरीर नें उर्ध्व, अधः, तीर्यक दिशा में किया जाता है।

स हृदयात् चर्तुर्विंशतिः धमनीः अनुप्रविश्य उर्ध्वगाः।

दश, दश च अधोगामिन्यः च चतस्त्र : च तिर्यग्गाः।

कृत्स्नं शरीरम् अहः अहः तर्पयति, वर्धयति, धारयति, ।

यापयति च अदृष्टहेतुकेन कर्मणा॥ ... सु.सू. १४/३

आहाररस के कार्य

१. **तर्पयति** = तर्पण - द्रवपोषक घटकों के आधार से सभी शरीर घटकों को तत्काल उत्साह, चैतन्य, कार्यशक्ति, ताजगी प्रदान करना।

२. **वर्धयति** = 'शीर्यते तत् शरीरम् ।' यह निसर्ग नियम है। अतः मुख्यतः बाल्यावस्था में वर्धन का कार्य, पोषकांश प्रदान कर संपन्न किया जाता है।

३. **धारयति** = धारण करना। मध्यम आयु में मुख्यतः चय तथा अपचय का संतुलन बनाए रखकर शरीर का धारण किया जाता है।

४. **यापयति** = पेशियों का नाश अथवा क्षरण रोकना। वार्धक्य में यह कार्य मुख्यतः प्रतीत होता है।

सुश्रुताचार्य के उपरोक्त श्लोक का डल्हणाचार्य ने अत्यंत मार्मिक स्पष्टीकरण किया है।

तर्पयति इति बालम् मध्यस्थविरान् सर्वान् एव प्रीणयति।

वर्धयति इति बालं, धारयति इति सम्पूर्णधातुत्वात्।

केचित् धारयति इति अत्र जीवयति इति पठन्ति, अत्रापि स एव अर्थः।

यापयति इति वृध्दं क्षीयमाणदेहत्वात्।

गर्भ को माता के द्वारा आहाररस की उपलब्धता

सा (नाडी) अस्य मातुः आहाररसवीर्यं अभिवहति।

तेन उपस्नेहेन अस्य (गर्भशरीरस्य) अभिवृध्दिः भवति।

पूर्णसरः सलिल उपस्नेहः नीरजाततरुकदंबकं जीवयति तद्वत् प्राणधारणम् करोति ...। **... सु.शा.३/३१, ३२ पर टीका**

12925

1-13
2-14
3-15
4-16
5-17

प्रकरण ३

रसधातु के कारण ताजगी

सदा सतेज, निरोगिता, तरोताजगी, प्रसन्न कांति एवं प्रसन्न मुखकमल का रहस्य रस धातुसारता में होता है। शरीर में स्थित द्रव स्वरूप, आप्यायन करानेवाला रस धातु उत्तम गुणवत्ता का होने पर वह व्यक्ति कभी भी म्लान, दुर्मुख, निस्तेज नहीं दिखाई देती।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

'रस' शब्द की निरुक्ति, अर्थात रस शब्द किस प्रकार उत्पन्न हुआ है ?

तत्र रस गतौ धातुः अहरहः गच्छति इति अतो रसः ।। **... सु.सू.१४/१३**

गतौ-गति = सातत्य से चलायमान (घूमते) रहना।

अहरहः = सातत्य से, चोबीसों घंटे।

'रस' संचरणशील, गतिशील द्रव स्वरूप धातु है। सप्त धातुओं में आद्य, प्रथम क्रमांक का धातु रस ही है। यह है शास्त्रीय पारिभाषिक अर्थ।

वस्तुतः व्यवहार में 'रस' शब्द अनेक अर्थों से उपयोग में लाया जाता है, जैसे -

रस = पदार्थ का स्वाद, साहित्य में शृंगार आदि स्वरूप के **नवरस**, पारद अथवा पारा।

रस – पर्यायी नाम

१) **सौम्य धातु** – स्निग्ध, शीत गुरू आदि गुणों के कारण 'रस' सौम्य धातु समझा जाता है। इससे पचन, पोषण, वर्धन होता है।

२) **आहार प्रसाद** – प्रसाद अर्थात ग्राह्य (लाभदायक) भाग। अन्न से उत्पन्न उपयुक्त भाग।

३) **धातु सार** – सभी धातुओं के पोषकांश रस में होते हैं, अतः उसे धातुसार कहा जाता है।

४) **रसात्मज ओज** – सातों धातुओं के उत्तम अंश एकत्रित होकर ओज की निर्मिति होती है, साथही सातों धातुओं के पोषकांश (लाभदायक भाग) रस में अंतर्भूत होते हैं, सम्मीलित होते हैं।

५) अग्निसंस्कार सुझानेवाले रस के पर्याय - **आहारतेज, अग्निसंभव, षड्रसासव।**

६) रक्त के पोषण को जिम्मेदार, अतः **असृक्कर।**

७) धातुओं की निर्मिति के दृष्टि से ज्येष्ठत्व का विचार करने पर **घनधातु, मूलधातु** तथा **परधातु** ये पर्याय।

८) जिस प्रकार सप्तऋषियों में आत्रेय श्रेष्ठ उसी प्रकार सप्तधातुओं में 'रस', अतः 'आत्रेय' यह भी एक पर्यायी नाम है।

२) स्थान

तस्य च हृदयं स्थानम्। स हृदयात् चतुर्विंशतिधमनीः अनुप्रविश्य उर्ध्वगा दश दश च अधोगामिन्यः चतस्रस्तिर्यग्गाः कृत्स्त्रं शरीरं अहरहस्तर्पयति॥

... सु.सू.१४/३

स्थायी रसधातु का मुख्य स्थान है - हृदय तथा २४ धमनियाँ।

तस्य रसस्य सर्वदेहानुसारित्वे ऽ पि हृदयं स्थानम्।

हृदयशब्देन अत्र हृदयोपलक्षितः प्रदेशः उच्यते।

न तु साक्षाद् हृदयम्। **... डल्हण**

हृदय अर्थात हृदयसमीप प्रदेश यह रस का स्थान है। रसप्रक्षेपण की दृष्टि से हृदय तथा उससे निकलनेवाली धमनियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह प्रक्षेपण सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग तक किस प्रकार होता है ?

यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च।

धमनिनां तथा खानि रसो वैरुपचीयते॥ **... सु.शा.९/१०**

रस धातु की उत्पत्ति, परिणमन, वहन, उत्सर्जन जैसे महत्त्वपूर्ण क्रियाओं को रसवह स्त्रोतस जिम्मेदार होता है।

रसवहानाम् स्त्रोतसां हृदयं मूलं दश च धमन्यः। **... च.वि ५/८**

हृदय तथा हृदय से निकलनेवाली दस धमनियाँ यह रसवह स्त्रोतस का मूलस्थान है। रस का उत्पत्ति स्थान, प्रक्षेपण स्थान तथा परीक्षण स्थान इन सभी दृष्टिकोण से हृदय महत्त्वपूर्ण है।

हृदय से रस के द्वारा शरीर के सभी अणु-परमाणुओं तक पोषकांश पहुँचाए जाते हैं और शरीर में संचित मलांश पुनः रस-रक्त के द्वारा हृदय की ओर उत्सर्जन के लिए लाए जाते हैं। हृदय-शरीर-हृदय यह चक्रवत् गति भेलसंहिता में स्पष्ट की गई है।

हृदो रसो निः सरति तस्मात् एव च सर्वशः।

सिराभिर्हृदयं चैति तस्मात् तत्प्रभवाः सिराः॥

रस का विक्षेपण संपूर्ण शरीर में होता है। अतः **कृत्स्न (संपूर्ण) शरीर** यह रस का स्थान है।

रसवह स्त्रोतस की परीक्षा में हृद्स्पंद, नाडीस्पंद प्राकृत है अथवा नहीं ? रक्तचाप प्राकृत है अथवा नहीं ? ये परीक्षण महत्त्वपूर्ण होते हैं।

रसवृद्धि के लक्षण स्वरूप हृदयोत्क्लेद (हृदयोत्क्लेष, जडता) और रसक्षय में हृत्पीडा (हृदय प्रदेश में वेदना) होते हैं।

३) संघटन - स्वरुप

सर्वं इदम् पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे।

यद्यपि रस पांचभौतिक होता है तथापि उसमें जल महाभूत का आधिक्य होता है।

- **स खलु आप्यो रसः यकृत् प्लीहानौ प्राप्य रागम् उपैति।**

  ... सु.सू.१४/१०, डल्हण टीका

- **स खलु द्रव - अनुसारी स्नेहन, जीवन ...॥** **... सु.सू.१४/३**

रस आप्य होने के कारण ही सौम्य स्वरुप का है।

द्रवानुसारी होने से, गति विशेषत्व के कारण संपूर्ण शरीर में प्रसृत होकर वह अणु-परमाणुओं को ताजगी प्रदान करता है, उनका प्रीणन करता है।

वस्तुतः अति तिक्त, मसालेयुक्त पदार्थ भी उष्ण वीर्य के कारण शरीर पर तत्काल परिणाम दिखा सकते हैं, किन्तु रस धातु गतिशील, सर्व शरीरव्यापि, सर्व धातुओं का प्रसादन करनेवाला होने के कारण वह निश्चित ही **सौम्य** स्वरुप का है।

'रस' धातु का स्वरुप काफी हद तक 'कफ' दोष से मिलता-जुलता है, इसी लिए वाग्भट कहते है -

रसो अपि श्लेष्मवत् (वृध्दः) **... अ.ह.सू.११/८**

४) धातु प्रकार

पोषक तथा पोष्य ये रसधातु के प्रकार अथवा स्थिति हैं। आहाररस के द्वारा रसधातु का पोषण होता है। पोषण होने तक की अवस्था अर्थात पोषक रस। जिसका पोषण पूर्ण हुआ है, जो स्थिर स्वरूप का, परिणत धातु है वही पोष्य रस कहलाता है।

५) परिणमन

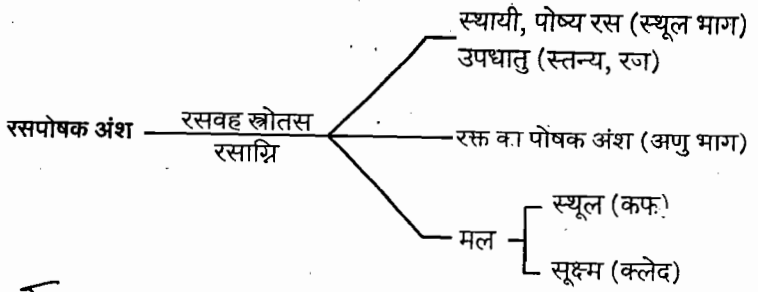

रस धातु के पोषण के लिए प्राकृत परिणमन की आवश्यकता होती है।

रस धातु द्रवस्वरूप होता है। इस लिए आहार में सम्यक मात्रा में द्रवांश (जल, शरबत, दाल, फलों के रस, तक्र आदि) का समावेश होना आवश्यक है। सातत्य से ब्रेड, टोस्ट जैसे रुखे-सूखे पदार्थ सेवन करने से अथवा बार-बार उपवास करने से रस धातु का सम्यक पोषण नहीं होता।

द्रव अर्थात अन्नपदार्थ में स्निग्धता, सौम्यता आवश्यक है। तत्पश्चात प्राकृत जाठराग्नि द्वारा स्थूल पचन सुव्यवस्थित होना आवश्यक है। हृदय तथा समस्त रसवह स्त्रोतस की प्राकृत स्थिति भी आवश्यक है। अंततः रसाग्नि सम्यक होने पर त्रिधापरिणमन उत्तम प्रकार से होता है। खलेकपोत न्याय से आहाररस का केवल रसपोषकांश स्वीकार कर रसाग्नि संस्कारों के द्वारा, क्षीरदधी न्याय के अनुसार आहाररस का धातु में रूपांतर होता है।

६) परिणमन काल

रसः किल एक अहेन एव संपद्यते। ... सु.सू.१४/१५ (डल्हण टीका)

एकः अहः।

अहः - अहोरात्र = दिन + रात्रि = २४ घंटे = १ दिन।

कुछ अभ्यासकों के अनुसार, अहः शब्द का केवल दिन अथवा केवल रात्रि ऐसा अर्थ होता है, किन्तु यहाँ भी १२ घंटों के पश्चात पोषक अंश तथा २४ घंटो के पश्चात स्थायी अथवा पोष्य धातु की निर्मिति होती है, यह अर्थ योग्य है।

शीर्यते तत् शरीरम्।

इस लक्षण के कारण वस्तुतः उत्पत्ति-विनाश ये घटनाएं 'परिवृत्तिस्तु चक्रवत्' न्याय से अनवरत चलती रहती हैं।

७) धातु - गुण

१) **द्रवता** - यह महत्त्वपूर्ण गुण है। जलमहाभूतप्रधान धातु होने से यह गुण प्राप्त होता है। 'द्रवानुसारी' होने से गति का कार्य होता है, जिससे वह शरीर के अणु-रेणुओं तक पोषक अंश पहुँचाने का कार्य कर सकता है।

२) **कफ के समान ही सभी गुण** - 'रसो अपि श्लेष्मवत्।' स्निग्ध, शीत, गुरु, मंद, श्लक्ष्ण, सांद्र, मृदु ये कफ के सभी गुणँ रस में भी होते हैं।

- **स्निग्ध** - तैल, घृत इन द्रव्यों के समान ही स्निग्धता का अंश रस में होने से संपूर्ण शरीर को आर्द्रता, मार्दव प्राप्त होता है। शरीर का क्षरण रोका जाता है।
- **शीत** - अर्थात थंडा। समस्त शरीर के कार्यव्यापार अतिउत्तेजित न होने देकर, स्थिरता प्रदान करने का कार्य रसधातु करता है।
- **गुरु** - यस्य बृंहणे कर्मणि शक्तीः स गुरुः।

सभी धातुओं के पोषक अंश का वहन तथा आपूर्ति कर, शरीर के वृद्धि तथा वर्धन में सहायक ऐसा रस का गुरु गण है।

- **श्लक्ष्ण एवं पिच्छिल** - यह गुण - चिकना तथा चिपचिपा, मुख्यतः स्पर्शगम्य होने पर भी शरीर के अणु-परमाणुओं का संधान (जोडना) कार्य इस गुण के कारण ही होता है।

३) **वर्ण - श्वेत** - दर्शन परीक्षा एवं अनुमान प्रमाण से रस का श्वेतवर्ण स्पष्ट होता है।

रसः सप्ताहात् अर्वाक् परिवर्तमानः श्वेतः - कपोत - हारिद्र - पद्म - किंशुक - आलक्तरसः प्रख्यः च अयं यथाक्रमम् दिवस परिवर्तमानः आपद्यमानः पित्तोष्म उपरागात् शोणितत्वम् आपद्यते॥

... सु.सू.१४/११ हारित (शिवदास टीका)

८) धातु - प्रमाण

प्रमाण = परिमाण।

नव अंजलयः पूर्वस्य आहारपरिणामधातोः यं रस इति आचक्षते॥

... च.शा.७/१५

रस आप्य (द्रव) धातु होने के कारण उसके मापन के लिए **अंजली** परिमाण बताया गया है। आहार से उत्पन्न आद्य अथवा प्रथम रसधातु का प्रमाण **९ अंजली** बताया है। जिस व्यक्ति के रसधातु की मात्रा का परीक्षण करना है, उस व्यक्ति की अंजली का विचार करें।

यह मापन आप्तोपदेश तथा तर्क के द्वारा अनुमानगम्य इन प्रमाणों से ही सिद्ध होता है। अवस्था के अनुसार बल - वर्ण, वृद्धि आदि आरोग्यलक्षण दिखाई देने पर रस स्वप्रमाण में है, यह अनुमान करना पडता है।

रस की उत्पत्ति एवं क्षय प्रतिक्षण चलते रहते हैं, अतः सुश्रुत कहते है -

दोषधातुमलानां तु परिमाणं न विद्यते ॥ ... **सु.सू.१५/७**

दोष, धातु, मलों का परिमाण निश्चित रुप से नहीं बताया जा सकता।

१) धातु - कार्य

१) **धृ - धारयति** – धारण करना, आयुष्य बनाए रखना, शरीर - इंद्रिय, सत्व, आत्मा इनका संयोग चिरकाल बनाए रखना ये अन्य धातुओं के समान ही रसधातु के भी सर्वसाधारण कार्य हैं। रचनात्मक स्वरूप में शरीर का 'धारण' तथा शरीर क्रियाओं का संतुलन ये धारण शब्द के अर्थ हैं।

२) रस का श्रेष्ठ अथवा विशिष्ठ कर्म है - **प्रीणन।**

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारण पूरणे।

गर्भोत्पादः च धातुनां श्रेष्ठ कर्म क्रमात् स्मृतम् ॥ ... **अ.हृ.सू.११/४**

प्रीणनं का अर्थ है - आप्यायन, आर्द्रता प्रदान करना। शरीर को 'उदक धातु', द्रवांश प्रदान करना। प्रीणन के कारण शरीर तथा मन को ~~अंतर्बाह्य, तत्काल~~ **तरोताजगी** प्राप्त होती है। ग्रीष्म ऋतु में मुरझाए वृक्ष वर्षा ऋतु में बरसात के कारण खिल उठते हैं, यही प्रीणन है। अतिसार पीडित रुग्ण को O. R. T. (Oral Rehydration Therapy) अथवा I / V Saline देते ही होनेवाला लाभ प्रीणन स्वरुप का कार्य है। प्रीणन से मन तथा इंद्रिय प्रसन्न होते हैं।

'प्रीण-तर्पणे' धातु तृप्ति अथवा तर्पण के समानार्थी है। यह शब्द मानसिक भाव-प्रसन्नता का सूचक है। हेमाद्रि तथा अरुणदत्त इन टीकाकारों ने 'तृप्ति' तथा 'मानसिक प्रीति' इस प्रकार स्पष्ट रुप से प्रीणन का मानसिक प्रभाव स्पष्ट किया है। वाग्भटाचार्य ने प्रीणन का अर्थ आप्यायन, स्त्रोतस में प्रवेश कर इंद्रियों की थकान दूर करना, ~~प्रसादन करना~~, मन में प्रीति, प्रसन्नता उत्पन्न करना इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है। गर्भ की मासानुमासिक वृद्धि रस के द्वारा ही होती है, ~~अतः उसे 'रसनिमित्तावृद्धि' कहा गया है।~~

३) **रस के अन्य कार्य**

रसः तुष्टिं प्रीणनं रक्तपुष्टिं च करोति। ... **सु.सू.१५/५१**

- **तुष्टि** – यह मानसिक भाव है। अन्न, जल की प्राप्ति होने पर क्षुधा, तृष्णा का शमन होना, एक प्रकार का संतोष (समाधान) प्राप्त होना।
- तृप्ति – तर्पण / तृप्ति का अर्थ है - इच्छापूर्ती तथा तत् जन्य आनंद अथवा प्रसन्नता सूचक मानसिक भाव। तृप्ति यह 'संतोष' इस प्रकार से मिलता-जुलता, किन्तु अधिक उच्च स्तर का प्रकार है।
- **धारण** – शोषण, मृत होना इस प्रकार कुछ भी न होकर ~~स्व (जैसा है~~, उसी) स्थिति में शरीर बनाए रखना यही धारण है। मध्यम पोषण की यह स्थिति है।

मध्यं धारयति सम्पुर्णधातुत्वात्।

बाल्यावस्था में शरीर 'असम्पूर्णधातु' तथा 'विवर्धमानधातुगुणं' युक्त होता है। युवावस्था में शरीर में वृद्धि का अत्युच्च स्तर प्रतीत होता है। इसके पश्चात शरीर में वृद्धि नहीं होती। तथापि 'यथावत् स्थिति' बनाए रखने का कार्य रस के द्वारा होता है।

- **यापन** – 'या' धातु 'गति' अर्थ सूचित करता है। इसे प्रेरक-प्रयोजक कर्तरि 'णिच्' प्रत्यय लगकर यापन शब्द बनता है। चलना जिनका धर्म है, किन्तु स्वयं चलने की इच्छा नहीं अथवा स्वतन्त्र रुप से चलने में असमर्थ हैं, उन्हें भी चलाना ऐसा इसका अर्थ है, जैसे -

वृद्धं - यापयति क्षीयमाणदेहत्त्वात्।

वृद्धों में निसर्गतःही धातुओं का उत्तरोत्तर क्षय होता रहता है। क्षयावस्था में विनाश रोक कर, देह धातुओं को मृतावस्था आने नहीं देता। साथही क्षयावस्था में भी जो अत्यल्प निर्माण का कार्य चलता रहता है, उसे आधार देना, ये सभी 'यापन' कार्य के कारण होता है।

अन्नपानरसः एषां धातुनां प्रीणयिता भवति।

किन्तु वार्धक्य में,

स एव अन्नपानरसो वृद्धानां जरापक्वशरीरात् अप्रीणनो भवति।

... **सु.सू.१४/१९**

यहाँ अप्रीणन का अर्थ 'अत्यल्प प्रीणन' इस प्रकार ज्ञातव्य है (प्रीणन कार्य बिल्कुल

ही नहीं होता, ऐसा अर्थ न करें) । वृद्धावस्था में प्रीणन कम होने के कारण ही थकान शीघ्र उत्पन्न होती है, म्लानता का अनुभव होता है, त्वचा पर झुर्रियाँ निर्माण होती हैं।

४) रक्त का पोषण करना यह भी रस का कार्य है। त्रिधापरिणमन में अणु भाग स्वरुप में रक्त का पोषकांश निर्माण होता है। इसमें कमी आने पर रक्तक्षय अथवा पांडु व्याधि उत्पन्न होती है।

आहाररस तथा रस के कार्य का तुलनात्मक विचार

१	आहाररस के कार्य अधिक व्यापक होते हैं।	रस के कार्य मर्यादित होते हैं।
२	सर्व शरीर में कार्यरत	'रस' धातु संबंधित स्रोतस, अवयव में कार्यरत
३	'अस्थायी'	'स्थायी'
४	तर्पण, वर्धन, धारण, यापन ऐसे अनेक कार्य करता है।	मुख्यतः प्रीणन, तर्पण करता है।
५	सभी धातुओं के पोषक अंश का वहन करता है।	मुख्यतः रक्त के पोषक अंश का वहन करता है।

तर्पण तथा बृंहण में भेद

	तर्पण	बृंहण
१	आप्यायन - द्रवांश से पोषण।	पंचमहाभूतों के बृंहणात्मक सभी गुणों का समावेश, जैसे - पार्थिव, आप्य आदि।
२	तत्काल दिखाई देने वाला कार्य	विशिष्ट काल के पश्चात प्रतीत होने वाला परिणाम।
३	द्रव + शीत	द्रव + शीत + स्निग्ध + गुरू
४	सिद्ध जल	गेहूँ, उडद, खजूर
५	भार (वजन) वर्धन का विचार नहीं।	भारवर्धन अपेक्षित।
६	मुरझाए वृक्ष को पानी मिलने से ताजगी प्राप्त।	खाद, पानी, सूर्यप्रकाश आदि के कारण होनेवाली वृक्ष की वृद्धि।

१०) धातुसारता

सारतः च इति सारणि अष्टौ पुरुषाणां बलमानविशेष ज्ञानार्थम् उपदिश्यते, तत् यथा त्वक् - रक्त - मांस ... ॥ ... मध्यानां मध्यैः सारविशेषैः गुणविशेषा व्याख्याता भवन्ति। ... अतो विपरितास्तु असाराः

सार परीक्षण धातुओं की गुणवत्ता का मापन है (Qualitative Assessment of Tissue Excellence)। सार का अर्थ है - उस धातु में उपस्थित उत्तम, सर्वगुणसंपन्न भाग। धातु उत्तम सारता का होने पर बल भी उत्तम रहकर व्याधिक्षमत्व सम्यक् रहता है। उस विशिष्ट धातु के विकार उत्पन्न नहीं होते और होने पर भी उनका उपशम सत्वर होता है।

तत्र स्निग्ध - श्लक्ष्ण - मृदु - प्रसन्न - सूक्ष्म - अल्प - गंभीर - सुकुमारलोमा सप्रभेव च त्वक् साराणाम्। सा सारता सुख सौभाग्य - ऐश्वर्य - उपभोग बुद्धि - विद्या - आरोग्य प्रहर्षणानि आयुष्यत्वं च आचष्टे ॥ ...च.वि.८/१०३

डल्हण के अनुसार **त्वक्सार** का ही अर्थ 'रससार' है।

त्वक्सारम् रससारम् ...। ... सु.सू.३५/१६ (डल्हण)

शरीर की आरोग्ययुक्त त्वचा, कांतिमान, प्रभायुक्त शरीर इनसे रससारता सूचित होती है। मानवी देह के १) सर्वांगीण परीक्षण के लिए - प्रकृति परीक्षण एवं

२) विभागशः परीक्षण के लिए- सार परीक्षण उपयोगी है।

रस घटक बलवान है या दुर्बल ?

१) अन्न कम मिलने पर अथवा बिल्कुल ही न मिलने पर थकान महसूस होती है ?

अ) हाँ - 'रस' घटक दुर्बल।

ब) नहीं, चिरकाल काम कर सकता है - 'रस' बलवान।

२) अधिक काल तक अन्न न मिलने पर क्या होता है ?

अ) ज्ञानेंद्रिय नित्य-नियम से काम कर सकते हैं - 'रस' बलवान।

ब) ज्ञानेंद्रिये काम नहीं कर सकते, मूर्च्छा, अस्वस्थता आती है - 'रस' दुर्बल।

३) ३ - ४ जुलाब अथवा उल्टीयाँ होते ही बिल्कुल ही काम न करने की हद तक थकान महसूस होती है ? हाथ-पैर गलितगात्र होते हैं ?

अ) हाँ - 'रस' दुर्बल।

ब) नहीं - 'रस' बलवान।

४) त्वचा मुलायम, स्निग्ध, मृदु तथा प्रसन्न है ?

अ) नहीं - 'रस' दुर्बल।

अ) हाँ, कुछ हद तक - 'रस' मध्यम सार।

क) हाँ, पूर्णतः - 'रस' सारवान।

५) लोम (त्वचा के केश) कम प्रमाण में, नाजुक और बालों की जडें मजबूत है ?

अ) नहीं - 'रस' असार।

ब) हाँ, कुछ हद तक - 'रस' मध्यम सार।

क) हाँ, पूर्णतः - 'रस' सारवान।

'रस' दुर्बल (असार) होने पर निम्न उपद्रवों की संभावना होती है।

१) भूख न लगना २) अपचन ३) मुखआरस्य (प्रसेक)

४) उत्क्लेद ५) अंगजाड्य ६) अतिनिद्रा

७) सतत मंद ज्वर ८) पाण्डुता ९) खालित्य, पालित्य

'रस' धातु सारवान बनाने के लिए रसायन (टॉनिक)

१) शतावरी कल्प २) लघु मालिनी वसंत ३) खर्जुर मंथ

४) लाजा तर्पण ५) फलरस ६) आरोग्यवर्धिनी

७) गिलोय सत्व, अमृतारिष्ट

११) उपधातु

स्तन्य तथा रज ये २ उपधातु रस से उत्पन्न होते हैं इस संदर्भ में विस्तृत वर्णन 'उपधातु' नामक स्वतंत्र प्रकरण में किया गया है।

१२) धातु मल

'कफदोष' स्थूल मल के स्वरुप में रसधातु के मार्ग से बाहर निकलता है और 'क्लेद' सूक्ष्म मल है। 'धातुमल' नामक स्वतंत्र प्रकरण में इसका अधिक वर्णन किया गया है।

रसधातु का विकृति के स्वरूप से विचार

अब तक वर्णित रसधातु के प्राकृत स्वरुप का आकलन ठीक से होने पर रसधातु की विकृति का यथायोग्य निदान करना संभव होगा। यह विकृति कौनसे गुण, कार्य बिगडने के कारण उत्पन्न हुई है ? यह निश्चित कर सुयोग्य चिकित्सा की जा सकती है।

रसधातु की विकृति मुख्यतः निम्न प्रकार से हो सकती है -

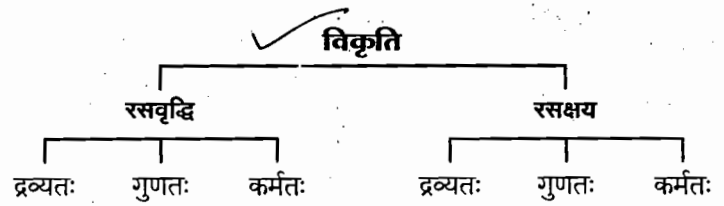

रसधातु के विकृति के कारण समझने के लिए और उनकी चिकित्सा करने के लिए 'सामान्य विशेष सिद्धांत' उपयुक्त है। (इसका अध्ययन 'शारीर क्रिया विज्ञान - भाग १' इस ग्रंथ से पुनः करें, यहाँ द्विरुक्ति टाली जा रही है।)

रसधातु के गुण के समान आहार-विहार अति मात्रा में तथा सातत्य से करने पर 'सामान्य' सिद्धांत के अनुसार रसवृद्धि होगी, जैसे - अति गुरु, अति शीत गुणयुक्त आहार अतिमात्रा में सेवन करने पर अग्निमांद्य - आमनिर्मिति - रसवृद्धि अथवा रसदुष्टि होगी।

इसकी चिकित्सा का उपदेश कर 'विशेष' (विरुद्ध) सिद्धांत के अनुसार रस धातु के गुण विरोधी चिकित्सा की दृष्टि से लघु गुणयुक्त 'लंघन' सहायक होगा।

ग्रंथकारों ने रसवृद्धि तथा क्षय के लक्षणों का वर्णन किया है।

१३) रस - वृद्धि

१) **(वृद्धौ) रसो अपि श्लेष्मवत्॥** ... अ.ह.सू.११/८

रसवृद्धि के लक्षण कफवृद्धि के समान ही होते हैं, जिसका कारण है - रस-कफ के समान गुण एवं स्वरुप तथा रस-कफ का आश्रयाश्रयी संबंध।

२) **रसो अतिवृद्धो हृदय उत्क्लेदं प्रसेकं च आपादयति॥** ... सु.सू.१५/१४

हृदय प्रदेश में उत्क्लेद (Nausea) तथा **प्रसेक** (अधिक मात्रा में मुँह में पानी/लार छूटना - Ptyalism) ये अपचन सदृश लक्षण होते हैं।

चिकित्सा

इन रुग्णों में अग्निमांद्य, अजीर्ण नाशक, आमनिर्मिति कम करनेवाले उपचार करने पडते हैं, जैसे - लंघन, लघु आहार, तथा कटु स्वाद युक्त वनस्पतियों का (अमृता, कुटकी, काडेजिराईत आदि) इन वनस्पतियों का चूर्ण अथवा गोली के स्वरुप में उपयोग किया जा सकता है। वर्धित द्रवता कम करने के लिए 'पुनर्नवा' जैसी वनस्पति का उपयोग भी क्वचित लाभदायी हो सकता है।

१४) रस - क्षय

रसे रौक्ष्यं श्रमः शोषो ग्लानि शब्द असहिष्णुता।

रसक्षये हृत् पीडा कंप शून्यता तृष्णा च ॥ ...अ.ह.सू.११/९

रसक्षय के लक्षण मुख्यतः द्रव, स्निग्ध गुणों का ऱ्हास दर्शाते हैं। ये लक्षण अतिसार (द्रवमलप्रवृत्ति), छर्दी जैसे व्याधियों में गंभीर अवस्था में दिखाई देते हैं। ये अब्धातुक्षय (Dehydration) स्वरुप के लक्षण होते हैं, जैसे -

१) **रौक्ष्य** – रुक्षता - सूखापन - त्वचा का स्थितिस्थापकत्व कम हो जाता है (Loss of Elasticity), होंठ सूख जाते हैं।

२) **श्रमः** – थकान - रुग्ण को अत्यधिक थकान महसूस होती है। रसक्षय के कारण धातुओं का सम्यक् तर्पण नहीं हो सकता।

३) **शोष** – मुख सूख जाता है (मुखशुष्कता), मुख्यतः तीव्र ज्वर, अतिसार में अल्पायु रुग्ण (बालक) होठों पर से जीभ घुमाकर शरीर में जल की मात्रा कम होना सूचित करते हैं।

४) **ग्लानि** – अतिनिद्रा, ग्लानि तथा मन-इंद्रियों का प्रीणन कम होने के कारण उनकी कार्यक्षमता का क्षय होता है।

५) **शब्द असहिष्णुता** – इंद्रियों की कार्यक्षमता का ऱ्हास होने के कारण शब्द (किसी भी प्रकार की आवाज) सहन नहीं होना।

६) **हृत्पीडा** – रसवह स्रोतास का मूलस्थान 'हृदय' होता है, अतः रसक्षय होने पर हृत्प्रदेश में धातुक्षयजन्य वातप्रकोप के कारण पीडा (वेदना) निर्माण होती है। छाती में वेदना (मरोड सदृश) उत्पन्न होती हैं।

७) **कंप** – धातुक्षयजन्य वातप्रकोप के कारण कंप उत्पन्न होता है। दौर्बल्य के कारण केवल खडे रहने पर भी हाथ-पैर काँपते हैं।

८) **शून्यता** – हृदय के साथही समस्त शरीर में शून्यता, दौर्बल्य की अनुभूति होती है।

चिकित्सा

रसक्षय में अब्धातुक्षय की आपूर्ति करनेवाली अथवा स्निग्ध, शीत गुण की चिकित्सा करनी पडती है, जैसे - लाजा मंड, खर्जुर मंथ (खजूर जल) उबालकर शीत किया जल + नींबू + नमक + शक्कर इस स्वरुप का पानक (शरबत), इक्षुरस, फलों के रस। रसक्षय की आत्यंयिक अवस्था में क्वचित I / V DNS (Dextrose Normal Saline) का उपयोग भी, शास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार ही होगा, ऐसा लेखक का मानना है।

रसधातु प्रशस्ति

रसधातु का महत्त्व वर्णन करते हुए आचार्यों ने कहा है कि मनुष्य रसमय होता है।

धारणात् धातवः।

जो धारण करते हैं, वे धातु। शरीर बनाए रखने के लिए, निरामय दीर्घायुष्य की प्राप्ति के लिए शरीर के सातों धातु आरोग्यसंपन्न अवस्था में होने चाहिए, किन्तु हम यह जानते ही है कि -

रसात् रक्तम् ततो मांसं, मासांद् मेदः ततो अस्थि च।

अस्थो मज्जा ततः शुक्रम्, शुक्रात् गर्भः प्रसादजः ॥ ... च.चि.१५/१६

उत्तम धातुपरंपरा के लिए आद्य प्रवर्तक रसधातु प्राकृत, साम्यावस्था में होना चाहिए। उसी प्रकार रसधातु का कार्यक्षेत्र कृत्स्न शरीर (संपूर्ण देह) है। अतः रसविकृति के परिणाम सर्व शरीर में दिखाई देते हैं।

इसी लिए आयुर्वेद के प्रवर्तक यह अत्यंत महत्वपूर्ण सलाह देते है कि, आहार-विहार के विषय में सजग रहकर रसधातु का रक्षण करें, उसका प्रतिपालन करें।

रसजं पुरुषं विद्यात् रसं रक्षेत् प्रयत्नतः।

अन्नात् पानात् च मतिमान् आचाराच्चाप्यतन्द्रितः ॥

लसिकायाः उत्पत्ति कार्यम् संवहनं च।

अभ्यासक्रम के लसिका तथा रसायनी इन मुद्दों के विषय में उत्तर लिखते समय छात्रों की दृष्टि से यह जरुरी है कि प्रथम इस संदर्भ में जो महत्त्वपूर्ण आयुर्वेदीय ग्रंथोक्त संदर्भ हैं, उनका वर्णन करें। [illegible] प्रश्नपत्रिका में व्याख्या किया हो, तो इन मुद्दों के समानांतर अर्वाचीन विज्ञान के विषयों का वर्णन करें। प्रश्नपत्रिका में सुस्पष्टता न होने पर -

लसिका विषयक प्रश्न होने पर आयुर्वेदीय विवेचन के उपरान्त Plasma तथा Lymph इन दोनों मुद्दों का विवेचन करें और रसायनी विषयक प्रश्न होने पर आयुर्वेदीय विवेचन के बाद Lymphatic System का वर्णन करें।

लसिका

शरीर पर व्रण (जख्म - Injury) उत्पन्न होने पर त्वचा के द्वारा रक्त के बजाए केवल द्रव स्वरुप स्राव होता है, वही **लसिका** है। यह पित्तदोष का स्थान है।

नाभी आमाशयो स्वेदो लसिका रुधिरं रसः।

'लसिका' शब्द के विविध अर्थ तथा ग्रंथोक्त संदर्भ

१) लसिका (स्त्री.) - व्रणगतम् उदकम्, लसिका (अ.हृ.सू.३०/४५) - लस। व्रण से स्त्रवनेवाला द्रव पदार्थ।

२) लसिका (स्त्री.) - शरीरान्तर्गत पिच्छिल द्रव। ... च.सू.२६/४३

३) शरीरस्य जलस्य पिच्छिलो भागः। ... च.सू.२०/८

४) यत्तु त्वगन्तरे व्रणगतम् उदकं तत् लसिका शब्दं लभते। ... च.शा.७/१५

५) त्वगाश्रयो जलप्राप्यो रसमलः। ... अ.हृ.सू.१२/२

६) रसस्य ... मलः कफः लसिका च। ... अ.सं.शा.६

७) अवगाढपूय लसिकासु ... मांसदाहः। ... अ.सं.सू.४०

जिस स्थान से गंभीर पूयस्त्राव तथा लसिका स्त्राव हो रहा होगा, उस व्रण में मांस तक दहनकर्म करें।

Plasma

Definition

When the formed elements are removed from blood, a straw coloured liquid is left, which is called as plasma.

Chemical composition or description of the substances in plasma

a) Water

i) Liquid portion of blood constitutes about 91.5 % of plasma

ii) 90 % of water, derived from absorption from G.I. tract, 10 % from cellular respiration.

Function

Acts as solvent & suspending medium for solid components of blood & absorbs, transport & release heat.

b) Solutes

Constitute about 8.5 % of plasma.

I) Proteins

a) Albumin - Smallest plasma protein, produced by liver & provides blood with viscosity, a factor related to maintenance & regulation of blood pressure. Also exert considerable osmotic pressure to maintain water balance between blood & tissue & regulate blood pressure.

b) Globulins - Protein group to which antibodies belong. Gamma globulins attack measles, hepatitis, polio virus & tetanus bacterium.

c) Fibrinogen - Produced by liver plays essential role in clotting.

II) Non - protein nitrogen (N - P - N)

Substances contain nitrogen but are not protein. Represent breakdown products of protein metabolism & are carried by blood to organs of excretion. Include Urea, Uric Acid, Creatinine & Ammonium salts.

III) Food substances

Products of digestion passed into blood for distribution to all body cells, which include Amino acids (from proteins), Glucose (from carbohydrates), fatty acid & Glycerol (from fats) .

IV) Regulatory substances

Enzymes produced by body cells to catalyse chemical reactions, Hormones produced by endocrine glands to regulate growth & development of body.

V) Respiratory gases

Oxygen & carbon di oxide. O_2 is more closely associated with Haemoglobin or R.B.C.s. CO_2 is more closely related with plasma.

vi) Electrolytes

Inorganic salts of plasma. Cations includes Na^+, K^+, Ca^{2+}, Mg^{2+}. Anions include Cl^-, HPO_4^{2-}, SO_4^{2-}, HCO_3^{-1}. Electrolytes help to maintain osmotic pressure, Normal PH, physiological balance between tissue & blood.

रसायनी क्रिया

वस्तुतः अभ्यासक्रम में उल्लेखित यह मुद्दा स्पष्ट रुप से 'Lymphatic System' इस विषय से संबंधित है। तथापि **शब्दकोष के अनुसार** रसायनी शब्द के **विविध अर्थ** निम्न वर्णित हैं।

१) रसवाहिनी, रसवह स्त्रोतस। ... च.चि.२०/१०

२) धमनी। ... सु.चि.१२/८

३) गोरक्ष, दुग्धी, काकमाची, जटामांसी, गुडूची इन वनस्पतियों के पर्याय नाम।

४) स्त्रोतस का पर्याय नाम।

Tissue fluid & Lymphatic system

Body fluids form 70 % of the body substance.

In an adult person, on an average 50 lit. of fluids are available as,

i) Intra cellular - 35 liters.

ii) Extra cellular - 15 liters.

Types of extra cellular

i) Intra vascular - 3 to 5 liters.

ii) Extra vascular - 10 to 12 liters.

Lymph is present in Lymphatic vessels while fluid present in tissue spaces, outside lymphatics is called as Tissue - Fluid.

Lymphatic system is grouped as,

i) Lymphatic vessels

ii) Serous membrane

iii) Lymphatic tissue

i) Lymphatic vessels

Resemble veins in structure, except that their coats are thinner & these have numerous valves. Lymph vessels are classified as Lymph capillaries, which are situated at sites where lymphatic system begins forming Lymphatic plexuses, which by union form medium sized Lymph vessels, which by union form lymphatic ducts.

Right lymphatic duct opens into right internal jugular vein, which opens into left subclavian.

Left thoracic duct also opens into left subclavian. Left subclavian ultimately opens into superior vena cava.

Nerve supply of lymph vessels is by non-medullated nerve fibres.

The lymph vessels develop from various systems in man. The connection with venous system persist at the opening of thoracic duct & right lymphatic duct, at the entry into great veins at the root of neck. The lymphatic system as such is a closed system.

ii) Serous membrane

Lines the internal cavity of the body & is reflected over many thoracic & abdominal viscera. The peritoneal serous membrane is the largest in the body.

iii) Lymphoid tissues

Consists of lymph glands. Tonsils, Thymus, Spleen, Payer's patches, Solitary lymph follicles & Appendix. Lymph glands are composed of two layers i.e. - cortex & medulla, lined by capsular layer, consisting of reticular & collagen fibres & separated all over by lymph sinuses or channels.

The glandular substance is made up of Reticulum, the meshes of which are occupied by lymphoid cells (Lymphocytic series) which together form lymph nodules.

Series

Development stages, maturation step.

Two types

i) Primary nodules

Situated in peripheral cortex. The lymphocytes are numerous. Closely packed up & mostly in mature form in this nodule.

ii) Secondary nodules

Situated in the central area of the gland. Lymphoid cells are lesser in number & mostly in precursor forms (lymphoblasts)

Collection of lymph

Lymph from various parts of the body is finally collected by two main ducts i.e. - Thoracic & Rt. lymphatic duct which receive lymph from left & right side of the body respectively.

Thoracic duct begin in abdomen at the level of 2nd lumbar vertebra & ends at the junctions of subclavian & internal jugular veins at the root of neck.

It is joined by left lymphatic duct, which receives lymph from lower two extremities, left upper extremity & left side of head, neck & face.

Right lymphatic duct receives lymph from right side of head, neck, face, thorax & right upper extremity.

Lymph circulation

Lymph flow is brought about by contraction of lymph vessels. Valves are helpful for onward one sided flow & prevents regurgitation. Pressure difference also brings about lymph flow.

At the right side of the beginning of the lymph vessels, pressure is 4 - 8 mm of H_2O.

At the end of thoracic duct, pressure is 0 - 6 mm of H_2O.

Activity of body tissue also exerts pressure on lymphatic vessels & maintain the blood flow. Suction action of thorax is an important factor. During inhalation, diaphragm descends & help in lymphatic circulation.

Rate of lymph flow = 1 to 1.5 ml / min.

Factors on which flow depends

i) Increase in capillary pressure.

ii) Increase in capillary permeability.

iii) Decrease in plasma colloidal osmotic pressure.

iv) Increase in tissue fluid proteins.

Composition of lymph

(Lymph is a modified tissue fluid)

i) water - 94 %

ii) solid contents - 6 %

(protein, fat, sugar, urea, creatinine, chlorides, calcium)

Functions of lymphatic system

1) It acts as drainage of metabolites formed in the body.

2) It maintains the body fluids & blood volume.

3) It collects waste material from tissues.

4) Lymph glands act as filtering agent. Help in defence mechanism against foreign bodies & bacteria.

5) It is a site of formation of lymphocytes.

6) Helpful in fat absorption & its carriage.

7) Through its reticulo-endothelial system,it has phagocytic properties

8) It forms gamma globulins, which are concerned with immunological reactions.

9) Though temporarily, it arrests the spread of malignant cells.

प्रकरण ४

जीवन प्रदान करनेवाला रक्तधातु

'जीवन' (जीवित रखना) यह रक्त का श्रेष्ठ कर्म बताया गया है। इसी लिए रक्तदान को 'जीवनदान' भी कहा जाता है और रक्तदान सर्वश्रेष्ठ दान है।

रस के समान द्रव स्वरुप किन्तु लाल रंग का (रक्तवर्णी), सर्व देह को व्याप्त करने वाला 'रक्त' दूसरे क्रमांक का धातु है। रस की अपेक्षा अधिक अग्निसंस्कार से, अधिक सारवान धातु तथा प्राणद्रव्य (अंबर-पीयुष, अन्न, जल) शरीर को प्रदान करने की दृष्टि से, सातत्य से परिभ्रमित होनेवाला यह महत्वपूर्ण धातु है। रस तथा रक्त दोनों धातु एक साथ ही समस्त शरीर में भ्रमण करते रहते हैं। इस लिए,

व्यानेन रसधातुर्हि विक्षपोचित कर्मणा।

तथापि, चक्रदत्त टीकाकार स्पष्ट रुप से कहते है -

रसरुप: धातु: किंवा रसतीति रस: द्रवधातु: उच्यते।
तेन रुधिरादीनाम् अपि द्रव्याणां ग्रहणं भवति॥

... च.वि.१५/३३, चक्रदत्त टीका

यद्यपि रस एवं रक्त का संवहन, परिभ्रमण एकत्रित स्वरुप से होता है, तथापि दोनों की स्वतंत्र रुप से अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं।

१) समधातु सिद्धांत सर्वतंत्र संमत सिद्धांत है। इसके अनुसार रस आद्य अथवा प्रथम धातु है और रक्त यह रस के पश्चात निर्माण होनेवाला द्वितीय क्रमांक का धातु है।
२) रसधातु के उपधातु स्तन्य, रज और रक्तधातु के उपधातु सिरा, कंडरा ये हैं।
३) रस का मल कफ है और रक्त का मल पित्त है।
४) रस का प्रसादांश रक्तपोषक अंश है और रक्त का प्रसादांश मांसपोषक अंश है।
५) रस सौम्य धातु है, उसका कार्य प्रीणन है। रक्त आग्नेय होता है, उसका कार्य जीवन है।
६) रस का वहन हृदय, धमनियों के द्वारा और रक्त का वहन सिराओं के द्वारा होता है।
७) अन्नपान के द्वारा रस की वृद्धि अथवा क्षय प्रथम होता है, रक्त का नहीं।
८) दुष्टी होने पर रक्तविस्त्रावण का उपदेश किया है, रसविस्त्रावरण का नहीं।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

निरुक्ति

रज रंजने, तेन रंजन: रागवर्णयुक्त: रागकृत् च धातु: रक्तम् इति अर्थो भवति।

रक्तेन संयुक्तं शुक्लवस्त्रं रक्तवर्णं भवति इति अत: रक्तवर्ण: रागकृत् च अयं धातु: इति स्पष्टम् एव।

मूल धातु - 'रज - रञ्जने' द्वारा वर्ण प्रदान करने की प्रक्रिया (Colour Formation) अंतर्भूत होती है। 'रजि' धातु को कर्मणि 'क्त' प्रत्यय लगकर - 'रज्यते इति रक्तम्'। संक्षेपत: स्वच्छ, रंगहीन भावपदार्थ, जब रंजित होता है अर्थात रंगयुक्त द्रव्य से मिश्रित होता है तब 'रक्त' शब्द का उपयोग किया जाता है। 'राग' अथवा 'रक्त' शब्द पारंपारिक दृष्टि से लाल वर्ण के द्रव्य के लिए ही उपयोग में लाया जाता है।

वर्ण दर्शक अन्य पर्याय

२) **शोणित**

शोण: संजात: अस्य इति शोणितम्।

यद्यपि शोणित शब्द भी लाल वर्ण के किसी भी पदार्थ के लिए उपयोग में लाया जा सकता है, किन्तु उसका उपयोग प्राय: द्रवधातु रक्त के लिए ही किया जाता है।

३) **लोहित:**

लोह: संजात: अस्य।

जिसमें लोह उपस्थित है, वह लोहित। संस्कृत भाषा के अनुसार 'र' और 'ल' इन वर्णों में भेद नहीं होता, इसके अनुसार 'रोहित' अथवा 'रोहिणी' ये भी रक्तवर्णवाचक शब्द हैं।

स्वरुप, गुण, कार्य स्पष्ट करनेवाले अन्य पर्याय

४) **असृक – अस्र**

इसमें से **सृज् विसर्गे** धातु का अर्थ है - त्याग, बहि:क्षेपण और **असृक्** का अर्थ है - जिस घटक (रक्त) का शरीर से बाहर त्याग नहीं किया जाता, जिसका रक्षण किया जाता है, ऐसा पदार्थ। साथही 'असु क्षेपणे' इस अर्थ से - 'जिसका नित्य विक्षेपण किया जाता है' ऐसा घटक।

५) **रुधिरम्**

रुध्यते रुणद्धि वा।

अर्थात जिस घटक को रोककर रखा जाता है (शरीर से बाहर निकलने से) अथवा जो घटक प्राणों को (विनाश से) रोकता है, बचाता है वह घटक।

६) **क्षतज**

क्षते क्षतात् वा जायते इति क्षतजम्।

अर्थात शरीर में कहीं भी व्रण उत्पन्न होने पर उससे बाहर निकलनेवाला घटक।

७) **प्राणद**

रक्त का प्राणावलंबन कार्य सूचित करता है।

८) **जीवशोणितम्**

इस पर्याय के द्वारा 'रक्तं जीव इति स्थितिः।' यह कार्य सूचित होता है।

९) **आग्नेय, तेजोभव**

रक्त का स्वरूप तथा पित्त से साहचर्य सूचित करते हैं।

१०) **रसोद्भव**

रस से उत्पन्न घटक।

११) **मांसकारि**

धातु पोषण क्रम के अनुसार मांस उत्पन्न करनेवाला घटक।

१२) **वशिष्ठ**

सप्तऋषियों में से एक ऋषि। संभवतः इन्होंने इस धातु के विषय में विस्तृत उपदेश किया है।

२) स्थान

१) **कृत्स्न शरीर (आपादतल-मस्तक)**

व्यानेन रसधातुः हि विक्षेप - उचित कर्मणा।
युगपत् सर्वतो अजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा॥ ... च.चि.१५/३६

इस श्लोक के अनुसार, रस शुद्ध में रक्त आदि अन्य और द्रव घटकों का भी समावेश होता है, यह चक्रदत्त ने निम्न श्लोक में स्पष्ट किया है। इसीलिए आयुर्वेद के अनुसार 'रस -रक्त-संवहन' यह संज्ञा समर्पक है।

रसरुपो धातुः किंवा रसति इति रसो द्रवधातुः।
उच्यते तेन रुधिर आदीनाम् अपि द्रव्याणां ग्रहणं भवति॥

... च.चि.१५/३६ (चक्रदत्त टीकाकार)

बाह्य प्राणद्रव्य (अंबर, पीयुष, अन्न, जल) रक्त के द्वारा ही आभ्यंतर प्राणों तक पहुँचाए जाते हैं। अतः रक्त का संपूर्ण शरीर में परिभ्रमण होता रहता है। अतः संपूर्ण शरीर यह रक्त का प्रमुख स्थान है। रक्त द्रव गतिशीलता के कारण सर्वदेहव्यापी है। अतः संचरण में सहायक शोणितवह धमनी, रक्तवह सिरा ये भी रक्त के स्थान हैं।

तासां तु (उर्ध्वगानां धमनीनां) वात - पित्त - कफ - शोणित रसान् द्वे द्वे वहस्तता दश। ... सु.शा.९/७

उपरोक्त श्लोक के संदर्भ में ज्ञातव्य है कि, उर्ध्व, अधः, तीर्यक् दिशाओं में जानेवाली धमनियों के पश्चात शाखाएं, उपशाखाएं संपूर्ण शरीर को रक्त प्रदान करती हैं।

रक्तवह सिरा त्वचा के ठीक नीचे स्थित होती हैं। अतः ये मृदु रचनाएँ रक्तमोक्षण तथा सिरावेध के लिए उपयुक्त होती हैं। सिराओं की उत्पत्ति रक्तधातु के उपधातु के स्वरुप में वर्णित है।

२) **रक्तवह स्त्रोतस**

रक्त की उत्पत्ति, परिणमन, वहन, उत्सर्जन इन गतिविधियों के लिए रक्तवह स्त्रोतस जिम्मेदार होता है। रक्त धातु का परिभ्रमण संपूर्ण शरीर में होना आवश्यक है, अतः रक्तवह स्त्रोतस भी संपूर्ण शरीर में फैला हुआ होता है।

रक्तवहे द्वे (स्त्रोतसी) तयोर्मूलं यकृत प्लीहानो रक्तवाहिन्य ऽ च धमन्यः। ... सु.शा.९/१२

रक्त के चयापचय की दृष्टि से यकृत, प्लीहा ये मूलस्थान महत्त्वपूर्ण है और परिभ्रमण की दृष्टि से रक्तवाही धमनियां महत्वपूर्ण हैं।

सगर्भावस्था में रक्तोत्पत्ति, शेष आयु में रक्तनिर्मिति के लिए सहायक, रक्त में निर्मित कुछ विषद्रव्यों का नाश इस दृष्टि से यकृत महत्वपूर्ण है और जीर्ण, शीर्यमाण रक्तघटकों के नाश के दृष्टि से प्लीहा महत्वपूर्ण है।

स्त्रीयों में ३ बहिर्मुख स्त्रोतस अधिक होते हैं, ऐसा माना जाता है। इसमें गर्भाशय अथवा योनिमार्ग को 'अधस्तात् रक्तवहम्' माना गया है।

३) **रक्तधराकला**

स्त्रोतस में रक्त के पोषक अंश जिस स्थान से प्राप्त किए जाते हैं वह आभ्यंतर आवरण है। रक्तनिर्मिति प्रक्रिया में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

४) **रक्ताशय**

आशय का अर्थ है - रिक्त स्थान।

सप्त आशयों में से रक्ताशय में रक्त अधिक मात्रा में संचित होता है, जैसे - कोष्ठ में स्थित यकृत, प्लीहा ये रक्ताशय ही हैं और हृदय, फुफ्फुस, रक्तवाही धमनियां ये भी उसीका हिस्सा है। इससे भी परें शार्ङ्गधर कहते है - रक्त शुद्धिकरण कार्य फुफ्फुस के द्वारा होता है, अतः उरःप्रदेश को जीवरक्ताशय कहना उचित है।

५) रक्त के स्थान इस विषय के साथ ही रक्तप्राधान्य से निर्मित अवयवों के संदर्भ का भी अध्ययन करना आवश्यक है। रक्त में विकृति उत्पन्न होने पर उससे संबधित निम्न स्थानों में भी विकृति निर्माण हो सकती है।

संदर्भ

१)	शोणितजौ	-	यकृतप्लीहानौ
२)	शोणितफेन प्रभवः	-	फुफ्फुसः
३)	शोणितकिट्ट प्रभवः	-	उण्डुकः
४)	रक्तमेदः प्रसादात्	-	वृक्कौ
५)	मांसाअसृक् कफ मेदः प्रसादात्	-	वृषणौ
६)	शोणितकफ प्रसादजं	-	हृदयम्
७)	कफशोणितमांसानां सारो	-	जिह्वा
८)	असृजः श्लेष्मणः प्रसादो	-	अन्त्राणि, गुदं, बस्तिः। इसी प्रकार

६) अण्वस्थि के अंतर्भागे में स्थित सरक्त मेद (Red Bone Marrow) का भी 'स्थान' की दृष्टि से उल्लेख आवश्यक है।

पृथ्वी – विस्रता (गंध)
जल – द्रवता
तेज – रक्तवर्ण & उष्णता
वायु – स्पंदनशीलता Pulse
आकाश – लघुता

३) स्वरूप, संघटन

सर्वं द्रव्यम् पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे।

इस नियम के अनुसार पांचभौतिक रक्त के ५ गुणविशेष सुश्रुत ने बताए हैं।

पांचभौतिकं तु अपरे जीवरक्तम् आहुः आचार्यः।

विस्रता, द्रवता, रागः, स्पंदनं लघुता तथा।

भूम्यादीनां गुणाः हि एते दृश्यन्ते च अत्र शोणिते। ... सु.सू.१४/८९

पृथ्वी के कारण विस्रता (विशिष्ट रक्तगंध), आप महाभूत के कारण द्रवता, तेज के कारण रक्तवर्ण तथा उष्णता (राग), वायु के कारण संवहन के दौरान अनुभूत स्पंदमानता और आकाश के कारण लघुता प्राप्त होती है।

पांचभौतिक संघटन होने पर भी 'व्यपदेशस्तु भूयसा' न्याय के अनुसार जल तथा तेज महाभूत का आधिक्य होता है।

४) धातु प्रकार

पोषक एवं पोष्य ये रक्तधातु के मुख्य २ प्रकार हैं।

रक्त प्रकार (वर्गीकरण २)

रक्त के प्रकारों के कारण सुश्रुत तथा वाग्भटोक्त संदर्भों का भी विचार करना आवश्यक है।

वाग्भट के अनुसार 'चार प्रकार के रक्त का चतुर्विध सिरा से वहन होता है'। इसके विपरीत प्रस्तुत लेखक के अनुसार रक्त का केवल एक ही प्रकार होता है, किन्तु वातादि दोषों का रक्त के द्वारा होनेवाला कार्य यहां स्पष्ट किया है, जैसे -

१) **वातशोणित रक्त** – वातवह सिराओं से बहनेवाला तथा अमोहं बुद्धिकर्मणाम्, प्रस्पंदन, पूरण आदि कार्य करनेवाला।

२) **पित्तशोणित रक्त के द्वारा** – भ्राजिष्णुता (शरीरकांति), अग्निदीपन आदि कार्य प्रतीत होते हैं।

३) **कफशोणित रक्त** – सर्वांग में स्नेह, संधिस्थैर्य, बल आदि संपन्न होते हैं।

एक ओर सुश्रुताचार्य कहते है कि वात शोणित, पित्त शोणित, कफ शोणित एवं शुद्ध रक्त इस प्रत्येक के वहन के लिए स्वतंत्र सिराएं होती हैं, तो दूसरी ओर यह मत प्रदर्शित करते है कि "सर्वाः सर्ववहः स्मृताः" अर्थात प्रत्येक सिरा से चारों प्रकार के रक्त का वहन होता है और यही विचार अधिक उचित लगता है।

रक्त के उपरोक्त ४ प्रकार यह अधिकतर कर्म की दृष्टि से वर्गीकरण है।

५) परिणमन

रक्तनिर्मिति में रक्तपोषक अंश यह उपादान कारण (अत्यावश्यक कारण) है और उस पर रक्ताग्नि की प्रक्रिया यह निमित्त कारण है।

त्रिधापरिणमन किस प्रकार होता है ?

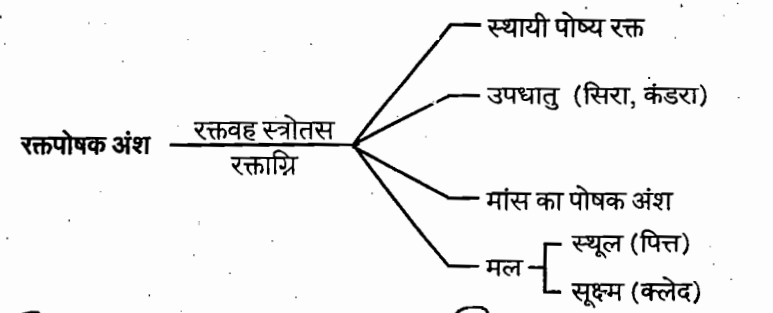

रक्ताग्नि को ही रंजक पित्त यह संज्ञा दी जाती है। रस का रंजकत्व करने का कार्य किस स्थान में होता है ?

स खलु आप्यो रसः यकृत् प्लीहानौ प्राप्य रागम् उपैति। ...सु.सू.१४/४

रस का श्वेत वर्ण बदलकर विविध स्तरों में रक्त वर्ण किस प्रकार प्राप्त होता है ?

रसः सप्ताहात् अर्वाक परिवर्तमानः श्वेत - कपोत - हरित - हरिद्र - पद्म - किंशुक - आलक्त रसप्रख्यः च अयं यथाक्रमम् दिवसपरिवर्तमानः आपद्यमानः पित्तोष्म उपरागात् शोणितत्वम् आपद्यते ॥

... सु.सू .१४/१० हरित (शिवदास टीका)

आप्य, वर्णहीन, स्वच्छ, द्रव स्वरुप रस धातु से आग्नेय एवं रक्तवर्णयुक्त रक्त धातु की उत्पत्ति किस प्रकार होती है ?

तेजो रसानां सर्वेषां मनुजानां यदुच्यते।

पित्तोष्मणः स रागेन रसो रक्तत्वमृच्छति। ... च.चि.१५

रंजक पित्त का स्थान यकृत, प्लीहा है यह सर्वसंमत है, किन्तु वाग्भटाचार्य के अनुसार,

आमाशयाश्रयं पित्तम् रंजकम् रसरंजनात ॥ ... अ.हृ.सू.१२/१३

अर्वाचीन विज्ञान के अनुसार, Instrinsic factor in stomach is essential for the process of blood formation. (Essential for B_{12} absorption from small intestine.)

आहार रस, ग्रहणी से हृदय में जाने के पश्चात रस का रक्त में रुपान्तर होता है, ऐसा उल्लेख शार्ङ्गधर ने किया है।

रसस्तु हृदयं याति समान मरुतेरितः।

रंजितः पाचितस्त्र मित्तेना ऽऽ याति रक्ताम् ॥ ... शा.पू.६/८

रक्तनिर्मिति में सरक्तमेद का (Bone Marrow) संदर्भ

जब विकृत पित्त मज्जा में स्थानसंश्रय करता है तब वैवर्ण्य, रक्तवर्णहीनता (पाण्डु आदि) उत्पन्न होते हैं। अर्थात मज्जा में प्राकृत पित्त होने पर सम्यक् रक्तोत्पत्ति होती है। रक्तधराकला संपूर्ण शरीर में उपस्थित होती ही है, तथापि यकृत, प्लीहा तथा अस्थिमज्जा (सरक्त मेद) इन स्थानों में विशेषत्व से होती है।

६) परिणमन काल

संतत्या भोज्यधातुनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत्।

चय-अपचय यह अखंडित चलते रहनेवाली प्रक्रिया है। रक्त पोषण का प्रारंभ दूसरे दिन से और अंत पाँचवे दिन होता होगा। (चरक के अनुसार रक्तनिर्मिति के लिए २ दिन और सुश्रुत के अनुसार ५ दिन)। इसी लिए रक्तवृद्धिकारक औषधि योजना प्रारंभ करने पर कम-से-कम ५ - ७ दिन के पश्चात हिमोग्लोबिन की मात्रा बढती है।

७) धातु गुण

१) रक्तवर्ण एवं द्रवता ये रक्त के प्रमुख गुण हैं।

प्राकृतावस्था में भी रक्तवर्ण भिन्न व्यक्तियों में भिन्न छटाएँ दिखाता है।

तपनीय इन्द्रगोपाभं - पद्म - आलक्तक संनिभम्।

गुंजाफलसवर्ण च विशुद्धम् विद्धि शोणितम् ॥ ... च.सू.२४/२२

उपमा दृष्टान्त के द्वारा रक्तवर्ण का स्वरुप

- **इंद्रगोप** - वीरबाहुटी के समान, गहरा लाल (Bright Red)
- **अलक्तरस** - कृष्णाभ लाल (Blackish Red)
- **गुंजाफल** - उपरोक्त दो वर्णों की अपेक्षा मध्यम वर्ण।
- **तप्त सुवर्ण के समान** - पीत अथवा केसरिया छटायुक्त लाल वर्ण।
- **पद्म कमल के समान** - फीका लाल अथवा श्वेतमिश्रित लाल।

प्रकृति, शरीर, आहार, कर्म, देशादि भेदानुसार रक्तसारता होने पर भी रक्तवर्ण की छटाओं में विविधता दिखाई देती है।

२) लोहितवर्ण के अलावा, उसकी शुद्धाशुद्धता 'धौतम् च विरज्यमानम्' इस वाग्भटोक्त वचन के द्वारा स्पष्ट की गई है। वस्त्र धोने पर भी उस पर लगा हुआ रक्त का दाग न निकलने पर रक्त को पित्त दूषित रक्त समझा जाता है।

३) रक्त के पांचभौतिक गुण पहले ही संघटन इस मुद्दे में स्पष्ट किए हैं। चरक ने रक्त को आप्य द्रव्य माना है। रक्तवर्ण आग्नेय अंश का प्रबलत्व सूचित करता है। रक्त को आग्नेय भी माना गया है। अष्टांग संग्रहकार ने रक्त को 'सौम्याग्नेय' प्रकृति का अथवा 'उभयात्मक' माना है।

४) **रक्त गुण (शार्ङ्गधरोक्त)**

रक्तं सर्व शरीरस्थं जीवस्य आधारम् उक्तम्।

स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद् भवेत्॥ ... शा.प्र.६/१०

शार्ङ्गधर ने 'लवणरस' विदाह आमसूचक बताया है। इस अनिष्ट, अप्रिय रस के कारण कोई हीन प्राणि भी ऐसे दुष्ट रक्त को स्पर्श नहीं करता।

५) **असंहतम्**

यह रक्त का और एक विशेष गुण है।

असंहतम् - न स्त्यायतीत्यन्ये।

अर्थात रक्त शरीर के अंतर्भाग में संहत, गाढा नहीं होता, उसका स्कंदन नहीं होता। इसके विपरीत, व्रणद्वारा शरीर से बाहर निकलने पर कुछ क्षणों में ही रक्तस्राव रुक जाना प्राकृत है। चिरकाल तक व्रणद्वारा रक्तस्राव होते रहना विकृति सूचक है।

६) 'रक्त' यह पित्त का आश्रय स्थान है, अतः उष्णता गुण स्वाभाविक ही है। किन्तु उष्णता भी एक विशिष्ट मर्यादा में ही होनी चाहिए। यह उष्णता ज्वर में स्पर्शगम्य स्वरुप और रक्तपित्त में कर्मगम्य स्वरुप में बढती है।

८) धातु - प्रमाण

अष्टौ (अंजलयः) शोणितस्य। ... च.शा.७/१५

रक्त द्रवधातु होने के कारण उसके मापन के लिए संबंधित व्यक्ति के स्वअंजली प्रमाण का उपयोग किया जाता है। प्रत्यक्षतः अंजली मापन अव्यवहार्य होने के कारण प्राकृत कार्य का अवलोकन कर अनुमान प्रमाण के द्वारा ही प्रमाण मापन करना पडता है।

दोषधातुमलानां तु परिमाणं न विद्यते॥ ... सुश्रुत

९) धातु - कार्य

१) **धृ - धारयति**

इस निरुक्ति के अनुसार, अन्य सभी धातुओं के समान रक्त भी शरीरधारण का कार्य करता है।

२) **जीवन**

बाह्य प्राणों के द्वारा आभ्यंतर प्राणों का पोषण कर शरीर जीवंत रखना यह रक्त का श्रेष्ठ कर्म है।

- **जीवनं नाम प्राणधारणम्।** ... अ.ह.सू.११/४, हेमाद्री टीका
- **जीवयाति प्राणान् धारयति इति जीवितम्।** ... च.सू.१/४२, चक्रदत्त टीका
- **प्राणो हि अभ्यन्तरो नृणां बाह्यप्राणगुणान्वितः।**
  धारयति अविरोधेन शरीरं पांचभौतिकम्॥ ... च.सू.१७/१४

अतः रक्त को दशप्राणायतनानि में से एक माना जाता है।

- **दश एव आयतनानि आहुः प्राणाः येषु प्रतिष्ठिताः।**
  शंखौ मर्मत्रयं कंठो रक्तं शुक्रः ओजसी गुदम्। ... च.सू.२९/३

प्राण का वहन रक्त के द्वारा ही होता है।

- **तत् विशुद्धम् हि रुधिरं बल - वर्ण - सुखायुषा।**
  युनाक्ति प्राणिनं प्राणः शोणितम् हि अनुवर्तते॥ ... च.सू.२४/४

३) **उत्तरधातुपोषण**

'मांसपुष्टी' यह रक्त का मध्यम कर्म है। त्रिधापरिणमन में रक्त से मांस का पोषक अंश निर्माण होता है। मांस के अग्रप्रतान कण्डरा (स्नायु विशेष) नामक रक्तधातु के उपधातु स्वरुप में निर्माण होते हैं।

४) **धातुनां पूरणम्**

केवल मांसधातु ही नहीं बल्कि सभीं धातुओं का पूरण, तर्पण तथा पोषण रक्त के द्वारा ही होता है। रक्तक्षय के कारण अन्य धातुओं के कार्य पर भी परिणाम होता है। इसी लिए चरकाचार्य ने देहपुष्टी यह विशुद्ध रक्त का कार्य बताया है। केदारकुल्या न्याय के अनुसार (अंशांश परिणमन) मांस से शुक्र तक सभी धातुओं को उनके पोषक अंश प्रदान करने का कार्य रक्तधातु करता है।

५) वर्णप्रसाद

प्राकृत वर्ण की प्रसन्नता, अविकृत वर्णछटा, तेजयुक्त कांति ये सब अर्थ वर्णप्रसाद शब्द से अभिप्रेत हैं। विशुद्ध रक्त लक्षण के वर्णन में भी विशुद्ध वर्ण ही बताया है। चरकाचार्य ने इसके लिए 'प्रसन्नवर्ण' यह शब्द बताया है आयुर्वेद के अनुसार गौर, श्याम, गौरश्याम, अवदात ये ४ प्राकृत वर्ण होते हैं। रक्तसंभरण बिगडने पर शरीर को विकृत वर्ण प्राप्त होता है, जैसे - त्वक्दुष्टी (कुष्ठ), विचर्चिका, श्वित्र में रक्तदुष्टी के कारण विकृत वर्ण दिखाई देता है। साथही कोथ (Gangrene) जैसी अवस्था में वह भाग कृष्णवर्णि होने लगता है। Cyanosis जैसी अवस्था रक्तसंवहन गंभीरता से बिघडने का सूचक है।

६) अव्याहतपक्तृवेग

अग्नि तथा पित्त का विविध स्तर पर होनेवाला पचन कार्य सुव्यवस्थित चलना, भूख सम्यक लगना, पचन ठीक से होना ये सभी शुद्ध रक्त के सूचक हैं।

७) स्पर्शज्ञानम् असंशयम्

रक्तसंवहन प्राकृत होने पर त्वचा की सहायता से योग्य स्पर्शज्ञान होता है। रक्त विकृत होने पर, त्वचा में स्वाप (बाधीर्य) अथवा अवेदना (स्पर्शज्ञान न होना) ये लक्षण दिखाई देते हैं अथवा क्वचित अतिवेदना, स्पर्शासहत्व (Tenderness) ये लक्षण होते हैं। रक्तदुष्टीजन्य विकार कुष्ठ तथा स्वेदवह स्त्रोतोदुष्टी लक्षणों में यह प्रतीत होता है। वस्तुतः स्पर्शज्ञान यह वात का कार्य है। तथापि रक्त प्राकृत न होने पर अथवा रक्त के कारण अवरोध निर्माण होने पर वातप्रकोप होकर स्पर्शज्ञान प्राकृत नहीं होता।

८) बल – ओजोवृद्धि

रक्त के द्वारा बाह्यप्राणों की प्राप्ति सुयोग्य प्रकार से होने के कारण सभी धातुओं तथा ओज की प्राकृत स्थिति निर्माण होकर उत्तम शारीरिक बल प्राप्त होता है। रक्तक्षय में बल कम होने के कारण ही श्रमज श्वास यह लक्षण उत्पन्न होता है, दुर्बलता प्रतीत होती है। शरीर के साथही इंद्रिय एवं मन का बल भी उत्तम रहता है। अतः 'अमोहं बुद्धिकर्मणाम्' यह कार्य दिखाई देता है।

९) आयुर्वृद्धि

धारणात् धातवः।

सभी धातुओं का यह कार्य सुयोग्य प्रकार से होने लगता है और दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है।

१०) धातु – सारता

कर्ण – अक्षि – मुख – जिव्हा – नासा – ओष्ठ – पाणि – पादतल – नख – ललाट – मेहनं च स्निग्धरक्तम् श्रीमद् भ्राजिष्णु रक्तसाराणाम्।

सा सारता सुखं, उद्धतां मेधां, मनःस्वित्वं सौकुमार्यम् अनतिबलम् – अक्लेशसहिष्णुत्वम् उष्ण – असहिष्णुत्वम् च आचष्टे॥ ... च.वि.८/१०४

रक्त की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए निम्न मुद्दे सहायक होते हैं

१) प्रश्न परीक्षा

- व्रण से तीव्र रक्तस्त्राव होने पर तुरंत ही पांडुता, फीकापन उत्पन्न होते हैं ? और कितने समय तक यह अवस्था बनी रही ?

अ) हाँ, फीकापन अधिक समय तक बना रहा।

ब) हाँ, फीकापन केवल कुछ ही समय तक ही रहा।

क) नहीं।

२) प्रश्न परीक्षा

- कामला, पूयसंचिति, त्वचा पर फोडें आना ये विकार बार-बार उत्पन्न होते हैं ?

अ) हाँ। ब) क्वचित। क) नहीं।

३) दर्शन परीक्षा

- त्वचा, नख चमकीले, लाल वर्ण के हैं ?

अ) नहीं। ब) अंशतः। क) हाँ।

४) दर्शन एवं स्पर्शन परीक्षा

- कान, नेत्र, मुख, जिह्वा, नासा, ओष्ठ, हस्ततल, पादतल, नख, ललाट ये अवयव प्रसन्न, नाजुक, स्निग्ध एवं लाल वर्णिय हैं ?

अ) नहीं। ब) अंशतः। क) हाँ।

उपरोक्त मुद्दों के अनुसार, प्रतिशत प्रमाण के अनुसार,

'अ' का अधिक्य होने पर - हीन सारता,

'ब' का अधिक्य होने पर - मध्यम सारता,

'क' का अधिक्य होने पर - उत्तम सारता समझी जाती है।

तथापि रक्तसारता होने पर भी ऐसे व्यक्ति में उष्णता तथा क्लेश (शारीर - मानस कष्ट) सहन न होना ये लक्षण दिखाई देते हैं। रक्त धातु हीन अथवा असार होने पर पाण्डुता, रक्तपित्त, वातरक्त, त्वक्दुष्टीजन्य 'कुष्ठ' (Skin Diseaases) आदि व्याधि उत्पन्न होने की संभावना बढ जाती है। यह टालने के लिए रक्त धातु के लिए रसायन के स्वरुप में लोह भस्म, मंडुर भस्म, ताप्यादि लोहवटी, नवायस चूर्ण, मंजिष्ठा चूर्ण आदि का उपयोग करें।

११) उपधातु

सिरा एवं कंडरा इन रक्तधातु के उपधातुओं की निर्मिति अथवा पोषण त्रिधापरिणमन के समय ही होती है। इसका अधिक वर्णन उपधातु प्रकरण में किया गया है।

१२) धातु - मल

रक्तधातु का स्थूल मल पित्त और सूक्ष्म मल क्लेद है। इसका विस्तृत वर्णन स्वतंत्र प्रकरण में किया गया है।

१३) विकृति - रक्तवृद्धि

पित्त प्रकोपक आहार-विहार सातत्य से, अतिमात्रा में करने पर रक्तवृद्धि होती है और निम्न लक्षण दिखाई देते हैं।

रक्ते रक्तांग अक्षिता सिरापूर्णत्वं च ॥ ... सु.सू.१४/१६

आँखे लाल होना, सिराएं रक्त से अत्यधिक मात्रा में भर जाना, जिस प्रकार उच्च रक्तचाप के कुछ रुग्णों में (Engorgement of Vessels) इस स्वरुप का सिरापूर्णत्व दिखाई देता है।

चिकित्सा

रक्तवृद्धि पर उपचार करने के लिए रक्तचाप कम करनेवाले तथा पित्तशामक स्वरुप के उपचार करने पडते हैं, जैसे -

१) रक्तविस्रावण (Blood Letting) अथवा

२) रक्तपित्त जैसी व्याधि में बाह्य तथा अभ्यंतरतः शीतगुणी चिकित्सा।

उदा. चंद्रपुटी प्रवालभस्म अथवा मौक्तिक भस्म, दूध-शक्कर के साथ देना, आँखों पर गुलाबजल अथवा शीत जल की पट्टी रखना।

१४) रक्त क्षय

रक्तक्षय अर्थात रक्त की मात्रा कम होने पर निम्न लक्षण दिखाई देते हैं -

रक्ते अम्लशिशिर प्रीतिः सिराशैथिल्य रुक्षता ॥ ... अ.हृ.सू.११/१७

१) रक्तक्षय के कारण धातुक्षयजन्य वातप्रकोप निर्माण होता है, जिससे वातशमनार्थ अम्ल रस सेवन की इच्छा उत्पन्न होती है। वात प्रकोप के कारण ही रुक्षता निर्माण होती है।

२) रक्तक्षय के दौरान ही पित्तक्षय भी द्रव गुण के कारण हो सकता है। इसी लिए ऐसी अवस्था में पित्त की वर्धित उष्णता कम करने के लिए शिशिर (शीत) प्रीति निर्माण होती है।

३) गंभीर व्रण से अत्यधिक रक्तस्त्राव होने पर सिराशैथिल्य (Collapsing of Vein) आसानी से समझा जा सकता है।

चिकित्सा

रक्तक्षय के रुग्ण में रक्तवर्धन के लिए आहार, विहार, औषधि के द्वारा उपचार किए जाते हैं। शारीरिक, मानसिक आराम के साथही नायली सत्त्व, दालें, खजूर, अंजीर आदि आहार्य द्रव्य लेने चाहिए। लोहासव औषधि ४ चम्मच, समान मात्रा में जल के साथ २ बार भोजन के पश्चात, कासीस भस्म १२५ mg ३ बार घृत के साथ लें।

रक्तधातु महत्त्व

रक्त के कार्य का विस्तार एवं व्याप्ति समझते हुए उसका सप्तधातुओं में होने वाला विशेष महत्त्व समझ में आता है। इसी लिए रक्तधातु के रक्षण के विषय में जागरुकता आवश्यक है। (संक्षेपतः, रक्तक्षय जैसी अवस्था को वैद्यकीय शाखा में विशेष महत्त्व देना आवश्यक है।)

देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते।

तस्मात् यज्ञेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः ॥ ... सु.सू.१४

रक्तधातु शल्यतंत्र (Surgery) में विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसी लिए ग्रंथकारों ने रक्त को चौथा दोष मानने के विषय में विशेष विचार किया है।

इस चर्चा को 'रक्तदोषवाद' कहा जा सकता है। किसी भी चर्चा, वाद, सिद्धांत का निश्चितीकरण करने में आयुर्वेद की एक विशिष्ट पद्धति होती है, जिसका अध्ययन 'पदार्थ विज्ञान' विषय में किया जाता है, जैसे - पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष आदि।

पूर्वपक्ष – 'रक्त' चौथा दोष है, किस प्रकार ?

१) **विशिष्ट हेतु**

वातादि दोषों के समान ही रक्त दुष्टी के भी स्वतंत्र कारण वर्णित हैं, जैसे - च.सू. २४ - विधिशोणित अध्याय में, तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल, कटु द्रव्य, मद्य, कुलत्थ, पर्युषित (बाँसी), विरुद्ध अन्न के कारण रक्त दुष्ट होता है, ऐसा वर्णन है। सुश्रुत सूत्रस्थान के व्रणप्रश्न अध्याय में दिवास्वाप, क्रोध, अभिघात के कारण रक्त दुष्ट होता है, ऐसा उल्लेख किया है।

२) **विशिष्ट स्वरुप लक्षण**

त्रिदोषों के समान रक्त के भी स्वरुप, लक्षण वर्णित हैं, जैसे - रक्त इंद्रगोप कीटक, तप्त सुवर्ण, पद्मक के समान लाल वर्ण का होता है।

३) **व्याधि**

त्रिदोषों के समान ही रक्तदुष्टी के कारण उत्पन्न स्वतंत्र व्याधि वर्णित हैं, जैसे - रक्तप्रदर, रक्तपित्त, रक्तार्श।

४) **विशिष्ट चिकित्सा**

कफ के लिए वमन, वात के लिए बस्ति इस प्रकार रक्त के लिए रक्तमोक्षण नामक विशिष्ट उपचार बताया है।

५) **'दोष' नामाभिधान**

वात, पित्त, कफ के साथही रक्त का भी 'दोष' संज्ञा से उल्लेख किया गया है।

च. चि. ५/२७ के अनुसार कफ एवं वात जीतने पर पित्त एवं रक्त भी यदि कुपित हुए तो 'उल्बण दोषों की' चिकित्सा करें। सु. सू. २१/३ के अनुसार वातादि के साथ रक्त भी उत्पत्ति, स्थिति, लय को कारण होता है।

संक्षेपतः, त्रिदोषों के समान ही रक्त के विषय में हेतु, लक्षण, व्याधि, चिकित्सा वर्णित हैं। साथही प्रत्यक्ष ग्रंथकारों ने ही क्वचित उसे दोष कहा है। अतः **'रक्त चौथा दोष है'**।

उपरोक्त पूर्वपक्ष के सभी मुद्दे स्वीकार्य है, किन्तु अधिक गहराई से विचार करने पर प्रत्येक मुद्दे का उथलापन तथा उस पर उपस्थित होनेवाले आक्षेप आसानी से समझ में आते हैं। यह किस प्रकार, इसका अध्ययन किया जाएगा।

१) **हेतु**

वस्तुतः रक्तदुष्टी के सभी हेतु पित्तप्रकोप के कारण होते हैं और प्रथम पित्त विकृत होता है और इसी कारणवश रक्तदुष्टी होती है।

(अर्थात रक्तदुष्टी के कारण पित्त विकृत न होते हुए केवल रक्त ही विकृत होता है, ऐसा तो निश्चित ही नहीं होता।)

व्रण प्रश्नाध्याय में सुश्रुत ने स्पष्ट रुप से कहा है कि, 'रक्त दोषों के बगैर स्वतंत्र रुप से दुष्ट नहीं होता'।

२) **व्याधि**

ग्रंथकाल में, जो दूष्य विकृत हुआ है, उसीके अनुसार व्याधिसमूह का नामकरण किया जाता था, जैसे - रक्तज व्याधि, मांसज व्याधि आदि। किन्तु दोष व्याधिजनक होते हैं और रक्त, मांस ये केवल विकार आश्रय हैं।

३) **नामाभिधान**

धातु एवं मल वैषम्यावस्था में दोष स्वरुप होने के कारण क्वचित दूष्यों को दोष कहा गया है, जैसे - चरकाचार्य कहते है कि, 'अतिसार की प्रारंभिक अवस्था में दोष जब स्वयं ही बाहर निकलते हैं, तब -

उपेक्षा एव भेषजम्।

यहाँ पुरीष को दोष कहा गया है। संक्षेपतः, प्रसंगवशात् रक्त को दोष की संज्ञा देने से उसकी गणना दोष प्रकार में नहीं की जा सकती।

निष्कर्ष

यद्यपि त्रिदोषों के समान ही 'रक्त' भी शरीरस्थित अतिमहत्त्वपूर्ण घटक है, तथापि,

प्रकृत्यारंभकत्वे सति दुष्टीकर्तृत्वं दोषत्वम्। **... मा.नि. (मधुकोष)**

इस प्रकार दोष संज्ञा के शास्त्रीय कसौटी पर खरा न उतरने के कारण,

रक्त को चौथा दोष नहीं माना जा सकता।

प्रकरण के अंत में चरकोक्त, एक विशेष मुद्दे का विवेचन आवश्यक है।

विशुद्ध रक्तपुरुष

प्रसन्न वर्ण – इंद्रियम् इन्द्रियार्थानिच्छन्तम् अव्याहत् पक्तृवेगम्।

सुखान्विते तु (पु) ष्टि बलोपपन्नम् विशुद्धरक्तं पुरुषं वदन्ति। ...च.सू.२४/२४

उपरोक्त श्लोक के सभी शब्दों का स्पष्टीकरण रक्त कार्य इस संदर्भ से किया गया है। अर्थात, यदि रक्त के उत्तम कार्य प्रतीत होते होंगे तो ऐसा रक्त होनेवाले व्यक्ति को विशुद्ध रक्त पुरुष कहा जाना चाहिए।

इसके पश्चात 'रक्त' धातु की संकल्पना के समान्तर, अर्वाचीन विज्ञान मे वर्णित "Blood" के विषय में पूरक विषयांश का अध्ययन किया जाएगा।

Blood

Definition

The red body fluid that flows through all the vessels, except the lymph vessel is called blood. Blood is a viscous fluid. It is thicker than water. Blood may be described as a tissue, in which there is interceilular substance, known as plasma & formed elements, the R.B.C.s, W.B.C.s & platelets, suspended in the plasma.

Blood Cells

1) Red blood corpuscles (Erythrocytes)

Mature RBC is a circular, biconcave, non - nucleated disc. The edges are rounded & thicker than the centre (Hence, central portion appears to have a lighter shade)

Under the microscope a single red cell seems to have a light brown or yellowish colour. But when seen in bulk, R. B. C.s appear to be red.

Composition of R. B. C.

i) Water - 60 - 70 %

ii) Solid - 30 - 40 % - Haemoglobin (29 %)
Other proteins (1 %)

- Diameter of R. B. C. - varies form 5.5 to 8.8 microns.
- Mean diameter of R. B. C. - 7.2 microns.

2) Composition of blood

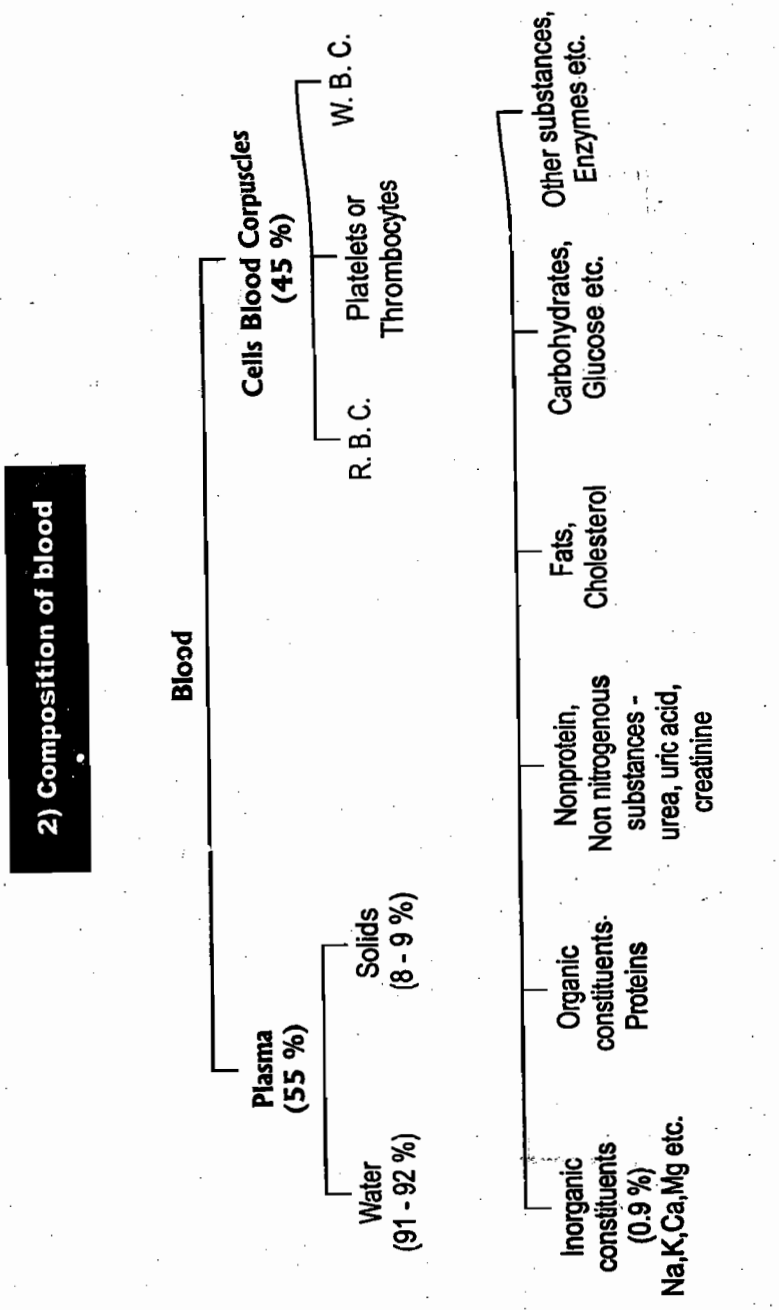

Important

1) The small size & the great number of red cells are having significance, because this makes available surface area very large & thus facilitates rapid exchange of gases & other materials between the cells & the plasma.

2) The absence of nucleus is also beneficial. Because it gives biconcave shape & also makes room for more haemoglobin.

Development of R. B. C.s

i) In the embryo

Develop form the area vasculosa of the yolk sac. At first the cells are nucleated. From the middle of the foetal life the nucleated cells disappear form the peripheral circulation.

ii) From the middle foetal life to about a month before birth

The liver & spleen are the main sites of R. B. C. formation.

iii) After birth

The bone marrow is the main site of erythrogenesis. At first all bones take part but by 20th year almost all the long bones become filled up with inactive yellow marrow & stop R. B. C. formation. Only the upper ends of femur & humerus contain red marrow & continue to form R.B.C.s. The vertebrae, the ribs & the flat bones produce R.B.C. throughout the life.

Span of life

The average span is 120 days in man.

Fate of R.B.C.s

Cells grow senile. Change their shape & size. Throw out processes. Cells are called as poikilocytes. Breakdown of cells release haemoglobin. How HB is disintegrated is shown in the adjacent fig.

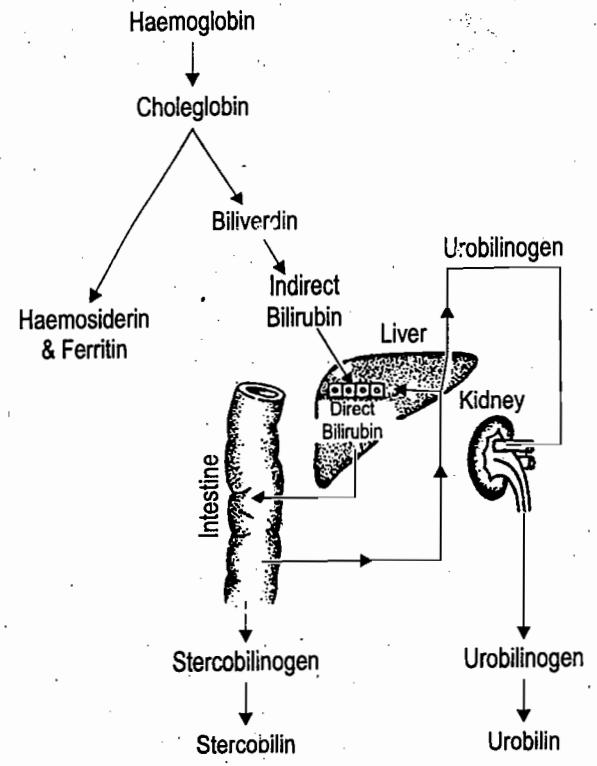

Fate of the red blood corpuscles and haemoglobin.

Normal R. B. C. count

i) Adult male - 5 million / c. mm
ii) Adult females - 4.5 million / c. mm
iii) Infants - 6 - 7 million / c. mm
iv) Foetus - 7 - 8 million / c. mm

Physiological variations

i) Diurnal variation - Lowest in sleep, maximum in the evening.
ii) Muscular exercise - Temporarily rise in count.
iii) Altitude - At higher altitude - count ↑
iv) High external temperature - count ↑

Functions of R.B.C.

i) Respiratory - R.B.C. carry O_2 & CO_2

ii) Maintain the viscosity of blood

iii) Maintain acid - base balance.

iv) Maintain ion balance.

Haemoglobin

Red pigment of blood is called as haemoglobin. It is a chromoprotein. It consists of following two parts -

a) Simple protein (Colourless) (Globin) - 96 %

b) Iron containing coloured pigment (Haem) - 4 %

Formation of Hb

is inside the RBC in the bone marrow. Factors necessary for the synthesis of Hb -

i) First class proteins - Diet containing milk, lean meat, fish, eggs, nuts, legumes, beans & pulses

ii) Metals - Iron - Daily 12 mgm, copper, manganese & cobalt

iii) Porphyrins

iv) Endocrine - Thyroxine

v) Vitamins - C & B12

Normal value of Hb - 14.5 Gm %

Function of Hb

i) Essential for O_2 carriage & CO_2 transport.

ii) Maintain acid base balance.

iii) Various pigments of urine, stool, bile etc. are formed from it.

White blood corpuscles (Leucocytes)

I) **Classification**

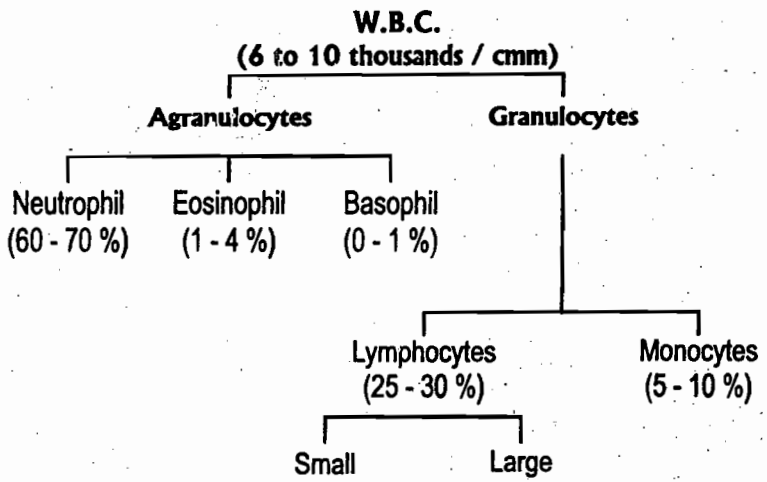

II) **Physiological variation in normal count**

i) Dinural variation - Morning & after rest ↓, Midday ↑ highest in the evening

ii) Muscular exercise - Count ↑

iii) After meal - Count ↑

iv) Excitement - Count ↑

v) Age - New born - 20, 000 / cmm

During infancy & childhood - Lymphocytes 40 - 50 %

vi) Pregnancy, at full term - Count ↑

Pathological Leucocytosis

i) **Neutrophilia**

a) Acute infections like Boils, Abscess, Tonsillitis, Cellulitis, Meningitis, Pneumonitis, Appendicitis

b) Non infective conditions like Haemorrhage, burn, Trauma (Surgical operations), myeloid leukaemia, coronary thrombosis, Intoxification due to drugs.

ii) Eosinophilia

Parasitic infections (Helminths, Filaria), Allergic diseases (Cold, Asthama, Urticaria), Skin diseases (Scabies, Eczema)

iii) Basophilia

Chronic myeloid Leukaemia

iv) Lymphocytosis

Infections (Whooping cough, Chronic infections like T. B.), Lymphoid Leukaemia

v) Monocytosis

Infections (Malaria, Typhoid), Monocytic Leukaemia

Leucopenia - causes

i) Infections - Influenza, enteric fever, malaria

ii) Severe Anaemia

iii) Malnutrition, Starvations, Debility

III) Difference in between RBCs & WBCs

	RBC	WBC
i	Contain Hb	Do not contain any Hb
ii	Small in size	Bigger in size
iii	Non nucleated	Nucleated living cells
iv	More in number	Less in number
v	Main function is oxygenation	Main function is defense mechanism
vi	Only one variety	Several varieties
vii	Big life - span	Shorter life - span

IV) Functions of WBC

i) Act as soldiers - Phagocytosis.

What is Phagocytosis ?

The neutrophils & monocytes engulf foreign particles & bacteria Neutrophils manufacture a trypsin like enzyme, with which they digest the bacteria & dead tissue. So the dead tissue in an inflammatory area becomes liquefied & "Pus" is formed.

ii) Antibody formation - Lymphocytes.

Manufacture β & γ fractions of serum globulin. Immune bodies are associated with Gamma (γ) Globulin fraction.

iii) Anti - histamine (Anti - allergic) function

Eosinophils are rich in Histamine. They fight against allergic conditions

iv) Prevent intravascular clotting

Basophils secrete Heparin which prevents intravascular clotting.

Blood platelets (Thrombocytes)

Non - nucleated, round or oval bodies, having various sizes. Average size 2.5 micron. Average life is about 3 days. Total count 2, 50, 000 to 5, 00, 000/cu.mm (In 'Purpura', haemorrhage occurs beneath the skin & mucous membrane & platelet count is found to be low.)

Functions

i) Initiate blood clotting.

ii) Repair capillary endothelium.

iii) Speed up clot retraction.

vi) Helps in haemostatic mechanism.

Functions of blood

1) Transport of O_2 & CO_2.
2) Transport of nutrition.
3) Drainage of waste products to lungs, kidney, intestine etc.
4) Vehicle media for carrying hormones, vitamins, other essential chemicals.
5) Maintenance of water balance.
6) Maintenance of ion balance.
7) Maintenance of acid base equilibrium.
8) Regulation of body temperature.
9) Helps in the defense mechanism of the body.
10) Due to coagulation property, guards against haemorrhagic ill effects.

विविध रक्तपेशिका उत्पत्ति (Haemopoiesis)

The process by which blood cell is formed is called Haemopoiesis or Haematopoiesis.

(Note - Please see the paragraph of development of R. B. C. s)

Undifferentiated mesenchymal cells in red bone marrow are transformed into Haemocytoblasts, immature cells, which undergo differentiation into five types of cells from which the major types of blood cells develop.

i) Proerythroblasts - form mature erythrocytes.
ii) Myeloblasts - from mature Neutrophils, Eosinophils & Basophils.
iii) Megakaryoblasts - form mature thrombocytes (Platelets).
iv) Lymphoblasts - form mature Lymphocytes.
v) Monoblasts - from mature monocytes.

WBC production

a) Granular leucocytes produced in red bone marrow (myeloid tissue)
b) Agranular leucocytes are produced in both myeloid & lymphoid tissue.

रक्तस्कंदन प्रक्रिया

देहस्य रूधिरं मुलम् ... तस्मात् यत्नेन संरक्ष्यं ॥ रक्तं जीव इति स्थितीः ॥

इस वचन के द्वारा रक्तस्कंदन का महत्त्व स्पष्ट होता है। यदि प्राणधारण करनेवाला रक्त दुर्घटना अथवा शस्त्रकर्म के दौरान शरीर से बाहर जा रहा होगा, तो रक्तस्कंदन की अनेक पद्धतियां आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित हैं, जैसे -

१) गाढ स्वरूप में पट्ट बंधन (Tight bandage),
२) कषाय, शीत औषधियों का अवचूर्णन जैसे - अर्जुन चूर्ण, चंदन चूर्ण आदि,
३) दहन कर्म (Cauterisation) आदि।

किन्तु शरीर से बाहर निकलते ही रक्त निसर्गतः कुछ ही क्षणों में स्कन्दित होता है (Clots)। यह नैसर्गिक रक्तस्कंदन अथवा रक्तस्तंभन किस प्रकार होता है, इसका अध्ययन करते हैं।

Haemostasis

Haemostasis means stoppage of bleeding. Usually, haemorrhage in smaller blood vessels (micro - circulation) stops automatically. But extensive haemorrhage from larger vessels usually requires voluntary intervention like ligation of blood vessels or cauterisation etc.

What is coagulation or clotting ?

When blood comes out of the body, it looses its fluidity in a few minutes & a semisolid jelly is formed. This phenomenon is called clotting or coagulation of blood. Coagulation is the property of plasma alone & not of blood cells. Platelets do take some part in the process.

Normal clotting time (C. T.) = 3 to 8 min.

Process of clotting of blood

It consists of following three steps -

i) Vascular spasm.ii) Platelet plug formation. iii) Clotting.

i) Vascular spasm

Smoot muscles of blood vessel's walls contract immediately after damage, which is called as vascular spasm. It reduces blood loss.

ii) Platelet plug formation

a) When blood comes out, the platelets come into contact with parts of a damaged blood vessel (Platelet adhesion)

b) They disintegrate & liberate Thromboplastin (Certain amount of Thromboplastin is also derived from the damaged tissues of the injured part) . This phase is called as platelet release reaction.

c) Thromboplastin converts prothrombin into thrombin with the help of of Ca.

Thromboplastin + Prothrombin + Calcium ion → Thrombin

d) Thrombin interacts with fibrinogen forming fibrin (This is the clot)

Thrombin + Fibrinogen = Fibrin (Clot)

What are coagulation factors ?

Clotting involves various chemicals known as coagulation factors. Total 12 factors are as follows -

Coagulation factor	Synonym
i	Fibrinogen
ii	Prothrombin
iii	Tissue factor (Thromboplastin)

iv	Ca
v	Proaccelerin (Labile factor)
vii	SPCA = serum prothrombin conversion factor (Stable factor)
viii	AHF = Anti haemophilic factor
ix	Christmas factor
x	Stuart factor
xi	PTA = Plasma thromboplastin antecedent
xii	Hageman factor
xiii	Fibrinase

Some more details

i) Fibrinogen

Globulin in nature. present in plasma

ii) Prothrombin

Protein in nature. Present in plasma. Normal prothrombin time is 12 - 13 sec. It will be longer in deficiency of factor v or vii. Prothrombin is manufactured in liver. Vit. K is essential for the formation.

iii) Thromboplastin

Derived form two sources - Intrinsic in the plasma, Extrinsic in the tissues

iv) Antihaemophilic factor

In Haemophilia, due to absence of this factor, breakdown of platelets & liberation of thromboplastin becomes difficult.

iv) Christmas factor

This factor is essential for the formation of intrinsic thromboplastin. A disease simulating Haemophilia is developed due

to the absence of this factor. This type of disease was first found in a patient named Christmas & hence the name.

Factors accelerating coagulation

i) Warmth (Cautery)

ii) Contact with water wettable surface

iii) Inj. vit. K or oral administration of high doses increases the prothrombin

iv) Addition of calcium chloride

v) Inj. Adrenaline

What is thrombosis ?

This is intravascular clotting, which is abnormal. Thrombus is a clot formed inside the blood vessels. eg. - Coronary thrombosis & cerebral thrombosis.

Heparin is anticoagulant both in vivo & in vitro. The first thrombolytic agent, approved to use in 1982 is "Streptokinase (Streptase) "

Blood groups

Knowledge of blood groups is a gift of current century. This has a great practical significance, especially during blood transfusion. When the blood of a healthy man (Donor) is injected into the body of the patient (Recipient), if two bloods are not compatible, haemolysis of the donors corpuscles will take place, which lead to dangerous effects to the recipient.

So, compatibility or matching of blood groups is very essential.

There are, at least, 300 blood group systems, that can be detected on the surface of RBC. The two major blood group classifications ABO & RH. Among the others are the Lewis, Kell, Kidd & Duffy systems.

The phenomenon of haemagglutination is due to interaction between two factors Agglutinogens, present in the corpuscles & Agglutinins, present in the plasma or serum ! The ABO blood grouping is based on two agglutinogens symbolised as A & B. Individuals, whose erythrocytes manufacture only agglutinogen A are said to be blood. Group A. Those who manufacture only agglutinogen B are type B. Individuals who manufacture both A & B are type AB. Those who manufacture neither are type "O".

What is danger in incompatible blood transfusion (B. T.) ?

In an incompatible BT, the donated erythrocytes are attacked by the recipient agglutinins, causing the blood cells to agglutinate (clamp) . Agglutinated cells become lodged in small capillaries throughout the body & over a period of hours, the cells swell, rupture & release Hb into the blood. Such a reaction is called hemolysis. eg.- If an individual with type A blood receives a transfusion of type B blood. The recipient's blood contains A agglutinogen & B agglutinins. The donor's blood contains B agglutinogen & A agglutinins. So, B agglutinins in the recipient's plasma will attack the B agglutinogens on the donor's erythrocytes, causing agglutination & haemolysis.

Table of donor & receipient

Blood group	Can donate to	Can receive from
A	A, AB	A, O
B	B, AB	B, O
AB	AB	AB, O
O	A, B, AB, O	O

Rh system

This classification is named because it was first worked out in the blood of the Rhesus monkey. Individuals whose erythrocytes have

the Rh agglutinogens are called as Rh positive (Rh +) . Those who do not have Rh agglutinogens are called as Rh negative (Rh –)

Utility of blood typing

- Blood transfusion
- Paternity test
- Ethnological studies
- Identification of blood stains in murder & other cases
- Certain blood diseases
- Anthropological studies

What is erythroblastosis fetalis ?

If an Rh –ve female is impregnated by an RH +ve male & the foetus is Rh +ve, foetal Rh +ve agglutinogens may enter the maternal blood via the placenta during delivery. Upon exposure to the foetal Rh +ve agglutinogens, the mother will make anti Rh agglutinins. If the female becomes pregnant again, her anti Rh - agglutinins will cross the placenta into the foetal blood. If the foetus is Rh +ve, haemolytic disease of the newborn will result, which is called as erythroblastosis foetalis.

---

should be in the emergency bag.)

2) Produce peripheral vasoconstriction, hence BP rises. This function is useful in the hypotensive shock.

3) Eosinophil count is reduced hence used in the condition of Eosinophilia (Causes are – Bronchial asthma, allergy worms, Tropical eosinophilia)

4) Muscular action is stimulated, hence used in bodyache and backache.

5) Counter act the symptoms of stress.

6) Mental changes – Euphoria (Mental feeling of enjoyment)

7) Promote the secretion of HCl in the stomach. Hence steroids should not be used in the cases of hyperacidity (अम्लपित्त) or peptic ulcer

8) Anti-inflammatory action – used in R.A. (Rheumatoid arthritis)

9) Action on nutrients

a) Proteins – Steroids break down the tissue proteins.

b) Due to steroids, blood sugar level increases (Hence contraindicated in diabetes mellitus)

c) Fats – Steroids increase the absorption of dietary fat (Hence uncontrolled use of steroids may increase the obesity)

Details of Adrenaline (Epinephrine)

Actions of Adrenaline

1) Systolic blood pressure is raised.

2) Rate, force and output of the heart is increased.

3) Coronary blood vessels are dilated.

4) Eyes – pupils are dilated.

5) Skeletal muscles are stimulated, enhanced working capacity, hence delayed fatigue.

6) Smooth muscles of G.I. tract, urinary bladder and uterus are relaxed.

7) BMR is increased, blood glucose level is increased.

Note

Inj. Adrenaline subcutaneous (S/C) is also a life saving drug and should be kept in emergency bag.

Adrenaline acts as a neurotransmitter at the sympathetic system.

Details of Nor-Adrenaline (Nor-Epinephrine)

Actions of Non-adrenaline

1) General vasoconstrictor.

2) Hence systolic and diastolic both the types of blood pressure are raised.

3) Pathology

Over secretion of nor-adrenaline

Cause

Benign tumour of adrenal medulla (Pheocromocytoma)

Investigation

Urinary catecholamines (VMA) are increased in 24 hr. urine sample.

5) The pancreas

The pancreas produces digestive enzymes which pass into the first part of the small intestine (Duodenum) . But it is also an endocrine gland, containing groups of specialized cells, in areas known as the Islets of Langerhans, which monitor the concentration of glucose in the blood and secrete appropriate amount of the hormones, insulin and glucagon to lower or raise the amounts of sugar as necessary.

Glucagon is a protein hormone, produced by the islet cells of the gland, which has an effect opposite to that of insulin. Glucagon is also involved in the mobilization of fatty acids for energy purposes. It is used as an emergency measure when the blood sugar levels are dangerously low (Hypo glycaemia) and must be rapidly raised. A glucagon injection can prevent brain damage or even save life.

Insulin acts by forming port on cell membranes which allows glucose to pass in. In its absence, glucose, which is the main fuel of the body, can not get into the cells and accumulates in the blood. The body responds to its need for glucose by releasing more from the muscles which waste away. The wasting disorder caused by insufficient insulin is called Diabetes mellitus and is corrected by injections of insulin.

6) The sex glands

Puberty is the period, occurring usually between the ages of ten and fourteen, when the sexual organs mature, the secondary sexual characteristics begin to develop, the significance of sexuality begins to become apparent to the young person and reproduction becomes possible. The time scale varies considerably, especially, in boys, so that at the age of fourteen one body may appear sexually mature while another may have infantile genitalia.

In both female and male, puberty is initiated by the production, by the pituitary gland, of hormones, called gonado trophines, which cause the ovaries and the testicles to increase, respectively oestrogen and testosterone.

In girls, the first sign of puberty is breast budding or the appearance of pubic hair. One breast may develop more rapidly than the other, but inequalities normally disappear as growth continues. It is usually are mature enough for ovulation to occur so that the first menstrual period is induced. By this time the breast are well advanced and pubic and underarm hair are fully grown. During this period there is an acceleration of growth with a widening of the pubis and characteristic deposition of fat under the skin. When the menstrual periods are fully established at regular intervals, puberty is complete.

The first sign of puberty, in boys is an increase in the rate of growth of testicles and scrotum. This is followed by the beginnings of a beard and the appearance of pubic hair extending up vard in a diamond pattern towards the naval. The penis then begins to grow, reahing its adult size in about two years. Sperm production gets under way, under the influence of testosterone and this also prompts the maturation of the prostate gland and the seminal vesicles and enlargement of the voice box (Larynx) so that the voice deepens.

About 80 % of the adult's height is reached before sexual maturation starts, but a considerable spurt in growth and even more in weight gain, occurs during the period around puberty. The body weight may be almost doubled during this period in boys, this mainly due to increase in the weight of the muscles. In girls, muscle weight increases by about 50 % but there is also a large increase in fat deposition. By around eighteen years of this amounts to over 20 % of the body weight, compared to 10 % in young man.

Functions of Testesteron

1) Development and maintains male accessory organs (like seminal vesicles, prostate gland)
2) Enhances spermatogenesis
3) Development and control of secondary sex characters in male (जात व्यंजन लक्षण)
4) Acts as an anabolic hormone in association with GH.
   i) Affecting protein metabolism – Positive nitrogen balance
   ii) Deposition of calcium in bones and their development
   iii) Na, K, Ca, P – These minerals are retained in the body
   iv) Stimulates growth and body weight increases.
5) Stimulation of Erythropoiesis
6) BMR is increased.
7) Skin – Subcutaneous tissue, sweat and sebaceous gland are developed and they are under the influence of testesterone.
8) Renal blood flow increases.
9) Development of emotional maturity.

Functions of Oestrogen

Functions

1) Development of female accessory sex organs.
2) Development of female secondary sex characters.
3) Menstrual cycle – Oestrogen influences Follicular phase i.e. 1st half of menstrual cycle. Oestrogen secretion is maximum around ovulation period. During secretory phase (2nd half of M.C.) Oestrogen acts with progesterone.
4) During pregnancy – Oestrogen secretion by placenta keeps on increasing till full term, when myometrium of uterus develops under its action.
5) Vaginal epithelium multiplies and is keratinized by oestrogen and pH of vaginal secretion becomes more acidic (prevents infection)
6) Due to oestrogen, calcium deposition in the bones in stimulated. Hence Osteoporosis or backache are common problems after menopause. In these cases gynecologist suggest HRT (Hormonal Replacement Therapy)
7) Oestrogen prevents atherosclerotic changes. Hence, after menopause, hypertension is common in the females also.

Functions of Progesterone

Secreted by Corpus luteum and by placenta.

Functions

1) Progesterone with oestrogen maintains the secretory phase of menstrual cycle.
   Withdrawal bleeding is due to fall in progesterone level.
2) Progesterone helps in embedding of fertilizing ovum and its nourishment.
3) Progesterone influences, the formation of placenta. After 1st Trimester, placenta secretes progesterone.

4) Progesterone serves to make the myometrium of gravid uterus, which is non-sensitive to the action of Oxytocin. Action of Oxytocin starts at the time of parturition (labour)

5) Progesterone influences the development of mammary gland (only the growth but not the milk production)

6) Due to progesterone, birth canal, during pregnancy is enlarged.

7) During the progesterone therapy, development and rupture of Graffian follicle is inhibited resulting unovulatory menstrual cycle.

7) Thymus gland

- No specific hormone is secreted. Secretes Lymphopoietin.
- Thymus gland is situated in the thorax, in the midline, behind the sternum and in front of trachea.
- Weight at birth = 20 gm. and at puberty = 40 gm.
- Thymus gland has two lobes with cortex and medulla.

Functions

1) Thymus gland is partly lymphoid and partly endocrine in function.

2) Thymus gland is one of the seats of lymphocyte formation in children.

3) Thymus gland has a relation with the growth of gonads.

4) Thymus helps for the salt deposition in the bones.

5) Recently, it is found that thymus is important in association with immunological processes in the body.

6) Small lymphocytes are said to migrate to various antibody-forming tissues of the body (Spleen, lymph node, thymus etc.)

7) Thymus gland produces 'curare-like substance which depresses Myoneural junction. Hence, in the disease 'Myasthenia Gravis', thymus is found to be enlarged. Myasthenia Gravis is a disease due to deficiency of Ach i.e. Acetylcholine.

प्रकरण ५

शरीर को आकार देनेवाला मांस धातु

राजयक्ष्मा, मधुमेह जैसी व्याधियों में उपचार के अभाव में अधिक समय के पश्चात मांसक्षय के कारण अस्थिपंजर देह विकृत दिखाई देने लगता है।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

त्वचा के नीचे लाल रंग का, फैला हुआ, विविध गतिविधियों का माध्यम होनेवाला यह मांस धातु है। मांस शब्द का स्वरूप, गुण, कार्य स्पष्ट करनेवाले अनेक पर्याय उपलब्ध हैं।

पिशितं, तरसं मांसं पललं कृत्यम् आभिषम्। ... अमरकोश २/६/६३

१) **पिशितं** → **लंबाई, चौडाई, मोटाई के साथ ही विशिष्ट आकार (आकृति) होनेवाला घटक!**

'पिश्यते इति' - पिश धातु को 'क्त' प्रत्यय लगकर यह शब्द बनता है।

जो एक-एक पेशी के स्वरूप में विभक्त किया जाता है।

पिशि धातु का अर्थ है - अवयव का खंड अथवा विभाग करना।

२) **तरस** → **तरः अस्ति अस्मिन् इति अच्च।**

बल का आधार होनेवाला घटक।

३) **पलल** → **पलगतौक पलति पल्यते वा अनेन।**

अर्थात जिसके द्वारा क्रिया की जाती है, वह घटक।

४) **क्रव्य** → **क्लवते अस्मात्।**

जिसके दर्शन से भय उत्पन्न होता है, ऐसा घटक अथवा 'कूयते अनेन इति क्रव्यम्' अर्थात गति का साधन होनेवाला घटक।

साथही, रक्त से निर्माण होता है, अतः रक्ततेज, रक्तभव, मेदधातु के पोषण के लिए आवश्यक अतः मेदसकृत, सेवन करने की दृष्टि से योग्य घटक अतः आमिष, समऋषियों में एक 'काश्यप' ये मांसधातु के पर्याय नाम हैं।

२) स्थान

१) संपूर्ण शरीर – बाह्यतः त्वचा तथा अभ्यंतरतः अस्थि के बीच संपूर्ण शरीर में मांस धातु का अस्तित्व होता है। अस्थि, संधि ये अवयव मांस से लिप्त होते हैं। दंत, नख आदि विशिष्ट अवयवों के अलावा शरीर के शाखा, कोष्ठ, शिर इन सभी स्थानों पर मांस का लेपन होता है। यहाँ की सिरा, स्नायु आदि रचनाओं पर मांस का संवरण, आच्छादन होता है।

२) कुछ स्थानों मे अनेक पेशीयों का संघात होता है, जिनका धारण करने के लिए मांसधारा कला का अस्तित्व होता है।

सप्त कलाओं में से यह प्रथम है, जिसके आश्रय से मांस की वृद्धि होती है। कलाश्रित मांसधात्वग्नि पोषक मांस का रुपान्तर पोष्य (स्थायी) मांसधातु में करता है। सिरा, धमनी, स्नायु आदि मांसधराकला में ही उत्पन्न होते हैं।

तासां प्रथमा मांसधरा नाम (कला) यस्यां मासे सिरा स्नायु धमनी स्त्रोतसां प्रताना भवन्ति। यथा विसमृणालानि विवर्धन्ते समन्ततः।

भूमो पंकोदकस्थानि तसा मांसे सिरादयः। ... सु.शा.४/८, ९

३) मांस की उत्पत्ति, परिणमन, वहन, उत्सर्जन ये क्रियाएं मांसवहस्त्रोतस के द्वारा ही होती हैं।

४) मांसधातु का आकुंचन, प्रसरण होने के लिए, अस्थि का आधार प्राप्त करने के लिए स्नायु बंधन स्वरूप में कार्य करते हैं, त्वचा की उत्पत्ति तो मांसधातु के उपधातु के स्वरूप में ही होती है। त्वचा को मांसवह स्त्रोतस का मूलस्थान भी बताया गया है।

मांसवहीनां च स्त्रोतसां स्नायुमूलं त्वक् च। ... च.वि.५/८

बाह्य त्वचा के नीचे स्नायुओं में फैले हुए मांस में मांसवह स्त्रोतस स्थित होता है।

३) मांस – स्वरूप, संघटन

सर्वं इदम् पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे।

यद्यपि यह सत्य है, तथापि पृथ्वी आधिक्य के कारण ही मांस की स्थिरता अधिकता से प्रतीत होती है।

मांसं पार्थिवम्। ... सु.सू.१५/८ चक्रदत्तकृत भानुमती टीका

रक्त, मांस, मेद आदि धातु उत्तरोत्तर गुरु होते हैं। ... च.सू.२७,अ.हृ.सू.

४) मांस धातु – प्रकार

स्थायी (पोष्य) एवं अस्थायी (पोषक) ऐसे २ प्रकार।

लेपन, शरीरपुष्टी ये स्थायी मांस के कार्य हैं।

पेशी क्या है ?

मांस अवयवसंघातः परस्परं विभक्तः पेशी इति उच्यते। ... सु.शा.५/३७

५) मांस धातु – परिणमन

- **रक्तम् मांसपुष्टिं (करोति)।** ... सु.सू.१५/५
- **रक्ताद् अग्निपक्वात् मलः पित्तं स्थूलभागः शोणितम्, अणुभागस्तु मांसम् इति। ततोऽपि आत्मपावक पच्यमानात् मलः श्रोत्र – नासा – कर्ण – अक्षि प्रजननादि स्त्रोतोमलः स्थूलो भागः मांसम्।** ...सु.सू.१४/१० डल्हण टीका

अग्नि संस्कार के कारण पूर्वधातु की अपेक्षा संघटन में किस प्रकार बदलाव आता है ?

रक्तधातु → वायु + अग्नि + तेज → मांसधातु

द्रव, प्रवाही → महाभूतों का संयोग → घन, स्थिर, सांद्र

(इस संदर्भ में, अग्नि = मांसधात्वग्नि)

वायु अम्बु तेजसा रक्तम् उष्मणा च अभिसंयुतम्।

स्थिरतां प्राप्य मांसं स्यात् स्वउष्मणा पक्वम् एव तत्।

रक्त → परिणमन → मांस

रक्तवर्णि → वर्णान्तर → भूरे लाल वर्ण का

त्रिधा परिणमन

मांसधातु का पोषकांश — मांसवह स्त्रोतस / मांसधात्वाग्नि →
- पोष्य मांसधातु एवं वसा, षट्त्वचा ये उपधातु
- मेद का पोषकांश
- स्थूल मल - 'ख' मल
- सूक्ष्म मल - क्लेद

६) मांस - परिणमन काल

- **आहार उपभोगदिनान् ... चतुर्थे अन्हि मांसता।**

... च.चि.१५/३२, चक्रदत्त टीका

- **तदनंतरं (रसानंतरं) ये षड्धातवः ते प्रत्येकं पंचभिः पंचभिः अहोभिः संपद्यन्ते।**

... सु.सू.१४/१४, डल्हण टीका

प्रत्येक धातु में क्षरण, आपूर्ति प्रतिक्षण चलती ही रहती है, किन्तु उपरोक्त श्लोक का व्यावहारिक अर्थ समझने पर स्पष्ट होता है कि, दीर्घकालीन व्याधि से ग्रस्त मांसक्षय के रुग्ण में उपचार का परिणाम तीसरे- चौथे दिन के पश्चात प्रारंभ होकर मांसवृद्धी के अंशतः परिणाम दसवें दिन के आसपास दिखाई देने लगते हैं। (थकान, दुर्बलता कम होना आदि)

७) मांस - गुण

चरक सूत्रस्थान के अनुसार अजामांस (बकरे का मांस) तथा मनुष्यमांस गुणात्मक दृष्टि से समान होते हैं - नातिशीत, नातिगुरु तथा नातिस्निग्ध, बृंहणकारक।

न अतिशीत गुरु स्निग्धं मांसम् अजम् दोषलम्।

शरीरधातु सामान्यात् अनभिष्यंदि बृंहणम्। **... च.सू.२७/६१**

बृंहण द्रव्यों के गुण (चरकोक्त लंघन-बृहणीय अध्याय) मांस में होते ही हैं, जैसे - गुरु, शीत, मृदु, बहल, स्थूल, स्थिर तथा मधुररस भूयिष्ठ।

८) मांस - प्रमाण

दोषधातु मलानां तु परिमाणं न विद्यते। **... सु.सू.१५/३७**

प्रत्येक शरीर की स्वप्रकृति के अनुसार तथा अवस्थानुसार शरीर सौष्ठव विभिन्न होता है।

शरीर संघटन समविभक्त, सुडौल, दृढ, समसंहनन होने पर मांस का प्रमाण समान है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इसके विपरीत मांसवृद्धिजन्य ग्रंथी, गंड, पिडका अथवा मांसक्षयजन्य कार्श्य आदि लक्षण अयोग्य मांसप्रमाण सूचित करते हैं।

९) मांस - कार्य

मांसं शरीरपुष्टीं मेदसः च। **... सु.सू.१५/५**

शरीरपुष्टी के लिए लेपन यह वाग्भटोक्त संज्ञा उपयोग में लाई जाती है।

(मांसस्य) लेपः (श्रेष्ठ कर्म)। **... अ.हृ.सू.११/४**

१) धारणात् धातवः।

आयुष्य, शरीर बनाए रखना यह प्रत्येक धातु का सामान्य कार्य है। यह धारण कार्य मांसधातु लेपन के द्वारा संपन्न करता है। दीवार रंगने के दौरान जिस प्रकार छोटे-बडे गड्ढे प्लॅस्टर ऑफ पॅरीस से भरकर 'समतल' स्वरुप के दीवार पर रंग लगाया जाता है, उसी प्रकार शरीर में उपस्थित सभी विषम स्थानों पर मांस का लेपन होकर शरीर को 'समतल' स्वरूप का विशिष्ट आवरण प्राप्त होता है। शरीरांतर्गत अस्थिकंकाल को मांसलेपन के कारण ही आकार (आकृति), सौष्ठव, पुष्टता प्राप्त होती है।

मांस के लेपन कार्य के कारण 'शरीरपुष्टी' होती है। सम्यक् लेपन होने पर ही गूढसंधि, गूढसिरा, गूढस्नायु, गूढास्थि की स्थिति उत्पन्न होकर शरीर सुगठित, सुव्यवस्थित, सम-मांसप्रमाण, सम-उपचित होकर आकर्षक बनता है।

लेपन के अर्थ

अरुणदत्तकृत - उपदेह - बाह्यतः कल्क, पिष्टी आदि पिंडित वस्तु (मांस सदृश) प्रयुक्त करना।

हेमाद्रीकृत दृष्टांत - जिस प्रकार दीवार पर मिट्टी का लेप लगाने पर ईटें, पत्थर आदि ढक जाते हैं, उसी प्रकार सिरा, स्नायु, अस्थि, संधि आदि मांसलेपन के कारण आच्छादित होते हैं। ढक जाने तथा बद्ध होने के कारण ये अवयव सुरक्षित तथा मजबूत रहते हैं।

सिरा, स्नायु, अस्थि, मर्माणि संधयः च शरीरिणाम्।

पेशिभिः संवृत्तानि अत्र बलवन्त भवत्यतः। **... ए.शा.५/३८**

आशयों के अवकाश के इर्द-गिर्द मांस का त्वचा के समान आवरण होता है, अतः अन्न, पित्त आदि शारीरभाव आशय में संचित हो सकते हैं।

२) बल = क्रिया सामर्थ्य

मांस धातु जितना स्थिर, सुगठित होगा उतना ही बल उत्तम रहकर भारवहनादि कर्मसामर्थ्य उत्पन्न होता है।

मांसपेश्यो बलाय स्युः अवष्टंभाय देहिनाम्।

प्रसारण - आकुंचन योः अंगानां कंडरा मताः। **... शार्ङ्गधर १/५/३९**

पेशी अर्थात मांसपिंड अथवा मांस अवयव संघात। संक्षेपतः पेशीयां मांसमय होती हैं। सुश्रुत के अनुसार, पिशित में वायु प्रवेश कर पेशी की निर्मिति करता है।

पेशियों की संकोच-विकास क्षमता के कारण स्नायु एवं अस्थिसंधियों में हलचल करने की क्षमता (आकुंचन, प्रसारण आदि) उत्पन्न होती है। मांस के इस कार्यसामर्थ्य के कारण ही संधि-स्नायुओं की धारणाशक्ति निर्माण होती है। अवष्टंभाय देहिनाम् अर्थात खडे रहना, भारवहन क्षमता आदि सभी क्रियाओं में दृढता निर्माण होती है।

तत्रपलिप्तान्यस्थीनि चेष्टां क्षमन्ते। **... वाग्भट (टीका)**

पेशियों की कार्यशक्ति एवं संधियों के प्राकृतत्व के कारण निम्न प्रकार के गतिविशेष संभव होते हैं -

- आकुंचन (Contraction),
- प्रसारण (Extension),
- उत्क्षेपण (Elevation),
- अपक्षेपण (Depression),
- चक्रगति (Circumduction)

साथही शरीर की अचल, स्थिर स्थिति (Tense, Stiff) मांस के कारण ही संभव होती है (Muscle Tone)।

बलवृद्धि के लिए संस्कार

व्यायामादि के कारण शरीरगत मांस में मृदुता के साथ ही दृढता, स्थिरता, भारक्षमता वर्धिष्णु होती है। मांससार व्यक्ति मजबूत तथा क्लेशसहिष्णु होते हैं।

मांस - मेद तुलना

मांस पृथ्वी प्रधान, घन, स्थिर धातु है। अतः मांस के कारण प्राप्त देहपुष्टता में शैथिल्य नहीं होता। इसके विपरीत मेद पुष्टता में उदर, स्तन, नितम्ब आदि अवयवों की शिथिलता के कारण मृदुत्व, चलत्व (लंबनम्) आदि शीघ्र प्रतीत होते हैं।

३) मांस का तृतीय कर्म

धातवो हि धात्वाहारः।

उत्तरधातु की पुष्टि। त्रिधापरिणमन के अनुसार मांसाग्नि द्वारा सारभाग से मेदधातु का पोषण होता है। प्रत्यक्ष मांसधातु में भी मृदुता एवं स्निग्धता प्रदान करनेवाले मेद के अंश; अर्थात 'वसा'; की उपस्थिति होती ही है, क्यों कि वसा एवं त्वचा मांस के उपधातु हैं। अपितु मांस में उपस्थित मेदांश की मात्रा सभी प्राणिमात्रों में समान नहीं होती। इसी कारणवश मृग, अजा आदि जांगल प्राणियों का मांस सुपाच्य और आनुप देश निवासी प्राणि विशेषतया हाथी, भैस, शूकर का मांस मेदुर (मेद आधिक्य होनेवाला) गुरु, पचन की दृष्टि से भारी बतलाया गया है।

४) आधार एवं जगह की उपलब्धता

सिरा, स्नायु, स्रोतस, धमनी आदि की शाखा-उपशाखाओं को आधार प्रदान करना, उन्हें फैलने के लिए जगह प्रदान करना ये भी मांस के ही कर्म हैं। जलार्द्र भूमि के कीचड में वृक्षों की जडें जिस प्रकार दूर तक फैल जाती हैं, उसी प्रकार मांस एवं मेद इन मृदु धातुओं में सिराएं, धमनियां आसानी से फैल सकती हैं।

कार्यमहत्त्व

संक्षेपतः, मांस धातु मनुष्य शरीर को आकृति एवं सौंदर्य प्रदान करता है। बल, कर्मसामर्थ्य इन कार्यों के कारण मांससार व्यक्ति क्षुत्, पिपासा, आतप, शीत, कष्ट (व्यायाम) आदि सभी के विषय में सहत्व प्रदर्शित करते हैं।

१०) मांस - सारता

शंख - ललाट - कृकाटिक - अक्षिगंड - हनु - ग्रीवा - स्कंध - उदरः, कक्ष वक्षः, पाणिपादसंधयः, गुरू, स्थिर - मांस - उपचिताः - मांससाराणाम्। सा सारता क्षमां, धृतिम्, अलौल्यं, वित्तं, विद्यां, सुखम्, आर्जवम्, आरोग्यं, बलम्, आयुः च दीर्घम् आचष्टे। **... च.वि.८/१०५**

मांस धातु शुद्धतर तथा उत्कृष्ट गुणों से युक्त और अधिक मात्रा में उपस्थित होने पर, अविकृत स्वरूप में, उपचित, स्थिर होने पर मांससारयुक्त शरीर कहा जाता है। मांस के उपचय, पुष्टता, संघटन निम्न स्थानों में विशेष रुप से दिखाई देते हैं - शंख, ललाट, कृकाटिक (सिर का पिछला उन्नत भाग), गण्ड (गाल), पाणिपाद संधयः आदि। ये व्यक्ति मानसिक गुणों से भी भरपूर होते हैं, जैसे - स्थिरता (लोलुपता, चंचलता का अभाव)।

शरीर के उपचय का प्रत्यय मेद एवं मांस इन दोनों धातुओं के कारण होता है। तथापि मेद के कारण शैथिल्य, दुर्बलता, क्रियासामर्थ्य का अभाव होता है और मांससारता के कारण देहपुष्टता, सुसंहत शरीर, सामर्थ्य, दृढता की प्राप्ति होती हैं। इसी लिए अतिस्थूल मेदस्वी व्यक्ति 'निंदित' बतलाई गई है। मांससारता के कारण प्राप्त सममांसप्रमाण, समसंहित शरीर प्रशंसनीय होता है।

मांस सारता विनिश्चिय

१) पहले से ही शरीर सुडौल, मांसल है ?

अ) हाँ। (मांस - बलवान)

२) या दीर्घकाल व्यायाम करने से इस प्रकार (सुडौल, मांसल) शरीर हुआ ?

अ) हाँ। (युक्तीकृत - मांस - बलवान)

३) व्यायाम बंद करते ही शरीर की सुडौलता सत्वर कम होती है ?

अ) हाँ। (मांस - दुर्बल)

ब) नहीं (मांस - बलवान)

४) चिरकाल व्यायाम तथा आहार सुव्यवस्थित होने पर भी शरीर में सुधार, वृद्धि (मांसलयुक्त) नहीं होती ?

अ) हाँ। (मांस - दुर्बल)

५) आप क्षमावान, धैर्यशील है ?

अ) हाँ। (मांस - बलवान)

६) आपका शारीरिक बल किस प्रकार है ?

अ) उत्तम। (मांस - बलवान)

ब) मध्यम। (मांस धातु - मध्यम श्रेणि का)

क) कम। (मांस - दुर्बल)

मांस घटक दुर्बल होने पर निम्न शिकायत अथवा व्याधि बार-बार होने की संभावना होती है

१) शरीर पर मांस की गांठे उत्पन्न होना (मांसार्बुद)।

२) मांसशोष (Muscular atrophy, Myopathy).

३) कोथ (मांस गलना) (Gangrene).

४) गंडमाला।

५) उपजिह्विका की वृद्धि।

'मांस' घटक दुर्बल होने पर उपयोगी टॉनिक

१) शतावरी (शतावरी घृत, शतावरी कल्प)

२) अश्वगंधा (अश्वगंधारिष्ट)

३) च्यवनप्राश

४) भैंस का दूध

५) काली मिर्च अथवा लघुमालिनी वसंत (मांसधात्वाग्नि के कार्य में सुधार आता है)

६) नारायण तैल अथवा बला तैल से अभ्यंग।

११) मांस - उपधातु

मांसाद् वसा त्वचः षट् च। ... च.चि.१५/१७

शुद्ध मांसगत मेद - स्नेह को ही 'वसा' कहा जाता है।

सुश्रुतोक्त सप्तमी त्वचा का नाम ही 'मांसधरा' है। चरकाचार्य ने मांसवह स्रोतस का मूलस्थान त्वचा ही बताकर त्वचा की उत्पत्ति मांसधातु के उपधातु स्वरूप में बताई है।

अधिक विवेचन 'उपधातु' प्रकरण में किया है।

१२) मांस - मल विचार

मांसस्य ख मला। ... च.चि.१५/१८

कर्णमल (कर्णगूथ), नेत्रमल (नेत्रकर्दम, पिल्ल, पिडकोलिका), नासामल (सिंधाणक), आस्यमल (लाला, निष्ठयूत, कफ, श्लेष्मा), दन्तमल (दन्तकर्दम, यह मल शुष्क होने पर शर्करा) ये सभी 'ख' मल एवं जिह्वा, कपोल, प्रजनन स्थानों में उपस्थित मलों को मांस धातु के मल कहते है।

१३) मांस - वृद्धि

मांसं गंड, ओष्ठ, उपस्थ, उरू, बाहु, जंघासु वृद्धिं गुरूगात्रता च।

... सु.सू.१५/७

अति गुरू, स्निग्ध आहार नित्य सेवन करने पर मांसप्रकोपक आहार के कारण मांसवृद्धि होती है। ऊरू (जंघा), बाहु (हाथ) आदि अवयवों में अतिमांसवृद्धि होती है। अवयवों में जडता (गुरू - गात्रता) उत्पन्न होती है।

१४) मांस - क्षय

मांसे अक्षग्लानि गंडस्फिक् शुष्कता, संधिवेदना। ... अ.हृ.सू.११/१८

कृपोषण, उपवास, अति श्रम, चिरकाल उपेक्षित व्याधि (राजयक्ष्मा, मधुमेह, कॅन्सर) के कारण मांसक्षय होता है। इंद्रियों में ग्लानि, दुर्बलता उत्पन्न होती है (अक्षग्लानि), गाल, स्फिक् प्रदेश (Buttocks) में शुष्कता उत्पन्न होती है। संधियों में वेदना होती है। शरीरबल क्षीण हो जाता है।

चिकित्सा

मांसगुण के समान आहार-विहार। (सामान्यविशेष सिद्धांत) - बला, नारायण, महामाष तैल से अभ्यंग। आभ्यंतरतः, बलारिष्ट, अश्वगंधारिष्ट, शतावरी घृत आदि का सेवन।

83

पूरक अर्वाचीन विषय

Muscle Tissue

Although bones and joints provide leverage and form the framework of the body, they are not capable of moving the body by themselves. Motion is an essential body function that results from the contraction and relaxation of the muscles.

Muscle tissue is highly specialised to actively generate force and constitutes about 40 to 50 % of total body weight. The specific study of muscles is known as myology.

Characteristics

1) **Excitability** - is the ability of the muscle tissue to receive and respond to stimuli.
2) **Contractility** - is the ability to shorten and thicken (contract) .
3) **Extensibility** - is the ability to get stretched (extended) .
4) **Elasticity** - is the ability to return to original shape after contraction or extension.

Functions

Through contraction, muscle tissue perform three important functions

a) Motion
b) Maintenance of posture
c) Heat production.

Detailed functions

1) Movements at bony joints - Locomotion of the body from one place to another, change in posture ie.- standing, sitting, lying down, moving of extremities etc. Development of muscular skills in our activities and in our speech.

2) Production of body heat.
3) Maintenance of postures of body.
4) Formation of walls of body cavities and support of the organs within cavities.
5) To protect blood vessels and assist in maintaining the circulation of the body by forceful contraction of the heart.
6) Muscles help in respiration. So help in maintenance of acid base balance.

Types

1) **Skeletal muscle tissue**

is primarily attached to bones. It is striated and voluntary.

2) **Cardiac muscle tissue**

forms the wall of the heart. It is striated and involuntary.

3) **Visceral muscle tissue**

is located in the viscera. It is nonstriated (smooth) and involuntary.

Neuromuscular junction and Synapse

For a skeletal muscle fibre to contract, a stimulus is delivered by a motor neuron. Neuron or nerve cell has a thread like process called as fiber or axon. The region of sarcolemma adjacent to the axon terminal is known as motor end plate. The term neuromuscular junction or myoneural junction (MNJ) means Axon terminal together with motor end plate. Distal ends of axon terminals are expanded into bulb like structures called synaptic end bulbs. The bulbs contain membrane enclosed sacs i.e.- synaptic vesicles which store chemicals called neurotransmitters. The neurotransmitters released at neuromuscular junction in skeletal muscle is Acetylcholine or Ach.

Muscle contraction
(मांसधातु की आकुंचन-प्रसारण क्रिया)

I) Structure of skeletal muscle

i) Skeletal muscle is formed by many elongated cells called as **muscle fibers**

ii) The fibers are arranged in bundles, known as **fasciculi.**

iii) Muscle fiber is surrounded by a cell membrane called as **'Sarcolemma'**. The cytoplasm of the muscle fiber is called as 'Sarcoplasm', which contains many mitochondria.

iv) Each myofibril is composed of still smaller units, the thick and thin **myofilaments**. Groups of thick myofilaments lie partially overlapping group of thin filaments, giving rise to alternate dark and light bands of myofibril.

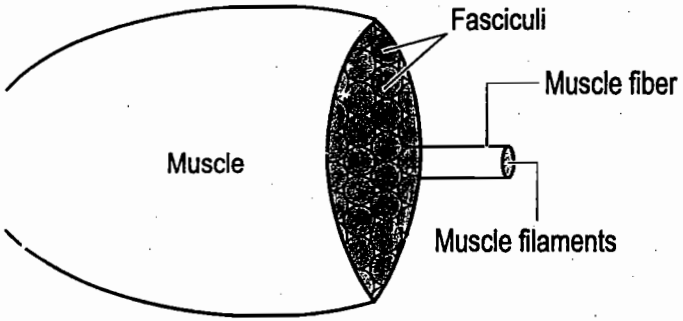

II) Sarcomere – structure

i) The **dark 'A' band** consist of overlapping thick and thin myofilaments. (A = Anisotropin = will not allow the light to pass through)

ii) The **lighter** bands i.e. **'I' bands,** containing only thin myofilaments. (I = Isotropin = which allows the light to pass through)

iii) Half way along the length of I band, the thin myofilament are attached to a narrow zone known as 'Z' line.

iv) The 'H' Zone lies in the centre of A-band and consists of thick myofilaments only.

v) The portion of myofibril lying between two Z-lines is called as **'Sarcomere'**

vi) **Sarcomere is the structural and functional unit of muscle.**

vii) Myofibrils are contractile elements of skeletal muscle.

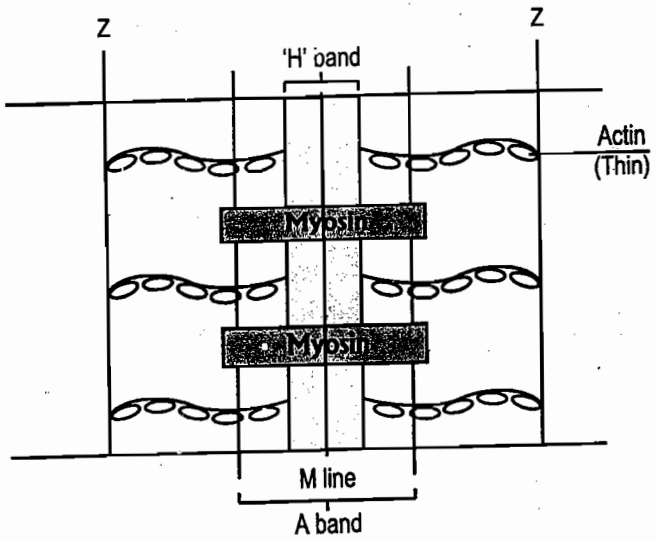

III) Description of Myofilaments

i) Two contractile proteins in muscles are – **Myosin and actin**

ii) Two hundred molecules of protein myosin form a single thick filament. Each myosin molecule is shaped like two golf sticks twisted together. Myosin tails point towards M. Line. The projection called as Myosin heads or cross bridges extend out towards the filaments.

iii) Thin filaments are composed of complex protein called as Actin.

iv) The actin filaments also contain two additional proteins called as **'Troponin' and Tropomyosin**

v) Tropomyosin covers the active sites of G-actin.

vi) Troponin is a protein, which pulls tropomyosin to cover or uncover the active sites of G-actin.

So, the troponin has 3 parts –

I = Insignificant site

T = Site for tropomyosin attachment

C = Site for calcium entry

Myosin

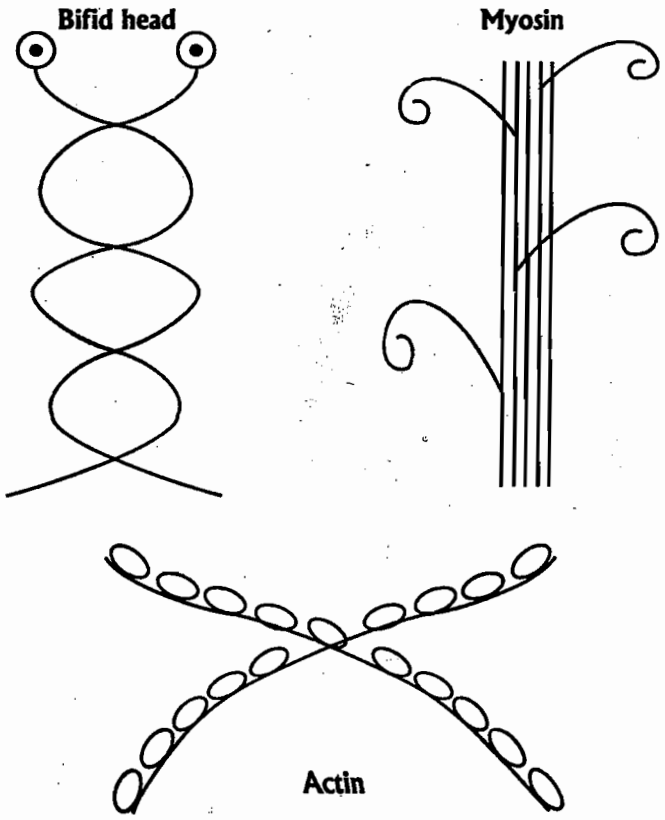

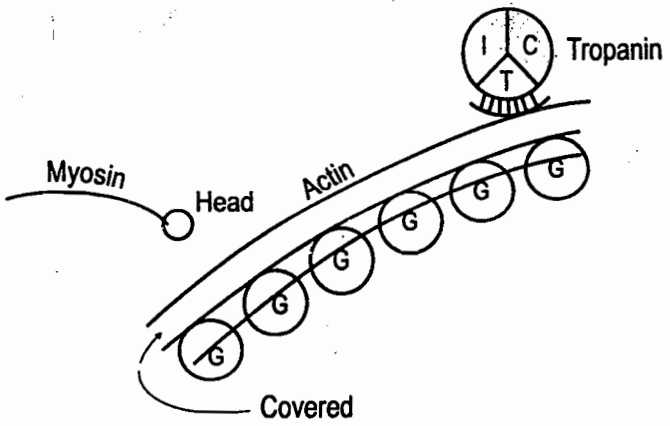

Configuration (रचना)

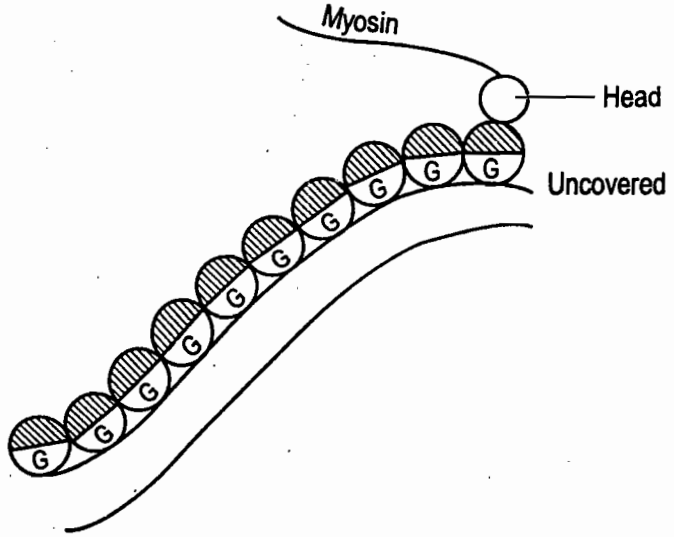

Actual Mechanism of Muscle contraction

1) From the cerebrum, motor neuron fibers, brings the signals or nerve impulse at "Neuromuscular junction" (Motor end plate).

2) Ach (Acetyl choline), a neurotransmitter is secreted. It is synthesized by the cytoplasm of nerve terminal.

3) Depolarization takes place. AP (Action potential) develops on muscle membrane.

4) Impulse is conducted into 'T' tubules and to sarcoplasmic reticulum.

5) Sarcoplasmic reticulum releases calcium ions into sarcoplasm.

6) After attachment of calcium ions, troponin rotates and configuration changes. Binding between Troponin and Tropomyosin becomes loose.

7) Active sites over G-actin become uncovered and head of myosin comes in contact with active site of G-actin.

8) When myosin head bind to actin, produces Power stroke of contraction. During the power stroke, myosin head moves towards the centre of sarcomere, like the oers (पतवार/चप्पू) of boat during rowing process.

9) This action draws the thin filament, passed the thick filament towards "H" zone.

10) ATPase action, liberates energy. This energy breaks actin-myosin complex and pushes the head of myosin to the next active site. It continues till last site is available.

11) Immediately after depolarization of muscle fiber. Ach is destroyed by the enzyme '**Cholinesterase**' which is present in the 'synaptic cleft'

12) Relaxation of the muscle fiber occurs, when the calcium ions are actively reabsorbed by the sarcoplasmic reticulum. Due to lack of calcium, Troponin and Tropomyosin again inhibit the interaction of active and myosin filament.

Kinds of contractions

The various kinds of contractions are twitch, tetanus, treppe, isotonic and isometric. A record of contraction is called a myogram.

What is muscle tone ?

A sustained partial contraction of portions of a skeletal muscle results in muscle tone. Tone is essential for maintaining posture. Flaccidity is a condition of less than normal tone.

Disorders

1) Muscular atrophy

State of wasting away of muscles.

2) Muscular hypertrophy

An increase in the diameter of muscle fibres (overgrowth) .

3) Fibromyalgia

Group of non - articular rheumatic disorders characterised by pain, tenderness and stiffness of muscles, tendons and ligaments. eg.- Lumbago.

4) Myasthenia Gravis (MG)

Disease characterised by great muscular weakness and fatigability resulting from improper neuromuscular transmission or deficiency of Arch (Neuro transmitter) .

5) Abnormal contractions

Spasm, tremour, fasciculation, fibrillation and tic.

प्रकरण ६

शरीर में स्निग्धता का संचय - मेद धातु

मेद धातु का श्रेष्ठ कर्म है - 'स्नेहन'। अतिस्निग्ध आहार तथा व्यायाम के अभाव के कारण मेद धातु दुष्ट होकर, उसकी अतिरिक्त वृद्धि होकर, 'मेदोरोग' अथवा 'स्थौल्य' नामक व्याधि निर्माण होती है, जो सद्यकाल में एक चिंता का विषय बन गई है।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

निरूक्ति

'ञिमिदा' = स्नेहन इस धातु से मेद शब्द बनता है, जिससे मेद का अर्थ - स्नेह प्रतीत होता है। शरीरांतर्गत जो घृत सदृश स्निग्ध धातु होता है, वही मेद धातु है। आयुर्वेद में वर्णित जंगम प्राणियों से प्राप्त चतुर्विध स्नेह हैं - सर्पि, मेद, वसा, मज्जा। इनमें से मेद का अर्थ है - उदर, नितम्ब आदि स्थानों में संचित स्नेह।

पर्याय

१) **मांसज, मांसतेजः** – मांस से उत्पन्न।
२) **अस्थिकृत्** – अस्थिधातु पोषण के लिए पोषकांश प्रदान करने वाला।
३) **वपा** – उदरगत स्नेह (Omentum)।
४) **वसा** – मांसगत स्नेह।
(मांस पकाने पर निर्माण होने वाला तेलसदृश पदार्थ)
५) **मस्तुलुङ्ग मस्तिष्क** – मस्तिष्क स्नेह।
६) **गोद** (शब्दकोष के अनुसार) – गो = वाणि / बुद्धि।
मस्तिष्कगत बुद्धिजनक स्नेह।
(तथापि आयुर्वेद के अनुसार, मस्तिष्क यह मज्जा प्रधान अवयव है, यह ज्ञातव्य है।)
७) **गौतम** – सप्तऋषियो में से एक।
मेद धातु की खोज से संबंधित होने की संभावना (?)

२) स्थान

मेद धातु सर्व शरीर में, सर्वांग व्याप्त है।
विशेषतः त्वचा एवं मांस के बीच मेद का आवरण होता है।

कुछ विशेष संचय स्थान

१) उदर में (मेदसो वर्तिः) आंत्र को आच्छादित करता है।
२) स्फिक्, नितंब, उर, स्तन (विशेषतः स्त्रीयों में यौवनकाल में इन स्थानों में पुष्टता आने के कारण इन्हें गौरवता, विशालता प्राप्त होती है)।
३) ग्रीवा, स्कंध, पृष्ठ, उरु में मेदसंश्रय के कारण इन स्थानों को गोलाई प्राप्त होती है।
४) **मेदोवह स्त्रोतस** – मेद धातु कीउत्पत्ति (पोषण), परिणमन, वहन एवं मल उत्सर्ज ये कार्य इस स्त्रोतस के द्वारा होते हैं।

- **मेदोवहानां स्त्रोतसां वृक्कौ मूलं वपावहनं च।** ... च.वि.५/८
- **मेदोवहे द्वे, तयोर्मूलम् कटी वृक्कौ च।** ... सु.शा.९/१२

कफप्रकोपक आहार के कारण, शरीर में उपस्थित द्रवभाग, क्लेद की अतिरिक्त वृद्धि होने पर, उनका संचय मेदोधातु में होकर उसका परिणाम मेदोधातु से निर्मित वृक्क पर होता है। शरीर में संचित अतिरिक्त क्लेद, वृक्क के द्वारा बस्ति के मार्ग से मूत्र के स्वरूप में बाहर निकलता है अथवा यह क्लेद त्वचा के द्वारा स्वेद के स्वरूप में बाहर निकलता है। संक्षेपतः मूत्रनिर्मिती से संबंधित वृक्क एवं स्वेद से मेद धातु का तथा मेद धात्वग्नि का निकट संबध होता है।

वपावहन यह मेद का संचय स्थान है तथा कोष्ठांगों में से एक है।

वपावहनम्, वपा उदरस्था स्निग्धवर्तिकायाम् आहुः जनाः तैलवर्तिका इति।
... च.वि.५/८ (चक्रदत्त टीका)

वपावहन का अर्थ है - मेदसः वर्ती, स्नेहवर्तीका, तैलवर्तिका। प्रत्यक्ष के आधार पर इसकी तुलना 'Omentum' से की जा सकती है।

कटी प्रदेश (Pelvic Girdle, Pectoral Girdle) भी मेदोवह स्त्रोतस का मूलस्थान (संचयस्थान) बताया गया है।

४) सुश्रुतोक्त तीसरी मेदोधराकला (Adipose Tissue, Superficial & Deep Fascia) के द्वारा मेद का पोषण एवं धारण होता है।

तृतीया मेदोधरा (कला) मेदो हि सर्वभूतानाम् उदरस्थम् अण्वस्थिषु च महत्सु च मज्जा भवति। स्थुलास्थिषु विशेषेण मज्जा तु अभ्यंतराश्रितः अथ इतरेषु सर्वेषु सरक्तं मेद उच्यते। ... सु.शा.४/ १२-१३

मेदोधराकला उदर, अस्थि, मांस इन स्थानों को व्याप्त करती है (मेद उदर भाग में तथा लघु अस्थियों के स्थान में (सरक्त मेद) व्याप्त होता है।)

मेदसो अपि यत् स्थानं वसाबहुलं तत् अपि अमाशयएकदेशे एव।

... च.वि.६/२८ (चक्रदत्त टीका)

मेद का स्थान वसाबहुल होकर वह आमाशय के एक भाग में होता है।

मेद एवं कफ - आश्रयाश्रयी संबंध

मेद तथा कफ के गौरव, द्रव, गुरू, पिच्छील आदि गुण समान होने के कारण, चरकाचार्य ने कफ को आश्रयी और मेद को आश्रय बताया है। इस संबंध के कारण ही कफप्रकोपक आहार-विहार यह मेदोरोग अथवा स्थौल्य इन व्याधियों का कारण है। मेदोरोग कम करने के लिए कफघ्न चिकित्सा करनी पडती है।

३) मेद - स्वरूप, संघटन

स्नेह गुण प्रधान द्रव धातु है। सारभूत द्रव्य होने के कारण गुरु है। मेद धातु पांचभौतिक होता है।

सर्वं इदं पांचभौतिकम् अस्मिन अर्थे। **... च.शा.६**

इस सूत्र के अनुसार मेद धातु में जल महाभूत का और डल्हणाचार्य के अनुसार जल एवं पृथ्वी का आधिक्य होता है।

मेदो जलपृथ्विव्यात्मकम्। **... सु.सू.१५/८ (भानुमती टीका)**

४) मेद धातु - प्रकार

स्थायी (पोष्य) तथा अस्थायी (पोषक) ऐसे २ प्रकार।

५) मेद धातु - परिणमन

रस, रक्त, मांस धातु का पोषण करते हुए आहाररस मेद की ओर आता है। तत्पश्चात खलेकपोत न्याय के अनुसार केवल मेद पोषकों का स्वीकार होकर मेद का पोषण होता है।

क्रमपरिणाम न्याय के अनुसार मांसधातु के द्वारा भी मेद का पोषण होता है।

मांस शरीरपुष्टीं मेदसः च। **... सु.सू.१५/५**

उत्पत्ति क्रम के अनुसार चौथा धातु। मांसात् मेदः प्रजायते॥

१) **रसान् रक्तात तथा मांसात् मेदसः श्वेतता कथम्।** **... च.चि.१५/२४**

२) **द्रवधातोः स्थिरान्मांसान्मेदसः संभवः कथम् ?**

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर

मांस धातु → रक्तवर्णयुक्त, पार्थिव, स्निग्ध, स्थिरत्व	वायु, अग्नि, श्लेष्मा →	मेद धातु → श्वेतवर्ण, स्नेहगुण प्रधान अधिक स्थिरत्व, अधिक श्लक्ष्ण

मांसधातु —मांसाग्नि→ अग्निजन्य पचन के कारण (पाक) → नवीन संस्कार

महाभूतों का संयोजन, विभाजन होकर, मांस की अपेक्षा मेदधातु में नवीन पुनर्गठन निर्माण होता है।

त्रिधापरिणमन

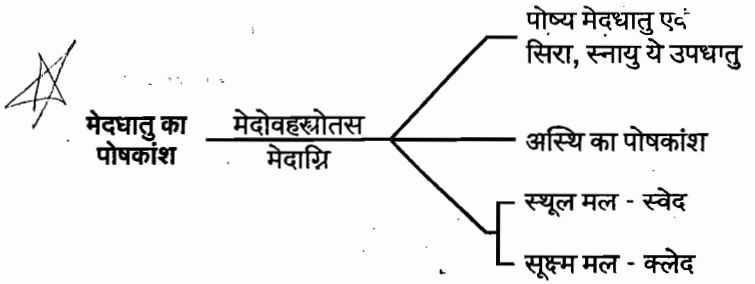

६) मेद - परिणमन काल

आहार उपभोगदिनात् ... मेदस्त्वं पंचमे। ... च.वि.१५/३२ चक्रदत्त टीका

हालांकि 'क्षरण तथा आपूर्ति' ये घटनाएं 'परिवृत्तिस्तु चक्रवत्' इस न्याय के अनुसार अनवरत चलती रहती हैं, तथापि पोषक भाव निर्माण होने के लिए, निर्मिती की अवस्था प्रतीत होने के लिए ५ दिन का समय तथा पोष्य धातु अवस्था १५ वे दिन निर्माण होती है।

७) मेद - गुण

मेदधातु में प्रायः स्निग्धता, गुरूत्व, मृदुत्व, स्थिरत्व ये गुण अधिकता से दिखाई देते हैं। इसके अलावा श्लक्ष्ण, पिच्छिल, सांद्र, श्वेतवर्णता ये गुण भी अनुभूत होते हैं। मेद के स्नेहांश के कारण अंगमृदुता तथा त्वचा, केश इन स्थानों में चमक उत्पन्न होती है। शीतोष्ण आदि हानिकारक प्रभावों से मेद शरीर की रक्षा करता है।

८) मेद - प्रमाण

द्वौ मेदसः (अंजली) ... च.शा.७/१५

प्रत्येक व्यक्ति के स्वअंजली प्रमाण का उपयोग किया जाता है। इस प्रमाण का प्रत्यक्ष मापन संभव न होने के कारण मेद के प्राकृत लक्षणों से, वृद्धि - क्षय लक्षण नहीं हैं यह जान कर, अनुमान से ही प्राकृत प्रमाण समझना पडता है।

गर्भोपनिषद में मेद का प्रमाण - २ प्रस्थ बताया गया है।

९) मेद - कार्य

१) **स्नेह : (मेदसः श्रेष्ठं कर्म)** ... अ.हृ.सू.११/४

मेद का प्रधान, श्रेष्ठ कार्य है - अंग प्रत्यंगों में स्नेह उत्पन्न करना। नेत्र, त्वचा, केश, ओष्ठ, वर्ण, स्वर, दंत आदि में होनेवाली स्निग्धता सुलभता से प्रतीत होती है।

२) **मेदः स्नेह स्वेदौ दृढम् पुष्टिम् अस्थ्नां च।** ... सु.सू.१५/५

दूसरा कर्म है - उत्तर धातु पुष्टी।

रसात् रक्तम्, ततो मांसम्

इस क्रमपरिणमन न्याय के अनुसार, अस्थि धातु के लिए, पोषकांश उपलब्ध करने का कार्य मेद धातु करता है। स्वयं से अधिक सारवान धातु अस्थि की निर्मिती एवं पोषण करने का कार्य मेद धातु करता है।

३) **तीसरा कार्य**

मेद धातु के मल के स्वरुप में स्वेद की उत्पत्ति होती है, इसी लिए अतिमेदस्वी व्यक्तियों में स्वेद प्रवृत्ती अधिक होती है।

४) **चौथा कार्य**

शरीर को दृढता एवं मजबूती प्रदान करना। मेद का स्नेहांश प्रत्येक अणुरेणु में उपस्थित होने के कारण रुक्षता को प्रतिकार किया जाता है। स्नेह के कारण स्थिरत्व की प्राप्ति होती है, अणु-परमाणुओं में दृढबंधन निर्माण होता है। स्नेहक्षय के कारण रुक्षता वर्धित होती है, जिससे वातप्रकोप होकर भंगुरता विभजन होती है, दृढता का नाश होता है। चरक संहिता, सूत्रस्थान के मात्राशितीय अध्याय में इसके लिए उत्तम दृष्टान्त दिया गया है - कुंभ को भीतर से घृतादि स्नेह लगाने से, चमडे को तेल से मर्दन करने से, गाडी के पहिये को स्निग्ध तेल के कारण मजबूती प्राप्त होती है। साथही शरीर को स्नेह की प्राप्ति होने के परिणामस्वरुप शरीर शक्तिशाली हो जाता है। सभी अवयवों तथा इंद्रियों को स्नेह प्रदान कर दृढत्व निर्माण करना यह मेद का कार्य है।

स्नायु मेद के उपधातु हैं। सभी स्नायुओं को मेद से स्नेह की प्राप्ति होने से उनका हलचल यह कार्य सुचारु रुप से होता है।

५) **पांचवा कार्य**

उपचय उत्पत्ति, कार्श्यत्व निर्हरण, तथापि अतिमेदोवृद्धि में, उपचय के साथही शैथिल्य उत्पन्न होने के कारण सुकुमारता एवं श्रमअसहत्व होता है। श्रमज श्वास, अतिस्वेदप्रवृत्ति जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं।

मेद कार्य का महत्त्व

१) मेद गुण जलमहाभूतप्रधान होते हैं। यह कफ वर्गीय धातु है, अतः स्निग्धता, मृदुता, सुकुमारता, कांतिमानता आदि गुण निर्माण करता है तथा वातपित्तजनित रौक्ष्य, औष्ण्य, शोषण आदि गुणों का विरोध करता है। मेद के स्वरुप में शरीर में स्निग्धता का संचय होने के कारण दीर्घकालीन लंघन आदि का दुष्परिणाम तत्काल मांसादि धातुओं पर न होकर शरीर की रक्षा की जाती है।

२) त्वचा के नीचे मेद का आच्छादन होने के कारण शरीर की शीत-उष्ण आदि परिणामों से रक्षा होती है। (इसी लिए कृश व्यक्तियों को शीत, उष्ण वातावरण के कारण अधिक एवं शीघ्रतापूर्वक तकलीफ होती है।)

३) मांसधरकला मेद की स्निग्धता के कारण मांस के संकोच-विकसन कार्य में सहायता करती है।

१०) मेद - सारता

- **वर्ण - स्वर - नेत्र - केश - लोम - नख - दंत - ओष्ठ - मूत्र पुरीषेषु विशेषतः स्नेहो मेदः साराणाम्। सा सारता वित्त ऐश्वर्य सुख उपभोग प्रदानानि आर्जवं सुकुमार उपचारताम् आचष्टे॥** ... च.वि.८/१०६
- **स्निग्ध मूत्र नेत्र (स्वेद) स्वरं, बृहत् शरीरं, आयास असहिष्णु मेदसा।** ... सु.सू.३५/१६

शुद्धतर, उत्कृष्ट गुणयुक्त, सम्यक मात्रा में मेद उपस्थित होने पर अगले अवयव में मेद लक्षण विशेष रुप से स्पष्ट होते हैं। नेत्र, केश, लोम, नख, दंत, ओष्ठ ये अवयव स्नेहयुक्त, स्निग्ध, सतेज होते हैं। नेत्र, त्वचा के द्वारा स्निग्धता, स्नेह का आसानी से आकलन होता है। स्वर स्निग्धता का अर्थ है - मृदु स्वर।

वैशिष्ट्यपूर्ण लक्षण

शरीर बृहत्, स्थूल होकर भी आयास असहिष्णु।

मेद सारता विनिश्चय

१) नेत्र, केश, लोम, नख, दंत इन अवयवों में स्निग्धता है ?

- हां - (मेद - सारवान)
- नहीं - रुक्षनेत्रता। केश, नख इनमें रुक्षता प्रतीत होती है।
  - (मेद - असार)

२) स्वर मधुर, मृदु है ?

- हां - (मेद - सारवान)

३) दीर्घकाल तक स्निग्ध पदार्थ (दूध, तेल, घृत) सेवन किए बिना अथवा शरीर को मालीश किए बिना भी त्वचा चिकनी, स्निग्ध (मृदु) बनी रहती है ? साथही जोडों में स्नेहन बना रहता है ?

- हां - (मेद - सारवान)
- नहीं - त्वचा रुक्ष हो जाती है और जोडों में हलचलों के समय कटकट आवाज निर्माण होता है।
  - (मेद - दुर्बल)

४) शीत काल में त्वचा रुक्ष होती है ?

- हां - (मेद - दुर्बल)
- नहीं - (मेद - बलवान)

५) मलप्रवृत्ती गांठदार होती है ?

- हां - (मेद - असार)
- नहीं - (मेद - सारवान)

'मेद' घटक दुर्बल / विकृत होने पर निम्न उपद्रव हो सकते हैं

१) वजन कम होना
२) मेदोदुष्टी होने पर स्थूलता
३) त्वक्कंडु (खुजली)
४) अतिस्वेद प्रवृत्ति

'मेद' घटक दुर्बल होने पर उपयुक्त टॉनिक

वजन बढाने के लिए, दुर्बलता कम करने के लिए

१) महायोगराज गुग्गुल
२) भैस का दूध, घृत
३) शतावरी घृत
४) तैलाभ्यंग
५) आस्कंध चूर्ण / अश्वगंधारिष्ट

११) मेद - उपधातु

मेदसः स्नायुसंभवः। ... च.चि.१५/१७

स्नायु यह रज्जु जैसा मजबूत तथा लचीला शरीर अवयव है।

१२) मेद - मल

स्वेदस्तु मेदसः (मलः)। ... च.चि.१५/१८

स्वेद अर्थात पसीना, त्वचा से रोमकूप के द्वारा बाहर निकलने वाला पानी जैसा द्रवरूप मल।

मेद विकृति

- वृद्धि
  - द्रव्यतः
  - गुणतः
  - कर्मतः
- क्षय
  - द्रव्यतः
  - गुणतः
  - कर्मतः

१३) मेदोवृद्धि

मेदः स्निग्धं अङ्गताम् उदर पार्श्ववृद्धीं कास श्वास आदीन् दौर्गन्ध्यं च।

... च.सू.१५/१४

पचने में भारी, अति तेलयुक्त आहार तथा शारीरिक श्रम का अभाव इस मेदगुण समान आहार-विहार के कारण मेदवृद्धि होती है। मेदोरोग अथवा स्थौल्य यह अष्टौनिंदित में से एक, याप्य व्याधि उत्पन्न होती है। इसके परिणाम स्वरूप उदर एवं पार्श्व में मेद की अतिसंचिती होकर उदरलंबनम् (पेट छूटना) यह लक्षण उत्पन्न होता है। ऐसी व्यक्ति अपेक्षाकृत जल्दी थक जाती है। श्रमज श्वास यह लक्षण उत्पन्न होता है।

उदर में मेदसंचिती के परिणामस्वरुप मध्यपटल (Diaphragm) पर दबाव प्रयुक्त होकर प्राण-उदान गतिवैषम्य निर्माण होता है, जिससे श्वास, कास ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। मेद एवं कफ का अतिनिकट संबंध होने के कारण भी श्वास, कास ये कफज व्याधि निर्माण होते हैं।

मेदोवृद्धि के कारण क्लेदसंचिती बढकर, परिणामस्वरुप शरीरदुर्गंध तथा दुर्गंधयुक्त अतिस्वेदप्रवृत्ति ये लक्षण दिखाई देते हैं।

सामान्य विशेष सिद्धांत के आधार पर मेदोवृद्धि में मेद गुण के विरोधी आहार, विहार, औषधियों की योजना करें, जैसे - मेद के स्निग्ध गुण के विरोधी रुक्ष आहारद्रव्य

सेवन करें (उदा.- ज्वार, नायली, कुलत्थ आदि)। स्थिर गुणों के विरोध के लिए व्यायाम अत्यावश्यक है। मेदोघ्न स्वरुप में त्रिफला गुग्गुल, मेदोहरगुग्गुल (नवक गुग्गुल) आदि औषधियों का उपयोग करें।

१४) मेद - क्षय

- **मेदक्षये प्लीहावृद्धी संधिशून्यता रौक्ष्यं मेदूरमांसप्रार्थना च। ...सु.सू.१५/९**
- **मेदसि स्वपनं कटयाः प्लीह्नो वृद्धिः कृशांगता। ... अ.ह.सू.११/१४**

चिरकालीन व्याधि, प्रमिताशन, सूखा पडना आदि कारणों से मेदक्षय होता है। शरीरभार में अत्यधिक कमी आती है (कृशांगता)।

मेद एवं कफ का निकट संबंध होने के कारण मेद क्षय में कफक्षय के भी लक्षण दिखाई देते हैं (उदा.- जोडों में स्निग्धता कम होने के कारण संधिशून्यता)। स्निग्धगुणी मेद कम होने के परिणामस्वरुप शरीर में सर्वत्र रुक्षता बढ जाती है, साथही मेदक्षय दूर करने के लिए निसर्गतःही मेदुर, मांस प्रार्थना (Fatty Substances) यह लक्षण निर्माण होता है।

वैशिष्ट्यपूर्ण लक्षण - प्लीहावृद्धि

१) वातवृद्धि को मर्यादित रखने का कार्य मेद का स्निग्ध गुण करता है। तथापि मेदक्षय में वातवृद्धि होती है और चरक संहिता, सूत्रस्थान में 'प्लीहा वात के कारण वर्धिष्णु होती है' ऐसा बताया गया है।

२) मेदक्षय से ग्रस्त कृश व्यक्ति में प्लीहा को सहारा देनेवाले Splenic Ligaments ढीले पड जाते हैं। उनके संहनन (Tone) में कमी आने से प्लीहावृद्धि (Palpable Spleen) की अवस्था उत्पन्न होती है।

३) आवश्यकता के अनुसार मेद की आपूर्ति करने का कार्य प्लीहा अंशतः करती है। मेदक्षय में यह कार्य बढ जाने के कारण प्लीहावृद्धि होने की संभावना होती है।

४) मेदक्षय में प्लीहावृद्धि का कारण ? (वाग्भट - ईश्वरकृष्ण टीका)

- **उरः कंठ शिरः क्लोम पर्वाणि आमाशयो रसः।**
  मेदो घ्राण जिव्हा च कफस्य सुतराम उरः।
- मेद कफ का आश्रयस्थान है।
- मेदक्षय में → कफ ↓ (समान गुणों की क्षीणता)। अर्थात शीत, गुरु गुणों का क्षय।

- अपेक्षाकृत विकृत गुणों की (जैसे - उष्ण, लघु) वृद्धि। इसके कारण पित्त ↑, अतः रक्त ↑ और रक्तवृद्धि के कारण प्लीहावृद्धि।

(क्यों कि → गर्भस्य यकृतप्लीहानौ शोणितजौ ॥)

मेदक्षय में मेद के समानगुणी आहार - विहार - औषधियों की योजना करें। आहार में दूध, घृत, नवनीत अधिक होना उचित है। विश्राम लाभदायी है।

अर्वाचीन पूरक विषय

Adipose Tissue

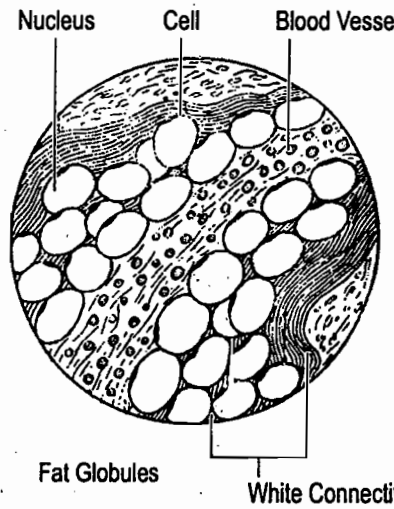

Adipose tissue

The Adipose Tissue is characterised by containing free fat inside the fat cells. The cells are generally large, round or oval in shape. The big fat droplets occupy almost the whole of the cell. The cytoplasm & the flattened nucleus are pushed out to one side. For this reason, the cell looks like a signet ring.

Distribution

Distributed in many places & specially found in the fat depots. eg.- omentum, subcutaneous tissue, mesentery & perinephric region,

subpericardial tissue etc. Yellow bone marrow is very rich in fat. The lactating mammary gland contains a large amount of fat.

Adipose Tissue is absent in eye - lids, penis, scrotum, labia minora, cavity of cranium and lungs (except their roots) .

Functions

1) Gives shape to the limbs & body.
2) Keeps the viscera in position & prevents injury.
3) Regulation of body temperature.
4) Fat depot is a stored energy.

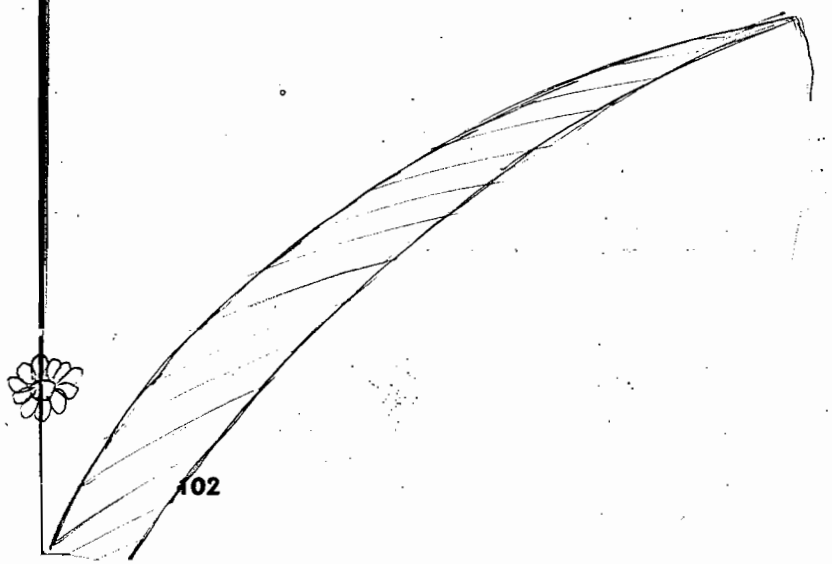

प्रकरण ७

जीवन का आधार - अस्थि धातु

पोषण क्रम के अनुसार पाँचवे क्रमांक का अस्थिधातु शरीर में सर्वाधिक मजबूत एवं शक्तिशाली घटक है। मृत्यु के उपरान्त भी अस्थिधातु शरीर के अन्य घटकों की अपेक्षा अधिक समय तक टिका रहता है। इस विशेषता के कारण आपराधिक घटनाओं के न्यायिक जाँच में अनेकों रहस्य सुलझाए जा सकते हैं।

१) नाम, निरूक्ति, पर्याय

यद्यपि आयुर्वेदीय ग्रंथों में अधिकतर अस्थि यही संज्ञा अधिकतर उपयोग में लाई जाती है, तथापि सु.सू. ३५/१६ (डल्हण टीका) में **हड्ड** इस पर्याय का उल्लेख किया गया है। अमरकोश में - **कीकस, कुल्य,** अस्थि ये शव्द और अथर्ववेद २/३३ में कीकस यह शब्दप्रयोग किया गया है। साथही, मेद के द्वारा पोषण, अतः **मेदोज,** मेदस्तेजः ये पर्याय, मज्जा के पोषण को जिम्मेदार, अतः **मज्जकृत,** महत्त्वपूर्ण कार्यसूचक की दृष्टि से देहधारकम् यह पर्यायी नाम, गुणसूचक - सार यह पर्याय, खरता सूचक - **कर्कर**। अन्य पर्याय - मांसपित्त, श्वदयितम् (कुत्ते हाडी चबाते हैं) भारद्वाज (संभवतः 'अस्थि धातु' के विषय में अधिक ज्ञान के शोधकर्ता।)

अस्थि नाम - स्थानानुसार

- शिर के अस्थि - कपाल, कर्पर, करोटि।
- पृष्ठ के अस्थि - कशेरूका।
- शाखाओं के अस्थि - नलक।
- पार्श्व के अस्थि - पर्शुका, वक्रि।
- संपूर्ण शरीर के अस्थि - कंकाल, करंक, अस्थिपंजर।

२) अस्थि स्थान

१) संपूर्ण शरीर

संपूर्ण शरीर में मांस, मेद के अंतर्भाग में अस्थि धातु स्थित होता है। प्रत्येक भाग में अभ्यंतरतः इसका अस्तित्व होता है। जिस प्रकार किसी वृक्ष के मध्यभाग में सार, उसी

प्रकार शरीर में अस्थिरुप सार यह दृढभाग होता है, जिसके कारण शरीर सीधा रहता है (आलम्बन)।

२) **अस्थिवह स्त्रोतस**

इसका उल्लेख चरक संहिता के अलावा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता।

अस्थिवहानाम् स्त्रोतसां मेदोमूलं जघनं च। ... च.वि.५/८

अस्थिवह स्त्रोतस का मूलस्थान मेद एवं जघन (कटीकपालास्थि) है। जघन भाग से पृष्ठवंश अधःशाखा संबंधित होती है और शरीर का प्रमुख आधारस्तंभ होने के कारण मूलस्थान। मेद से ही अस्थिपोषकांश प्राप्त होते हैं। अस्थिवह स्त्रोतस का मेद तथा जघन से प्रारंभ होता है। स्त्रोतस उत्पादक एवं वाहक होते हैं, अधिष्ठान नहीं। मेद तथा आहाररस से प्राप्त, अस्थिपोषकांश द्रवांश स्वरुप में ही होते है, अतः अस्थिवह स्त्रोतस के द्वारा उनका (पोषकांश का) वहन होता है, ऐसा वर्णन किया गया है।

अस्थि अपि द्रवरुपम् अस्ति एव स्त्रोतोबाह्यम् इति कृत्वा अस्थिवहानाम् इति उक्तम्। ... च.वि.५/८ (चक्रपाणी टीका)

सुश्रुत संहिता पर डल्हण टीका में कहा गया है कि सर्पविष वेग के विषय में पुरीषधराकला यही अस्थिधराकला है।

(गर्भव्याकरण में ७ कलाओं का वर्णन किया गया है।)

या एव कला पुरीषधरा सा एव अस्थिधराकला।

... सु.कल्प ४/४० (डल्हण टीका)

पुरीष और अस्थि का व्यावहारिक स्तर पर विचार करने पर अंशतः परस्पर संबंध निश्चित रुप से समझ में आता है, जैसे पुरीष व अस्थि दोनों में भी रुक्षता, खरता विशेष रुप से होती है, दोनों का भी वात दोष से संबध है। कटिशूल, पृष्ठशूल, संधिशूल जैसी अस्थिजन्य विकृतियों में मलावष्टंभ, ग्रहणी के समान पुरीष विकृति, अग्नि विकृति दिखाई देती है। पुरीष विकृति दूर होते ही अस्थिजन्य वेदना की तीव्रता भी कम होती है, ऐसा अनुभवसिद्ध है।

३) अस्थि - स्वरूप, संघटन

सर्वम् इदं पांचभौमिकम् अस्मिन् अर्थे।

इस सिद्धांत के अनुसार, यद्यपि अस्थि धातु पांचभौतिक होता है, तथापि अस्थि मुख्यतः पार्थिव होते हैं। इसी कारणवश स्थिरता, मजबूती तथा काठिन्य ये गुण निर्माण हुए हैं। पार्थिवत्व गुण के कारण ही अस्थि का समावेश पितृज घटक में किया गया है।

चरकाचार्य ने अस्थि संघटन का उल्लेख 'ग्रहणी चिकित्सा' अध्याय में किया है। अस्थि संघटन में पृथ्वी के साथ वायु का संबध महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी के कारण स्थिरता, काठिन्य, खरत्व इन गुणों की प्राप्ति होती है और वायु के कारण अस्थि रूक्ष, सुषिर (सच्छिद्र) बनते हैं।

पृथ्वी अग्नि अनिल आदींना संघातः श्लेष्मणाकृतः खरत्वं प्रकरोति अस्य जायते अस्थि ततो नृणाम्॥ ... च.चि.१५

स्वरूप

वृक्ष के मध्यभाग में स्थित सारकाष्ठ के समान दृढता, स्थिरता, कठीनता, अनाम्यता, चिरस्थायिता, भारधारण क्षमता अस्थियों में होती है। आभ्यंतर सारभाग पर संपूर्ण वृक्ष की शाखाएँ, पत्तियाँ, फूल, फल आदि का भार होता है, उसी प्रकार शरीर में मस्तिष्क, उर, उदर, शाखा आदि का भार अस्थियों पर होता है। कठिनता इस गुण के कारण अस्थि 'भज्यन्ते किन्तु न नम्यन्ते' (टूट जाते हैं किन्तु झुकते नहीं)। अपवाद है केवल तरूणास्थि (तरूणास्थिनि नम्यन्ते।) चरकाचार्य ने वातस्थान में अस्थि का समावेश किया है। वाग्भटाचार्य कहते है कि वायु आश्रयी और अस्थि उसके आश्रय हैं।

यत् एकस्य, तत् अन्यस्य वर्धनक्षपणऔषधम्।

वस्तुतः यह 'आश्रयाश्रयी' संबंध का मूलमंत्र है। तथापि 'अस्थि - वायु' का आश्रयाश्रयी संबंध इसे अपवाद है।

अर्थात यदि वायु ↑ तो अस्थि ↓ और
वायु ↓ तो अस्थि ↑

संघटन

अस्थि पृथिवी अनिलात्मकम्। ... सु.सू.१५/८, भानुमती टीका

डल्हणार्य ने पृथ्वी के साथही वायु एवं तेज का भी अस्थिसंघटन में सहभाग स्पष्ट किया है। तेज के द्वारा द्रव शोषण तथा वायुजन्य खरपाक इसी लिए, अस्थिमध्यगत सुषिरभाग वायुक्रिया के कारण ही उत्पन्न।

स्वरूप

शरीर की उँचाई अस्थि पर ही निर्भर होती है। शरीर की आकृति अस्थि के अभाव में संभव ही नहीं। अस्थि के बिना शरीर अर्थात मृदु धातु का केवल एक गोला ही है।

४) अस्थि - प्रकार

पोष्य और पोषक इस पारंपारिक वर्गीकरण के अलावा सुश्रुताचार्य ने अस्थि के निम्न पाच प्रकार बताए हैं।

१) नलाकास्थि = लंबे तथा नलिका के सदृश अंतर्भाग में रिक्त। शाखाओं में (Long Bones)

२) कपालास्थि = शुर्पाकार = सपाट = शिरःप्रदेश में (Flat Bones)

३) मण्डलाकार अस्थि = पृष्ठवंश में (Vertebrae)

४) रूचकास्थि = दंत (Teeth)

५) तरूणास्थि = अविकसित (Cartilages)

५) अस्थि - परिणमन

खलेकपोत न्याय के अनुसार - आहाररस से और

केदारकुल्या न्याय के अनुसार - मेद से अस्थिपोषकांश प्राप्त होते हैं।

१) **मेदः स्नेह स्वेदौ दृढत्वं, पुष्टिम् अस्थ्नां च।** ... सु.सू.१५/५

२) **रसात् रक्तं, ततो मांसं, मांसात् मेद ततो अस्थि च।** ... च.चि.१५/१६

३) चरक - ग्रहणी चिकित्सा अध्याय के अनुसार,

मेदधातु (द्रव, श्लक्ष्ण, स्निग्ध) → मेदाग्नि (पाक के कारण) → अस्थि धातु (स्थिर, खर, कठिन)

(पृथ्वी+अग्नि+वायु) संस्कारों के कारण

पृथ्वी का संघात। द्रवत्व नष्ट → घनत्व, खरत्व

त्रिधा परिणमन

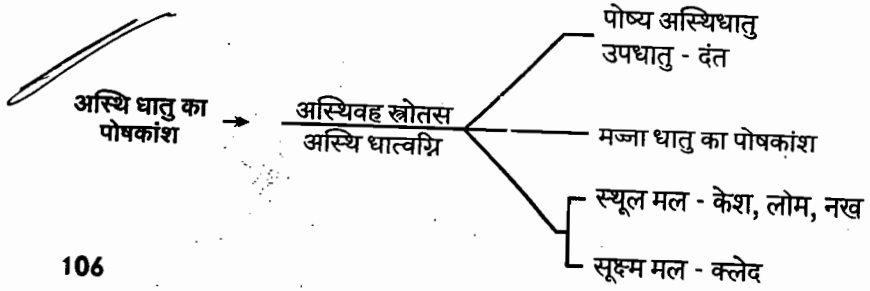

६) अस्थि - परिणमन काल

संतत्या भोज्यधातुंना परिवृत्तिस्तु चक्रवत्॥

किसी चक्र के समान प्रतिक्षण, अनवरत अस्थि धातु के क्षरण तथा आपूर्ति की प्रक्रिया चलती रहती है। चरकाचार्य के अनुसार आहार सेवन के उपरान्त छठे दिन और सुश्रुत के अनुसार बीसवें दिन अस्थि की निर्मिती अथवा पोषण होता है। अस्थिभग्न होने पर तीन सप्ताह तक (२१ दिन) बंधनकर्म (Plaster) किया जाता है। अर्थात व्यवहार में भी २० - २१ दिन के पश्चात ही अस्थिसंधान, अस्थिपोषण पूर्ण होता है।

७) अस्थि - गुण

अस्थि पार्थिव होते हैं। इसी लिए चरकोक्त पार्थिव द्रव्य के गुण अस्थि में दिखाई देते हैं, जैसे कठिनता, खरता (परुषता), घनत्व, गुरुत्व, स्थिरता आदि। अस्थि के सभी कार्य इन गुणों पर ही आधारित होते हैं।

८) अस्थि - प्रमाण

१) वेदवादी / आत्रेय संप्रदाय के अनुसार - अस्थि संख्या = ३६०

२) धान्वन्तर / सुश्रुत के अनुसार - अस्थि संख्या = ३००

३) आधुनिकशारीर शास्त्र के अनुसार - अस्थि संख्या = २०६

उपरोक्त संख्या में फरक केवल 'अस्थिगणना की विभिन्न पद्धति के कारण' दिखाई देता है। इसका अधिक विवेचन शरीर रचना विषय में किया गया है।

मनुष्य की उँचाई अस्थियों पर ही निर्भर होती है। गर्भावस्था में गर्भ की उँचाई नापने के लिए Sonography के द्वारा Vertebral Column की, हाथ-पैर के अस्थियों की लंबाई नापी जाती है। ग्रंथकारों ने 'प्रमाणतः शरीर परीक्षण' (Average Measurement) का वर्णन करते हुए 'सविंशमगुलशतम् पुरुषः।', 'चतुर्शातिरंगुलानि देहप्रमाणम्।' ऐसे संदर्भ 'स्वअंगुलि' प्रमाण के अनुसार दिए हैं। इसके अनुसार 'अतिदीर्घ' अथवा 'अति-ह्रस्व' की गणना 'निन्दित पुरुष' में की गई है।

९) अस्थि - कार्य

१) **धारणम् (अस्थ्नः श्रेष्ठं कर्म।)** ... अ.ह.सू.११/४

देह धारण, शरीर सीधा रखना, झुकने न देना ये प्रधान अथवा श्रेष्ठ कर्म हैं। यही आलम्बन अथवा अवलम्बन कार्य है। शरीरगत मांस, सिरा, स्नायु आदि घटक मृदु, अदढ

होने के कारण स्वयं स्वबल से स्थिर नहीं रह सकते। अस्थियों के आधार से ही वे स्वस्थान में स्थिर रहकर संकोच आदि कार्य कर सकते हैं। वस्तुतः सभी धातुओं का सामान्य कार्य,

धारणात् धातवः।

इस स्वरूप का है, किन्तु अस्थि में 'धारण' कर्म विशेषत्व से स्पष्ट होता है। अस्थि के बिना शरीर मांस का केवल एक गोला ही है। धारण कर्म का अर्थ है - तद्-तद् अवयव की (हस्त, पाद आदि) रचना, स्वरूप, स्थिति, कार्य बनाए रखना। शरीरावयवों को 'विशिष्ट आकार' प्राप्त होता है। अस्थि के कठीन, मजबूत गुण के कारण धारण कार्य संपन्न होता है।

२) धारण से संरक्षण भी अभिप्रेत है। अस्थि के द्वारा आवरित होने के कारण अनेक महत्वपूर्ण अवयवों का बाह्य आघात से संरक्षण होता है, जैसे - प्राण का आश्रयस्थान मस्तुलुंग अथवा मस्तिष्क पर कपालास्थि (करोटी) का आवरण होता है। नेत्र जैसा नाजुक अवयव अस्थि के खांचे में ही स्थित है। हृदय तथा फुफ्फुस जैसे अतिमहत्त्वपूर्ण अवयव, अस्थि से निर्मित Thoracic Cage में सुरक्षित होते हैं।

३) **अभ्यंतरगतैः सारैः यथा तिष्ठंति भुरुहाः।**
अस्थिसारैः तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम्।
तस्मात् चिरविनष्टेषु त्वङ्मासेषु शरीरिणाम्।
अस्थीनि न विनश्यन्ति साराणि एतानि देहिनाम्।
मांसानि अत्र निबध्दानि सिराभिः तथा।
अस्थिनि अवलंबनं कृत्वा न शीर्यन्ते पतान्ति वा॥ ... सु.शा.५/२१-२३

वृक्ष के मूल तथा टहनियाँ उसके तने पर निर्भर होते हैं, उसी प्रकार शरीर में स्थित अस्थिधातु के कारण धारण कर्म होता है। मृत्यु के पश्चात शरीर के सभी अवयव नष्ट होने के उपरान्त भी अस्थि चिरकाल टिके रहते हैं, जो न्याय वैद्यक शास्त्र (Medico legal Cases) में अत्यंत सहायक होता है। अस्थि अथवा कंकाल के द्वारा संबंधित मृत व्यक्ति की उँचाई, स्वरूप आदि के विषय में अनुमान कर अपराध की जाँच की जा सकती है।

अस्थि चिरस्थायी धातु है, अर्थात अधिक समय तक अविकृत रहना, नष्ट न होना। मृत्यु के उपरान्त त्वचा, मांस आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं किन्तु अस्थियों का विनाश दीर्घ काल तक नहीं होता।

४) **अस्थीनि देहधारणं मज्ज्ञः पुष्टिं च।** ... सु.सू.१५/५

उत्तरधातु पोषण का कार्य - मज्जा पुष्टी।

दंत इस उपधातु का धारण, पोषण करना। ...शार्ङ्गधर

५) **मल पोषण** - केश, लोम, नख इन अस्थिमलों का पोषण करना।

(नख = कंडरा के अग्रप्ररोह - इति सुश्रुत)

कार्य का महत्त्व

मनुष्य शरीर का ढाँचा अथवा व्यक्तिमत्व, अस्थियों पर ही निर्भर होता है। अस्थि स्थिर धातु होते हैं। अतः अस्थि की पूर्णतः वृद्धि होने के उपरान्त निर्मित आकृति (मुख्यतः उँचाई) आजीवन कायम रहती है।

यद्यपि स्वयं अस्थि स्थिर, दृढ होता है, तथापि शरीर में अलग-अलग, बिखरे हुए स्वरुप में अस्थियों की रचना सहायक नहीं होती। इसी लिए सुश्रुताचार्य ने कोर, उलुखल आदि आठ प्रकार की अस्थिरचनाएं स्पष्ट की है।

संधि के मुख्यतः दो प्रकार होते हैं, जैसे - चल एवं अचल।

अस्थियों में रुक्षत्व का प्रतिबंध करने की दृष्टि से श्लेषक कफ की योजना की गई है। अस्थिसंधि के कारण ही क्रियासामर्थ्य का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न होता है। अस्थिसंधि स्नायुओं से बद्ध होते हैं। शरीरगत सभी अस्थिसंधियों के कारण अस्थियों का एक ढाँचा बनता है, जिसे **अस्थिपंजर अथवा कंकाल** कहा जाता है।

१०) अस्थिसारता

सार = सर्वोत्कृष्ट अंश।

अस्थिधातुसारता का अर्थ है - उस व्यक्ति में अस्थिधातु की द्रव्यतः, गुणतः, कर्मतः उत्तम स्थिति। अस्थिअसार होने पर शृंगभस्म, प्रवालभस्म इस स्वरूप की रसायन चिकित्सा करें। प्रकृति परीक्षण सार्वदेहिक और सार परीक्षण अधिकतर स्थानिक स्वरूप का है। प्रकृति परीक्षण दोष संबंधित है और सार परीक्षण धातुओं के संदर्भ में किया जाता है।

- **पार्ष्णि - गुल्फ - जानु - आरत्नि - जत्रु - चिबुक शिरः पर्वस्थूलाः स्थूलः अस्थि - नख - दंताः च अस्थिसाराः। ते महोत्साहा : क्रियावन्त क्लेशसहाः सार स्थिर शरीराः भवन्ति आयुष्मन्तः च॥** ... च.वि.८/१०७
- **महाशिरः स्कंधं बृहत् दंत हनु आस्थि नखम् अस्थिभिः।** ... सु.सू.३५/१६

प्रत्यक्ष के आधार पर अवयवों की निश्चिती निम्न प्रकार से की जा सकती है।

- पार्ष्णि = Heel = Calcaneum,
- गुल्फ = Ankle Joint, Malleoli,
- जानु = Knee Joint = Patella,

- जत्रु = Manubrium Sternum & Clavicle,
- चिबुक = Chin - Menum,
- पर्व = Phalanges & Interphalangeal Joints

अस्थिसारता विनिश्चय

१) शरीर की बनावट शक्तिशाली, लंबी-चौडी, मजबूत है ?

हाँ - (अस्थि - सार)

२) सभी संधियाँ बृहदाकृति हैं ?

हाँ - (अस्थि - सार)

३) मामूली अपघात (गिरना, वाहन का धक्का लागना) के कारण अस्थिभंग हुआ है ?

हाँ - (अस्थि - दुर्बल),

नहीं - (अस्थि - बलवान)

४) नख एवं केश का विकास किस प्रकार है ?

मंद तथा टिकाऊ - (अस्थि - सारवान)

५) नख तथा केश मोटे, आकार में बडे हैं ?

हाँ - (अस्थि - सार)

नहीं - (अस्थि - असार)

६) बाल्यावस्था में दाँत जल्दी, बिना किसी उपद्रव से निकल आए थे ?

हाँ - (अस्थि - सार),

नहीं - (अस्थि - असार)

७) दीर्घकाल शारीरिक श्रम करने पर विश्रांती अत्यावश्यक महसूस होती है ?

हाँ - (अस्थि - असार),

नहीं - (अस्थि - सार)

८) ऐसे समय विश्राम के अभाव में भी उत्साहपूर्वक काम करना संभव होता है ?

हाँ - (अस्थि - सारवान),

नहीं - (अस्थि - असार)

अस्थि घटक दुर्बल होने पर निम्न उपद्रव अथवा व्याधि पुनः-पुनः निर्माण हो सकते हैं

१) अस्थियों तथा संधियों में बार-बार दर्द होना।

२) अस्थि सुषिरतायुक्त होना (Osteoporosis)।

३) नख, केश आदि के विषय में नित्य उपद्रव (बाल झडना)।

४) एक के ऊपर एक दाँत आना।

५) विकृत अस्थिवृद्धि।

अस्थि घटक दुर्बल होने पर उपयुक्त टॉनिक

१) श्रृंगभस्म, २) शतावरी कल्प, शतावरी घृत, ३) लाक्षादि गुग्गुल, लाक्षादि घृत, ४) प्रवाल भस्म, ५) कॅल्सिप्राल (आयुर्वेद रसशाला), ६) अश्वगंधारिष्ट

अस्थि - उपधातु

दंता अस्थ्नाम् उपधातुः। ... शार्ङ्गधर १/५/१६ - १७ आढमल्ल टीका।

विस्तृत वर्णन स्वतंत्र प्रकरण में किया गया है।

१२) अस्थि - मल विचार

- **केश लोम अस्थ्नो (मलः)।** ... च.चि.१५/१९
- **कफः पित्तं मलः खेषु स्वेदः स्यात् नखरोम च॥** ... सु.सू.४६/५२९

विस्तृत वर्णन स्वतंत्र प्रकरण में किया गया है।

अस्थि विकृति

- वृद्धि
  - द्रव्यतः
  - गुणतः
  - कर्मतः
- क्षय
  - द्रव्यतः
  - गुणतः
  - कर्मतः

१३) अस्थि - वृद्धि

अस्थि अधि - अस्थिनि अधिदंताः च॥ ... सु.सू.१५/१४

अस्थि वृद्धि में हड्डीयों की अत्यधिक वृद्धि होती है। अस्थि एक के ऊपर एक बढने लगते हैं। साथही अस्थि प्रकार - रुचकास्थि अथवा दाँत संख्या में अधिक अथवा एक के ऊपर एक, समूह में (Crowded Teeth) निर्माण होते हैं।

एडी (पार्ष्णि) की अस्थि की वृद्धि (Calcaneal Spur) इस अस्थिवृद्धि सदृश विकार में जमीन पर पैर रखने पर अथवा चलते समय एडी (पार्ष्णि) में अत्यधिक वेदना होती है। 'क्ष' किरण परीक्षा के द्वारा निदान की निश्चिती की जा सकती है। शस्त्रकर्म से पूर्व, आयुर्वेदिक दहन चिकित्सा अवश्य करनी चाहिए। सुवर्ण, ताम्र अथवा मृत्तिका शलाका की

सहायता से एडी पर महिने में १ या २ बार दहन कर्म करने से वेदना का अंशतः उपशम निश्चित ही होता है। DNS (Deviated Nasal Septum) में भी अस्थिविकृति की दृष्टि से ही विचार करना पडता है ।

१४) अस्थि - क्षय

- **अस्थि क्षये अस्थिशूलं दन्तनखो भंगो रौक्ष्यं च।** ... सु.सू.१५/९
- **केश - लोम - नख - श्मश्रु - द्विजप्रपतनं श्रमः।**
  ज्ञेयम् अस्थिक्षये रूपं संधिशैथिल्यम् एव च॥ ... च.सू.१७/६७

अस्थिक्षय के उपरोक्त लक्षण, उपद्रव होनेवाले अनेक रुग्ण, वैद्यकीय व्यवसाय में नित्य दिखाई देते हैं। इन रुग्णों को Calcium की गोलियाँ देने के बजाए, अस्थिवृद्धि के लिए अथवा हड्डीयों का क्षरण कम करने के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा उपयोगी होती है।

बढती आयु के साथ, हड्डीयों का क्षरण होने के कारण, अस्थिसंधि में 'संधिगतवात' (Osteo - arthritis) व्याधि उत्पन्न होती है। वार्धक्य में वातप्रकोप के कारण होनेवाली यह व्याधि टालने के लिए ४० साल की आयु के उपरान्त सभी जोडों को, विशेषतः जानुसंधि को नियमित रुप से नारायणतेल से मालिश तथा स्वेदन करना चाहिए।

कटिशूल (Lumbago), पृष्ठशूल (Backache), मन्याशूल (Cervical Spondylitis), पादशूल (Leg pain) ये लक्षण भी अस्थिक्षय के कारण निर्माण होते हैं। पादशूल में पिंडली (Calf Muscle) के स्थान में वेदना होने पर मांसदुर्बलता के कारण और Shin of Tibia में वेदना, स्पर्शासहत्व होने पर अस्थि दुर्बलता की संभावना अधिक होती है। दाँतों के टुकडे होना, दाँतों में दरारें पडना, दाँतों के सिरे आरीदार (Serrated Margins) होना, दांतों में चमक का अभाव (रुक्षता येणे), नाखूनों में दरारें पडना, नाखून निस्तेज, रुक्ष दिखना, अधिक मात्रा में बाल झडना (खालित्य) जैसे सभी उपद्रवों का अस्थिक्षय कारण हो सकता है।

अस्थिक्षय दूर करने के लिए दूध, नायली की खीर, गेहूँ, उडद, प्रतिदिन न्यूनतम २ खजूर सेवन करना आवश्यक है। नारायण तेल, लाक्षादि तेल, चंदनबलालाक्षादि तेल, माष तेल, धान्वन्तरम् तैल का अभ्यंग के लिए नियमित रुप से उपयोग करें। प्रवाल भस्म, मृगशृंग भस्म, कुक्कुटांडत्वक् भस्म, लाक्षादि गुग्गुलु, आभादि गुग्गुलु आदि औषधियों का उपयोग अभ्यंतरतः किया जा सकता है। साथही गुडुची, वासा, बला, शतावरी, दशमूल आदि तिक्त द्रव्यों से दूध सिद्ध कर उसका बस्ति, अनुवासन के साथ व्यत्यास में देने से अधिक लाभ होता है।

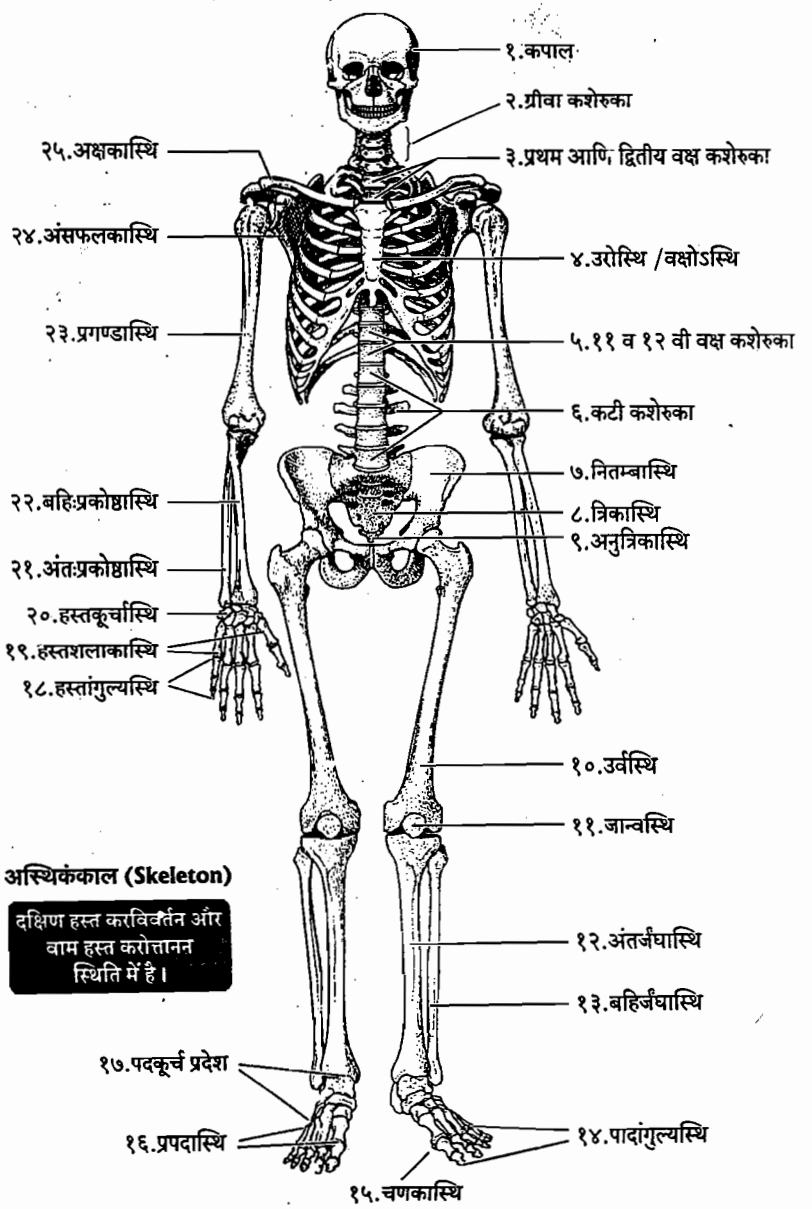

1.Cranium, 2.Cervical vertebrae, 3.1st& 2nd thoracic vertebrae, 4.Sternum, 5.11th & 12th thoracic vertebrae, 6.Lumbar vertebrae, 7.Hip bone, 8.Sacrum, 9.Coccyx, 10.Femur, 11.Patella, 12.Tibia, 13.Fibula, 14.Phalanges, 15.Sesamoid, 16.Metatarsals, 17.Tarsus, 18.Phalanges, 19.Metacarpals, 20.Carpus, 21.Ulna, 22.Radius, 23.Humerus, 24.Scapula, 25.Clavicle.

अर्वाचीन - पूरक विषयांश

1) Osseous Tissue or Bone

This is one of the varieties of connective tissue. This is the hardest of all connective tissues, which constitutes the skeleton. The skeleton system consists of all bones, attached at joints and cartilage between joints.

2) Histology

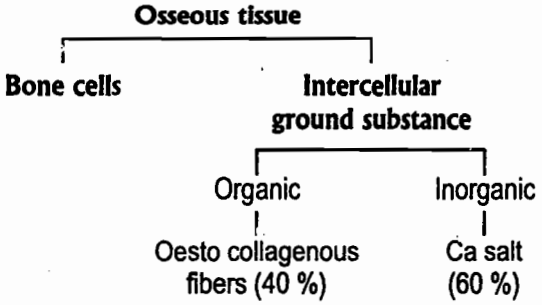

Bone is covered with Periosteum. The four principle types of cells are osteoprogenitor cells, osteoblasts, osteocytes and osteoclasts. Parts of a typical long bone are the Diaphysis (Shaft), epiphysis (Ends), metaphysis, articular cartilage, periosteum, medullary (marrow) cavity and endosteum. Compact (dense) bone consists of osteons (Haversian Systems) with little space between them. Compact bone protects, supports and resists stress. Spongy (cancellous) bone consists of trabeculae surrounding many red and yellow marrow - filled spaces. Spongy bone stores some red and yellow marrow and provides some support.

3) Osteogenesis

Bone forms by a process called ossification (Osteogenesis) . The process begins during the 6th or 7th week of embryonic life and continues throughout the adulthood.

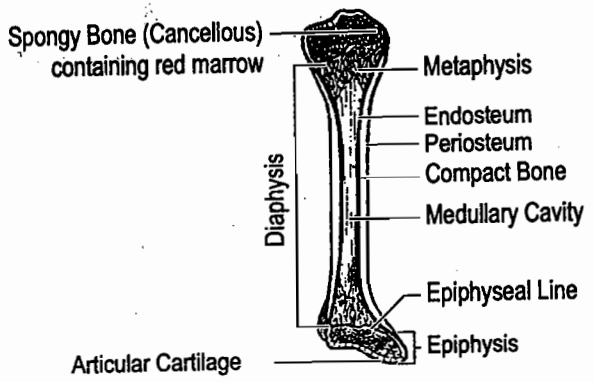

Longitudinal section of a leg bone.

4) Functions of bones

1) Protection to the vital organs of the cranial and thoracic cavities.
2) Mechanical function - Forming the skeletal support and shape to the body. From a leverage system, whereby movement and work are possible.
3) Basis for the attachment of the muscles (Passive instrument of motion) .
4) It lodges the bone marrow, which is important for the haemopoietic function.
v) Great reservoir for minerals, specially phosphorus and Ca to the blood.
vi) Helps in maintaining the body's electrolyte balance, particularly, the distribution of Ca and phosphate ions.
vii) Detoxicating function - Elements such as lead, arsenic, radium etc. are removed from the circulation and are deposited in the bones and teeth.
viii) Assists the respiratory system in forming the nasal cavity and the beginning of the digestive system in forming the mouth. Important in speech for clear enunciation of words forming the bones of the roof of the mouth.

ix) Assists in the transmission of sound to the auditory nerve of the inner ear in forming the ossicles of the middle ear.

5) Aging and the bones

Effect of aging is a loss of calcium from bones, which may result in osteoporosis. Also, at the old age, there is a decreased production of organic matrix, which makes bones more susceptible to fracture.

6) Disorders

i) Fracture is any break in a bone (may be partial, complete, simple, compound, green stick, impacted, Cole's) .

ii) Rickets - is a vitamin D deficiency in children.

iii) Demineralization caused by vitamin D. Deficiency in adults results in osteomalacia.

iv) Osteoporosis - is a decrease in the amount and strength of bone tissue owing to decrease in hormone output.

v) Osteomyelitis - is infectious diseases of bones, marrow and periosteum, which is caused by 'Staphylo coccus bacteria'.

vi) Paget's disease is the irregular thickening and softening of the bones.

प्रकरण ८

पूरण करनेवाला - मज्जा धातु

सप्त धातुओं में छठे क्रमांक का, अस्थि के पश्चात पोषण होने वाला, अधिक उत्तम (प्रसादभूत) धातु है - मज्जा धातु। अन्य धातुओं की अपेक्षा परीक्षण करना कठिन होता है, स्थूल अवयव स्वरुप में, सहजता से परीक्षण नहीं किया जा सकता।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

१) अस्थि के बाद पोषण अतः, **अस्थिस्नेह, अस्थिसंभव।**

२) शुक्र के पोषण के लिए जिम्मेदार अतः, **शुक्रकर।**

३) कौशिक, विश्वामित्र ये ऋषियों के नाम भी पर्यायी नाम हैं।

४) विमज्जन = डूबना। मज्जा धातु अस्थि के भीतरी भाग में, अर्थात शरीर में गंभीर भाग में स्थित होता है।

५) **सार →** जिस प्रकार वृक्ष के तने को सार माना जाता है, उसी प्रकार अस्थि के रिक्त स्थान में स्थित स्निग्ध धातु को मज्जा कहा जाता है। सुश्रुतकालीन शवविच्छेदन पद्धति के अनुसार शव को पत्तों में लपेटकर पिजरे में, बहते पानी में ७ से ८ दिन तक रखा जाता था। तत्पश्चात वनस्पतियों की कोमल शाखाओं अथवा घास के पत्तों का उपयोग कर एक-एक धातु अलग कर, शरीरांतर्गत अवयवों का अध्ययन किया जाता था। इस पद्धति में क्रमशः त्वचा, मांस, मेद, अस्थि और सबसे अंतर्गत मज्जा धातु का ज्ञान संभवतः अंत में हुआ होगा, अतः सार अथवा विमज्जन ये पर्यायी नाम।

२) स्थान

१) **महत्सु च (अस्थिषु) मज्जा भवति।**

स्थूल अस्थिषु विशेषेणं मज्जा तु अभ्यंतराश्रितः॥ ... सु.शा.४/१२

अस्थि के अंतर्भाग में स्थित रिक्त स्थान में स्थूल अस्थि में मज्जा होती है और अण्वस्थि में सरक्त मेद होता है। मज्जा धातु अस्थि के सुषिर मध्यभाग में स्थित होने के कारण गंभीरतम धातु। (इसी लिए मज्जा धातु के आश्रय से जब ज्वर, कफ, वात आदि आश्रित होते हैं, तब दुःसाध्यता अथवा असाध्यता पहचानी जाती है।)

२) **मज्जवहानां स्त्रोतसाम् अस्थीनि मूलं संधयः च।** ... च.वि.५/८

प्रमुख स्थान

मज्जवह स्त्रोतस में ही उत्पत्ति, परिणमन, वहन, किट्टांश का उत्सर्जन ये क्रियाए सम्पन्न होती हैं। स्त्रोतस का मूलस्थान अस्थि एवं संधि हैं। अस्थि के अंतर्गत स्थायी मज्जा धातु होता है, संधि का अर्थ है - अस्थि संधि तथा अन्य प्रकार के भी संधि, जैसे - मांस-स्नायु संधि, स्नायु-अस्थि संधि, मांस-सिरा संधि आदि। अस्थि तथा वात का संबंध सर्वपरिचित है। वात का कार्य मज्जा के आश्रय से होता है। 'हस्त चिमचिमायन' इस वातज प्रकार के लक्षण के लिए, Cervical X Ray - AP and Lateral View निकालकर मन्या प्रदेश के अस्थिसंधि की प्राकृतता का परीक्षण किया जाता है।

३) **या एव पित्तधरा सा एव मज धरा (कला)। ... सु.कल्प ४/४०, डल्हण टीका**

सुश्रुत संहिता में 'विष संक्रमण' में, टीकाकारों ने पित्तधरा कला को ही मज्जधराकला कहा है। पांडु, कामला में भी मज्जास्थित पित्तदुष्टी का उल्लेख किया गया है। व्यवहार में भी, पित्तप्रकोपक कारणों का, मज्जा धातु पर परिणाम दिखाई देता है।

४) **मज्जप्रधान अवयव**

- **तत् एव (मेदः) च शिरसि कपालप्रांतेच्छन्नं मस्तिष्कारख्यं मस्तुलुगाख्यं च स्थूल अस्थिषु च मजा।** ... अ.सं.शा.५/४९
- **मेदः मस्तुलुंगत्व याति मजत्वं यातिं।** ... इन्दु

मस्तुलुंग अथवा मस्तिष्क ये सद्यः प्राणहर मर्म ही शिरः कपाल में उपस्थित मज्जा है (अ. सं.)। डल्हणाचार्य के अनुसार मस्तुलुंग घनीभुत घृत के समान होता है। मस्तिष्क में सभी इंद्रियों के सूक्ष्म नियंत्रक केंद्र होने के कारण मज्जाधातु द्वारा स्निग्धता एवं पूरण की वहाँ आवश्यकता होती ही है।

नेत्र - मज्जा की स्निग्धता के कारण ही आँखों में स्निग्धता, चमक दिखाई देती है।

संधि - मज्जासारता में संधि स्थूल, दीर्घ, वृत्त रहकर अपना कार्य उत्तम प्रकार से कर सकते हैं।

३) मज्जा - स्वरुप, संघटन

सर्वम् इदं पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे।

किन्तु व्यपदेशस्तु न्याय से विचार करने पर 'मज्जा आप्य है।' (इति चक्रदत्त)

जल का स्निग्ध गुण मज्जा में मुख्यतः प्रतीत होता है। मज्जा ही अस्थिमध्यगत स्नेह

है। मेदसदृश, किन्तु मेद की अपेक्षा गुरु एवं साररुप धातु। मेद स्निग्धतर और मज्जा स्निग्धोत्तम है। मज्जा यह पांचभौतिक स्नेहद्रव्य, सोमगुणजल तत्व + तेज तत्व का संयोग भी होता है। मज्जा को मातृज अवयव बताया गया है। मस्तिष्क मज्जा का स्वरुप **अविलीन घृताकार** बताया गया है। मज्जा कफवर्गीय धातु होने के कारण कफ का स्थान है और वाग्भट के अनुसार कफ तथा मज्जा का आश्रयाश्रयी संबंध होता है। मज्जा के २ प्रकार होते हैं, जैसे - पोष्य एवं पोषक।

४) मज्जा - प्रकार

स्थायी (पोष्य) व अस्थायी (पोषक) ऐसे दो प्रकार।

५) मज्जा - परिणमन

- **अस्थ्नो मजा ततः शुक्रं ...॥** ... च.चि.१५/१६
- **अस्थि मज्ञः पुष्टीं च (करोति)।** ... सु.सू.१५/५

पोषण क्रमांक के अनुसार छठा धातु।

अस्थि → मज्जा

खर, शुष्क, स्थिर, आर्द्रता रहित धातु — स्निग्ध, मृदु, द्रव

वायु के प्रभाव के कारण अस्थि के मध्यभाग में सुषिरता होती है। इन छिद्रों में मेद धातु स्थापित होकर सुषिरता भरी जाती है। यह अस्थिगत स्नेह ही मज्जा है। (निम्न आकृति देखें।)

- **स्थूलास्थिषु विशेषण मजा तु अभ्यन्तराश्रिता। महत्सु मजा भवति॥** ... सु.शा.४/१२
- **मेदसस्तानि पूर्यते स्नेहो मजा ततः स्मृतः॥** ... च.चि.१५

अस्थि में मेद के घटक प्रविष्ट होते हैं, उन पर अग्नि के संस्कार होकर, पचन होने से जो स्नेह अथवा सारभाग निर्माण होता है, वही मज्जा कहलाता है।

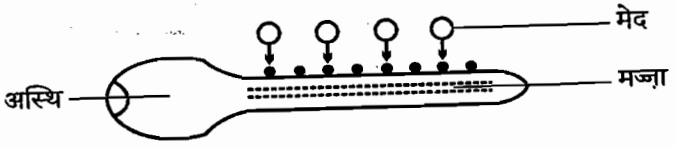

मज्जा धातु की उत्पत्ति अथवा पोषण के संदर्भ में दो बातें महत्वपूर्ण है।

१) क्रमपरिणमन न्याय के अनुसार रस - रक्त, रक्त - मांस ... इस क्रम से एक धातु से लेकर अगले धातु की उत्पत्ति अथवा पोषण होता है। अस्थि से → मज्जा निर्मिती।

२) जैसा कि उपरोक्त आकृति में दिखाया गया है - मेद का स्निग्धांश, सछिद्र अस्थि से बहकर मज्जा की निर्मिती होती है।

प्रथमतः ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त दोनों विधान विभिन्न अर्थ सूचित करते हैं, किन्तु मज्जा धातु के संघटन का विचार करने पर दोनों विधानों का समन्वय निम्न प्रकार से - मज्जा की उत्पत्ति, पोषण के लिए निम्न २ उपादान कारण होते हैं -

अ) मेदस्थित स्निग्धांश ब) अस्थिधातुगत प्रसादांश

खलेकपोत न्याय के अनुसार, आहार के मज्जाधातु पोषक घटक स्वतंत्ररुप से आहाररस के द्वारा सीधे मज्जा की ओर जाकर तत्काल मज्जा का पोषण करते हैं, जैसे - गोघृत, ब्राह्मी, शंखपुष्पी।

त्रिधा परिणमन

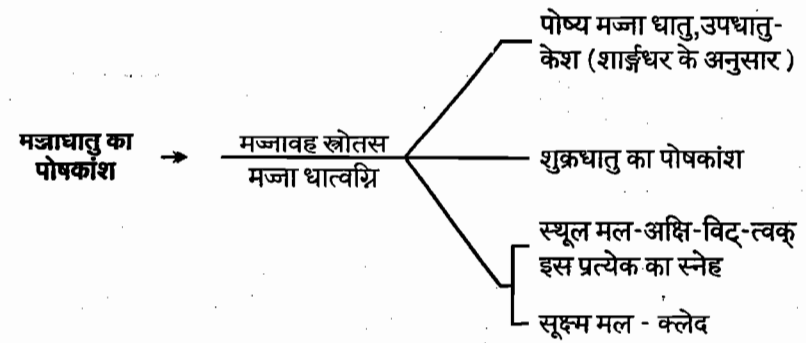

६) परिणमन काल

१) **संतत्या भोज्यधातुनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत्।**

२) चरक के अनुसार → आहाररस के बाद ७ वे दिन (पोषकांश की निर्मिती ?)

३) सुश्रुत के अनुसार → २५ वे दिन (पोष्य मज्जा धातु की निर्मिती)

७) मज्जा - गुण

स्निग्ध, शीत, गुरु ये कफ के गुण मज्जा में होते हैं।

८) मज्जा - प्रमाण

एको (अंजलिः) मज्जायाः। मस्तिष्कस्य अर्ध अंजलिः। ... च.शा.७/१५

जीवित शरीर में इसका मापन असंभव होता है। अतः प्राकृत कार्य तथा अनुमान के द्वारा प्रमाण सुनिश्चित किया जाता है।

९) मज्जा - कार्य

१) **सभी धातुओं का सामान्य कार्य**

धृ - धारयति - धारण करना। शरीर - इंद्रिय - सत्व - आत्मा यह संयोग बनाए रखकर जीवन, आयुष्य का धारण करना।

२) **पूरण यह श्रेष्ठ कर्म**

पूरणं (मज्जः श्रेष्ठं कर्म) ... अ.हृ.सू.११/४

अस्थिपूरण को ही 'मज्जाकृत अस्थिस्नेहन' कहते है।

अस्थि, रिक्त स्थान, छिद्र इन्हे स्नेहपूर्ण रखना। इसके क्षय तथा कमी के कारण अस्थि रिक्त, वातपूर्ण, रुक्ष, लघु तथा क्षणभंगुर बन जाते हैं, अतः स्नेहन के द्वारा अस्थियों का पूरण कर बल प्रदान करना यह मज्जा का कार्य है। अस्थि का स्वास्थ्य बनाए रखा जाता है। वायु यह नेता, प्रमुख है। (कफः पंगु, पित्तः पंगु ...।) इसी लिए अस्थि में वात नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है। मस्तिष्क - ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय, उभयेंद्रिय का स्थान है। मस्तिष्क में, शिरकपालास्थि में मज्जाकृत पूरण, स्नेहन प्राकृत न होने पर इंद्रियों के कार्य सुव्यवस्थित नहीं होते। शारीरिक, मानसिक क्रियाव्यापार विकृत होते हैं।

३) **मज्जा प्रीतिं, स्नेहं, बलं, शुक्रपुष्टिं पूरणं अस्थ्नां च॥ ...सु.सू.१५/५**

अ) **प्रीति**

मस्तिष्कस्थित मज्जा के कारण, प्राकृत स्नेहन होकर मन तथा इंद्रियों के कार्य प्राकृत प्रकार से चलते रहते हैं। इसी के कारण काव्य, शास्त्र, कला (नृत्य, वादन आदि) आदि विषयों में रुचि, लगाव उत्पन्न होता है। मानसिक, बौद्धिक संगोपन सुचारु रुप से होने से प्रेमभावना, गुणग्राहकता, रसिकता, आदरभाव जैसे सद्गुण इस व्यक्ति में प्रतीत होते हैं।

मज्जा धातु के द्वारा मानसिक पोषण, परिपक्वता, बुद्धिमत्ता उत्तम प्रकार से निर्माण होने से इस व्यक्ति के लिए सभी के मन में प्रेम, आत्मीयता की भावना निर्माण होती है। पिता - पुत्र, गुरु - शिष्य, वक्ता - श्रोता इनमें होने वाला लगाव, प्रेमभावना, बंधुप्रेम, मित्रप्रेम यह

मज्जा धातु का कार्य है। भिन्न लिंगी व्यक्तियों में होने वाला आकर्षण, पती - पत्नी में होनेवाली प्रेमभावना लैगिंक, कामवासना से संबंधित होती है और प्रीति उत्पन्न करना शुक्रधातु से संबंधित है। मज्जा का प्रीति कार्य मानसिक भाव का उदाहरण है। मन के कार्य उत्तम प्रकार से होना मज्जा धातु पर भी निर्भर होता है। मज्जा के द्वारा ही सभी मानसिक भावों का नियंत्रण किया जाता है।

ब) स्नेह

प्रत्येक अवयव को स्निग्धता प्रदान करना। इसके कारण तेजस्विता, मृदुता तथा संधि में श्लक्ष्णता, क्रियासौकर्य उत्पन्न होते हैं। अस्थि, संधि, नेत्र, मस्तिष्क आदि अवयव स्निग्ध रहते हैं। सर्भा स्थानों में वायु की अनुलोमगती बनी रहती है। इंद्रियक्षमता (कार्यशक्ति) चिरकाल बनी रहती है। स्वरमाधुर्य उत्पन्न होता है।

क) बल

स्नेहन के कारण ही बलप्राप्ती होती है। स्नेहांश सम्यक् मात्रा में होने से देहबल, मनोत्साह, इंद्रियबल प्राप्त होते हैं। इसी लिए मज्जासार व्यक्ति 'अकृशम् उत्तमबलं।' होते हैं, ऐसा सुश्रुताचार्य कहते है। बल का अर्थ है - प्राकृत सामर्थ्य। अणुपरमाणुओं मे होनेवाले बंध की दृढता, चिरकालीनता पर सामर्थ्य निर्भर होता है। बंध अथवा जोड की निर्मिती स्नेहन के कारण ही संभव होती है। बल का अर्थ ओज भी है। शुक्र का सारभूत तथा स्निग्ध अंश ओज है, और शुक्र का पोषण भी मज्जा के द्वारा ही होता है।

ड) शुक्रपुष्टी

पुष्टी का अर्थ है - यथोचित विकास तथा पोषण। क्रमपरिणमन न्याय के अनुसार, मज्जाधातु के द्वारा त्रिधापरिणमन के दौरान शुक्र के पोषकांश की निर्मिती होती है।

मन अथवा इंद्रिय की कार्यशक्ति मज्जधातु पर निर्भर होती है। चेष्टा, संकल्प, पीडन, स्मरण आदि द्वारा मानसिक भावों को उत्तेजना देकर, पोष्य शुक्र का प्रवर्तन, उदीरण, उत्सर्जन करने के लिए मज्जाधातु की प्रेरणा सहायक होती है।

उत्तर धातु के साथही, केश, लोम इन शार्ङ्गधरोक्त उपधातुंओं का पोषण भी मज्जा के द्वारा होता है।

१०) मज्जासारता

- **मृदु अंगाः बलवंत स्निग्ध वर्णस्वराः, स्थूलदीर्घ - वृत्त संधयः च मज्जासाराः।**
  ते दीर्घायुषो बलवंतः श्रुतावित्त - विज्ञान अपत्य संमानभाजः च भवन्ति॥

... च.वि.८/१०८

- **अकृशम् उत्तमबलं स्निग्धगंभीर स्वर सौभाग्योपपन्नं महानेत्रं च मज्जा॥**

... सु.सू.३५/१६

सारता का अर्थ है - विशुद्धतर, उत्कृष्ट अथवा गुणवत्तर धातु। मज्जाधातुसारता में मुख्यतः स्निग्धता का परीक्षण अपेक्षित है। शरीर स्निग्ध, स्नेहयुक्त, तेजस्वी तथा बलवान होता है। बृहत्, सघन, बलवान अस्थिसंधि होते हैं। इन व्यक्तियों की विशेषता यह है कि, यद्यपि उनका शरीर छोटा दिखता है, तथापि वे कामसू, बलवान होते हैं।

मज्जा सारता विनिश्चय

१) शरीर मृदु (Soft) स्वरुप का होने पर भी बलवान है ?
   हाँ - (मज्जा - सार)
   नहीं - (मज्जा - असार)

२) स्वर मधुर, मृदु है ?
   हाँ - (मज्जा - सार)
   नहीं - (मज्जा - असार)

३) शरीर के संधि बृहत, वर्तुलाकृति है ?
   हाँ - (मज्जा - सार)
   नहीं - (मज्जा - असार)

४) दूसरों को सहसा न सूझनेवाली कल्पना, योजना स्वतंत्र रुप से प्रस्तुत कर सकते है ?
   हाँ - (मज्जा - सार)।
   नहीं - (मज्जा - असार)
   केवल दूसरों ने बताया हुआ कार्य सम्पन्न करने में ही समर्थ है।

५) आपकी भूमिका सलाह देने की है या नित्य दूसरों से सलाह लेने की ?
   हाँ (योग्य सलाह देने की) - (मज्जा - सार)
   नहीं (सलाह लेने की) - (मज्जा - दुर्बल)

मज्जा घटक दुर्बल होने पर निम्न उपद्रव पुनः-पुनः निर्माण होने की संभावना होती है

१) जोडों में दर्द। २) चक्कर आना।
३) बेहोशी (ग्लानि)। ४) स्मृतिभ्रंश।
५) ज्ञानेंद्रिय एवं कर्मेंद्रिय के विविध उपद्रव अथवा विकृति।

मज्जा घटक दुर्बल होने पर निम्न टॉनिक लाभदायक होते हैं

१) सुवर्ण (सिद्धजल)	२) वेखंड	३) शंखपुष्पी (सिरप)
४) बादाम	५) सारस्वतारिष्ट	६) शतावरी (कल्प)
७) आँवला (च्यवनप्राश)	८) ब्राह्मीप्राश, ब्राह्मीघृत, ब्राह्मीवटी	

११) मज्जा - उपधातु

अधिकतर ग्रंथकारों के अनुसार मज्जा के उपधातु नहीं होते, किन्तु शार्ङ्गधर टीकाकार आढमल्ल के अनुसार, केश मज्जा का उपधातु है।

केशाः (मज्ज्ञः उपधातुः।) ... शा.१/५/१७

मज्जा तथा केश का अप्रत्यक्ष संबंध व्यवहार में भी दिखाई देता है। अतिविचार, अतिचिंता का परिणाम मन, बुद्धि पर होता है। मन अथवा बुद्धि का प्रमुख स्थान मस्तिष्क है। मस्तिष्क मज्जा प्रधान अवयव होने से मज्जा की रसायन स्वरुप की चिकित्सा करने पर केशपतन की शिकायत कम हो जाती है।

'केश' के विषय में अन्य ग्रंथकार

चरक - अस्थिमल - केश

सुश्रुत - अस्थिमल - केश

वाग्भट - अस्थिमल - केश (अस्थिक्षय होने पर केशपतन में वृद्धि।)

डल्हण - शुक्रमल - श्मश्रु (दाढी-मूँछ के केश)

(अंडकोश निकाल देने पर अथवा संकुचित होने पर उसका परिणाम दाढी-मूँछ पर होता है।)

१२) मज्जा - मल

मज्ज्ञः स्नेहो अक्षिविट्त्वचाम् (मल) ... च.चि.१५/१९

चरक तथा वाग्भट के अनुसार- नेत्र, त्वचा, पुरीष में उपस्थित स्नेहांश। सुश्रुत एवं शार्ङ्गधर के अनुसार - नेत्र में उपस्थित किट्ट (दुषिक) तथा त्वक्गत स्नेह ये मज्जा मल हैं। यह स्निग्धता अप्राकृत (कम) होने पर नेत्र, त्वचा आदि का कार्य विकृत हो सकता है।

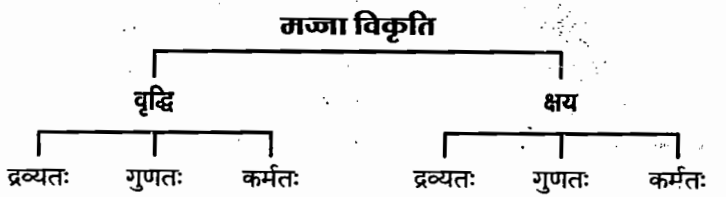

मज्जा विकृति के कारण तथा उसकी चिकित्सा सामान्य विशेष सिद्धांत के द्वारा स्पष्ट किए जा सकते हैं।

१३) मज्जा - वृद्धि

मज्जा सर्दांग नेत्र गौरवम्। ... सु.सू.१५/१४

गौरव का अर्थ है - जडता (Heaviness)।

समस्त शरीर में, आँखों में जडता उत्पन्न होती है। मज्जा वृद्धि में स्निग्ध गुणाधिक्य, अतिस्निग्धता के कारण शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्त्रोतसों में उपलेप, अवरोध निर्माण होता है, इंद्रियों की कार्यशक्ति तथा कार्यप्रवणता के लिए अवकाश कम पडने से, आवरण आने से गौरव, क्रियाशैथिल्य अथवा कार्यहानि दिखाई देती है। नेत्र व मस्तिष्क मज्जाप्रधान अवयव होने के कारण उन पर मुख्यतः परिणाम होता है। मज्जावृद्धि दूर करने के लिए मुख्यतः रुक्षण चिकित्सा एवं मज्जाधात्वग्नि सुधारक वेखंड आदि द्रव्य सहायक होते हैं।

१४) मज्जा - क्षय

१) **अस्थ्नां मज्जनि सौषिर्यं भ्रम तिमिरदर्शनम्।** ... अ.हृ.सू.११/१९

२) **शीर्यन्त इव च अस्थीनि दुर्बलानि लघूनि च।**
प्रततं वातरोगीणि क्षीणे मज्जनि देहिनाम्॥ ... च.सू.१७/६८

३) **मज्जक्षये अल्पशुक्रता पर्वभेदो अस्थिनिः तोदो अस्थिशून्यता च।**
... सु.सू.१५/९

अस्थियों का पूरण कम होने से अस्थिसौषिर्य, अस्थि-संधियों में रिक्तता की भावना, जोडों में दर्द होता है। मस्तिष्क की स्निग्धता में कमी आने के कारण पोषक अंश की प्राप्ति नहीं होती, ज्ञानेंद्रिय - कर्मेंद्रियों के नियंत्रण में कमी आकर चक्कर आने लगते हैं (भ्रम), मज्जाक्षय के कारण मज्जाप्रधान नेत्रों पर परिणाम होकर आँखों के सामने अंधेरा छाने लगता है (तिमिरदर्शनम्)। मज्जाक्षय के कारण शुक्र को पोषक अंश की योग्य प्राप्ति न होने के कारण अल्पशुक्रता यह लक्षण दिखाई देता है।

मज्जाक्षय में दुग्ध, घृत, बादाम, अभ्रकभस्म, शंखपुष्पी आदि के उपयोग से उत्तम लाभ होता है।

अर्वाचीन पूरक विषयांश

मज्जाधातु का 'अस्थि-पूरण' कार्य समझकर Bone Marrow के विषय में और मस्तिष्क मज्जाप्रधान अवयव है यह समझकर Nervous Tissue के विषय में अध्ययन किया जा रहा है।

Bone marrow

Bone marrow means myeloid Tissue. Bone marrow is the cellulovascular tissue occupying the medullary cavities and the cancellous spaces of the bone. The value of the marrow is 70 ml at birth and about 4000 ml in the adult. In the adult only Red bone marrow is in an active state, while yellow bone marrow remains inactive.

1) Red Bone marrow

R. B. C. s are manufactured here, hence the colour. In foetal life, most of the bones contain Red bone marrow. But in postnatal life the red bone marrow is only located in the upper ends of humerus and femur, the bones of skull and thorax, the vertebrae and the innominate bones of the pelvis.

2) Yellow Bone marrow

is composed of fat cells and is found in the marrow cavity of long bones.

Functions of Bone marrow

1) Haemapoietic function

All the blood cells like erythrocytes, Granulocytes, platelets, monocytes and Lymphocytes are formed in the red bone marrow.

2) Destruction of RBC

Abnormal, imperfect, damaged and aged R.B.C are destroyed.

3) Reticulo - endothelial function

Bone marrow is important in the inactivations of toxins or other toxic substances of the body.

4) Storage functions

Marrow is the site for storage of Iron in the form of ferritin and of haemosiderin, coming from food source as transferrin.

5) Osteogenic Function

The osteoclast, osteoblast, osteocyte, the cellular elements which take part in the formation of bone are formed in the marrow.

6) Connective tissue functions

Marrow performs several functions, associated with the connective tissue.

7) Immunological function

Many scientists reported the presence of lymph nodules, (which are related with immunology) in the bone marrow.

Nervous Tissue

Nervous tissue is a highly specialised tissue for reception, discharge of stimuli and transmission. It is made up of nerve cells and their processes, called the nerve fibres. Receptive processes are known as dendrons or Dendrites. Discharging process is known as axon. A nerve cells body or perikaryon with all its processes is called a Neurone.

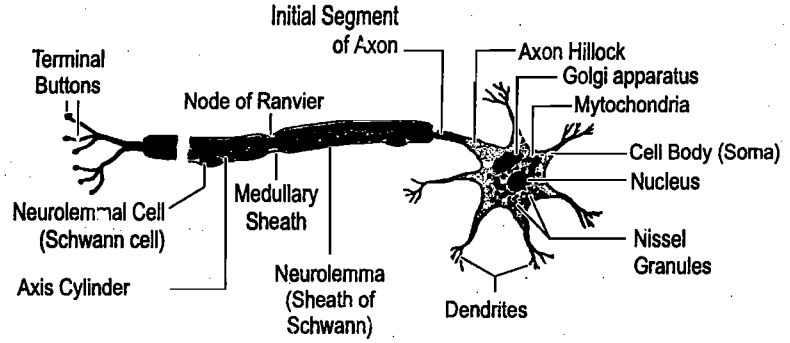

A neurone with all its processes & formation of a medullated nerve fibre.

Types of nerve fibres

1) Medullated 2) Non - medullated.

Physiology of Nerve Impulse

1) The Nerve impulse is the body's quickest way of controlling and maintaining Homeostasis.

2) The membrane of a non conducting neuron is positive outside and negative inside, owing to the permeability property of the membrane towards Na^+ ions, K^+ ions, charged proteins. Even when a nerve cell is not conducting an impulse, it is actively transporting ions across its membrane. Na^+ ions are actively transported out and K^+ ions are actively transported in. The membrane system by which Na^+ and K^+ ions are actively transported simultaneously is called the "Sodium - potassium Pump."

3) **Excitability -** The ability of nerve cells is to respond to stimuli and convert them into nerve impulses is called excitability.

4) **A Stimulus -** is any condition in the environment capable of altering the resting membrane potential.

5) **Depolarization -** When a stimulus causes the inside of a cell membrane to become positive and the outside negative, the membrane is said to have an action potential, which travel from point to point along the membranes. The travelling action potential is nerve impulse.

6) **Repolarization -** Repolarization of the resting membrane potential is called Repolarization.

7) **Absolute refractory Period -** The period of time during which the membrane recovers and can not initiate another action potential is called Absolute refractory Period.

8) **Synapse -** Nerve impulse conduction can occur from one Neuron to another or from a Neuron to an effector. The junction between neurons is called a synapse.

9) **Neurotransmitters**

a) Neurotransmitter that causes excitation in a major portion of the central nervous system is Acetyl choline (Ach) . An enzyme called acetyl choline esterase (AChE) inactivates ACh.

b) Neurotransmitters that are probably inhibitory are gamma aminobutyric acid (GABA) and glycine.

10) **Regeneration of nerve cells**

a) Around 6 months of age, the Neuronal cell body loses its mitotic apparatus and is no longer able to divide

b) Nerve fibres (axis cylinders) that have a Neurolemma are capable of regeneration.

प्रकरण ९

नवनिर्मिती के लिए शुक्रधातु

"Last and Best' इस प्रकार जिसका वर्णन किया जा सकता है, वह सातवे क्रमांक का, प्रसादभूत (सर्वाधिक उत्तम) धातु है।

धारण कर्म की दृष्टी से सर्वाधिक योग्य धातु है । शीर्यमाण शरीर को पुनरुत्पादन कार्य के द्वारा बनाए रखने वाला यह शरीर धातु है। प्राकृत शुक्र पर ही मनुष्य की कार्यशक्ति, वजन, बृंहण आदि निर्भर होते हैं।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

१) शुच् धातु को (शुद्धता), रक् प्रत्यय लगकर शुक्र शद्ध बनता है, अर्थात जो अत्यंत शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ है।

२) शुक्ल = मलरहित, विमल, स्वच्छ इस अर्थ से गुणवाचक, वर्णवाचक।

३) शुक्लयति त्यजति, शुक्लः रजतम्, शुक्लम् वीर्यम्।

४) अक्षय, निर्मल = सुवर्ण को अग्निसंस्कारित करने से जिस प्रकार मल उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार शुक्र में अग्निसंस्कार के पश्चात मल उत्पन्न नहीं होता।

५) मज्जाधातु से पोषकांश मिलते हैं, अतः मज्जसमुद्भव।

६) आनन्दप्रभव (शरीरसंबंध के पश्चात आनंद की अनुभूति)।

७) किट्टविवर्जित।

८) पुंसत्व।

९) ओज।

१०) वीर्यम् = सामर्थ्य, वीरत्व निर्माण के लिए जो समर्थ है, शुक्र की अन्य धातुओं से पृथक् स्वरुप की महत्वपूर्ण कार्यशक्ति।

११) रेतस् - री गतिरंषणयोः = रियते गच्छति शरीराद् बहिः मैथुनकाले इति रेतसः = मैथुन करने पर जो शरीर से बाहर जाता है।

१२) धातुस्नेह, धातुसार।

१३) पौरुषम् = पुरुष में उपस्थित, पुरुष यह जातीय लक्षण (पुरुषत्व का प्रतीक)।

१४) तेजः - 'तिज्' धातु तेजयति अनेन, जिसके कारण मनुष्य तेजस्वी, पराक्रमी, तीक्ष्णबुद्धि बनता है। मनुष्य की कार्यशक्ति इसके द्वारा सूचित होती है। गर्भोत्पादन का अतिमहत्वपूर्ण कार्य इस धातु पर निर्भर होता है।

१५) बीज - बीजयति बीज्यते वा अनेन।

नूतन निर्मिती, पुनरुत्पादन सामर्थ्य जिसमें है, वह धातु।

- **अमरकोश में वर्णित पर्यायी शब्द** – तेज, रेतस्, बीज, वीर्य, इंद्रिय।

२) शुक्र – स्थान

१) **अधिष्ठान**

- **कृत्स्नदेहाश्रितम् शुक्रम्।** ... सु.शा.४/२३
- **सप्तमी शुक्रधरा नाम (कला) या सर्व प्राणिनां सर्वशरीरव्यापिनी।**

यथा पयसि सर्पिः तु गूढः च इक्षौ रसो यथा।

शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्यात् भिषग्वरः॥ ... सु.शा.४/२०, २१

समस्त शरीर में शुक्रधातु का अस्तित्व होता है; किस प्रकार ?

दृष्टान्त

१) दूध में सर्वत्र घृत फैला हुआ होता है।

२) गन्ने में रस जिस प्रकार गूढ प्रकार से उपस्थित होता है।

समान्यतः वृषण - मेढ्र मार्ग के द्वारा पोष्य शुक्र शरीर से बाहर निकलकर गर्भधारणा का कार्य करता है, यह सर्वज्ञात है। तथापि 'सर्व देहाश्रित शुक्र' यह संकल्पना कुछ भिन्न दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है । शुक्र पुनरुत्पादन कार्य से संबंधित है । शरीर में अणुपरमाणु स्तर पर Cellular Reproduction कार्य चलता रहता है। यह कार्य शुक्र के द्वारा सम्पन्न होता है । सार्वदेहिक शुक्र तथा वृषण में निर्मिती होकर मेढ्र के द्वारा बाहर निकलनेवाला शुक्र ये दोनों एक ही जाति (प्रकार) के हैं, जो परस्पर संबंधित होते हैं। इसी लिए 'वंध्यत्व' (Sterility, Infertility) ग्रस्त रुग्णों में स्थानिक शुक्र परीक्षण की पद्धति के साथही (उदा.- Semen Eaxmination) सार्वदेहिक, अर्थात अन्य धातुओं के संदर्भ में परीक्षण भी निश्चितही सहायक होते हैं।

'शुक्रधातु सर्वदेहानुगामी है' यह निम्न सूत्र के द्वारा भी स्पष्ट होता है।

अंगात् अंगात् संभवसि हृदयात् अभिजायते।

आत्मा वै पुत्रनामासि स जीवं शरदां शतम्॥

अर्थ – हे पुत्र, मेरे अंग-अंग से तुम्हारी उत्पत्ति हुई है। मेरे हृदय से तुम्हारा जन्म हुआ है। 'पुत्र' इस नामाभिधान के साथ तुम मेरे आत्मा ही हो। आशीर्वाद है कि, तुम शतायु, दीर्घायु बनो।

च. शा. ४/७ इस संदर्भ के अनुसार, शुक्र शरीर का बीजरुप धातु है।

चक्रदत्त कहते है -

सर्वत्रानुगतं देहे शुक्रम् ...।

२) शुक्रवह स्त्रोतस

शुक्र धातु की उत्त्पत्ति, परीणमन, वहन, किट्ट भाग का उत्सर्जन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अ) शुक्रवहानां स्त्रोतसां वृषणौ मूलं शेफः च। ... च.वि.५/८

ब) शुक्रवहे द्वे (स्त्रोतांसी) तयोः मूलं स्तनौ वृषणौ च। ... सु.शा.९/१२

क) वीर्यवाहिसिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ। ... शा.१/५/४६

मेढ्र, वृषण, बस्ति तथा वृषण संबंधित वीर्यवाही सिराएं ये महत्वपूर्ण अवयव, शुक्रवह स्त्रोतस से संबंधित होते हैं। शार्ङ्गधर ने वृषण को शुक्राशय कहकर उसका शुक्र उत्त्पत्ति, धारण, वहन के साथ संबंध स्पष्ट किया है। वृषण को शुक्रवह स्त्रोतस का मूलस्थान बताया है।

शल्यतंत्र में उल्लेख

फलयोः शुक्रहरणी स्त्रोतसी

इस पर आघात होने से क्लीबता, वंध्यत्व निर्माण होते हैं। शेफ अथवा मेढ्र यह अवयव शुक्रच्युती से संबंधित है। स्त्रीयों में शुक्र (आर्तव) अभिव्यक्ति होने के उपरान्त स्तनवृद्धि यह जात व्यंजन लक्षणों में से एक है। स्तन का उपलक्षण स्वरुप में उरः प्रदेश यह अर्थ मानने पर उरः प्रदेश के स्थान में होनेवाली लोमराजी शुक्रअभिव्यक्ति, पौरुषत्व का एक लक्षण मानी जाती है।

शुक्रवह धमनी

द्वे, शुक्र प्रादुर्भाव के लिए दोनों वृषणों से संबंधित दो धमनियाँ (Two Ejaculatory Ducts - ?)

शुक्रवह सिरा

वेगावस्था में लिंग की स्तब्धता एवं उत्थान सिरा में रक्तपूर्णत्व के कारण प्रतीत होते हैं। काम आवेग के कारण मेढ्रगत सिराओं का प्रसरण (विस्फारण) होता है, जिससे अधिक रक्तपूरण होता है। कामवेग के अभाव में सिराएं संकुचित होकर लिंग शैथिल्य उत्पन्न होता है।

३) शुक्रधातु – स्वरुप, संघटन

सर्व इदम् पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे।

इस न्याय के अनुसार यद्यपि शुक्रधातु पांचभौतिक होता है, तथापि सोमगुण प्राधान्य होने के कारण सौम्य स्वरुप का है। शुक्र कफवर्गीय द्रव्य है, कफ का आश्रयी स्थान है। शुक्र, अनुमान प्रमाण के द्वारा, मधुर तथा मधुगंधी होता है।

४) शुक्र प्रकार

१) पोष्य, पोषक ऐसे दो प्रकार का शुक्र।

२) पुरुष एवं स्त्री शरीर में उपस्थित शुक्र। स्त्री देह भी ससधात्वात्मक होता है। अर्थात स्त्री शरीर में भी शुक्र उपस्थित होता है, जिसके द्वारा शुक्र के सार्वदेहिक कार्य सम्पन्न होते हैं। साथही शुक्र विसर्ग के लिए हर्ष, तर्ष आदि मनोभाव पुरुषों के समान ही स्त्रीयों में भी समागम के समय होते हैं, किन्तु गर्भोत्पादन के लिए आर्तव जिम्मेदार होता है।

स्त्रीणां शुक्रं न गर्भाय भवेद् गर्भाय च आर्तवम्।

५) शुक्र – परिणमन

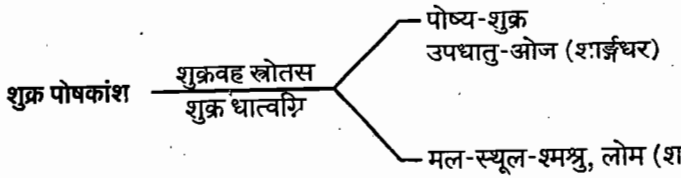

क्रमपरिणमन न्याय के अनुसार, मज्जा धातु के द्वारा शुक्र को पोषकांश प्राप्त होते हैं। उन पर धात्वग्नि की क्रिया होकर पोष्य शुक्र की निर्मिती होती है। खलेकपोत न्याय के अनुसार कुछ द्रव्य केवल शुक्रधातु का ही पोषण करते हैं। (उदा. - पयः सद्यशुक्रकरः।) शुक्र पोषण करनेवाले द्रव्यों के निम्न तीन प्रकार होते हैं।

१) प्राधान्य से शुक्र की उत्पत्ति - दुग्ध, घृत, गोधूम।

२) प्राधान्य से शुक्रच्युती में सहायता - अश्वगंधा, आत्मगुप्ता।

३) शुक्रउत्पत्ति तथा च्युती में सहायता - उडद, बस्तांड।

मज्जा के द्वारा पोषकांश – एक भिन्न विचार

वृषण का पर्यायी नाम फल (अण्ड) है। फल के अंतर्गत भाग को मज्जा कहते है और उसमें बीजांकुर सुप्त स्वरुप में होते हैं। 'वृषण ग्रंथी की मज्जा' ऐसा अर्थ करने पर, वृषण को शुक्राशय कहकर उससे शुक्र निर्मिती प्रत्यक्षतः स्पष्ट की जा सकती है। साथही मज्जा का एक विशिष्ट प्रकार 'मस्तुलुंग' (शिरः कपालांतर्गत मज्जा)। प्रहर्षण के लिए संकल्प, स्मरण ये भावविशेष, मस्तिष्कस्थित मन के साथ ही संबंधित होते हैं।

शुक्रउत्पत्ति एवं कार्यअभिव्यक्ति

जन्मतः मनुष्य देह सप्तधात्वात्मक होता है। अतः जन्म के समय ही शुक्र धातु की उत्पत्ति होती है, किन्तु शुक्र के कार्य की अभिव्यक्ति तारुण्यावस्था में होती है।

१) **एवं बालानाम् अपि वयः परिणामात् शुक्रप्रादुर्भावो भवति। ... सु.सू.१४/१८**

२) **यथा हि पुष्कमुकुलस्थो गंधः न शक्यम् इह अस्ति इति वक्तुं न एव वा नास्ति इति अथ च अस्ति सतां भावानां अभिव्यक्तीः इति कृत्वा, केवल सौक्ष्म्यात् न अभिव्यज्यते स एव विवृतपत्रकेशरे पुष्पे कालान्तरेण अभिव्यक्तिं गच्छति। एवं बालानाम् अपि वयः परिणामात् शुक्रप्रादुर्भावो भवति, रोमराज्यादयः च विशेषा नारीणाम्। ... सु.सू.१४/१८**

शुक्र कार्यअभिव्यक्ति के समय उत्पन्न लक्षणों को जातव्यंजन लक्षण कहते है, जैसे - बाह्य तथा आंतर जननेंद्रियों की वृद्धि होती है, दाढी-मूँछ उत्पन्न होते हैं, सभी धातु पूर्णत्वावस्था में होने के कारण बल वर्धित होता है, कामवासना निर्माण होती है।

शुक्रच्युती – प्रक्रिया

वस्तुतः कोई भी धातु शरीर में रहकर ही शरीर धारण का कार्य करता है। इस नियम को एकही अपवाद है - गर्भोत्पादन कार्य सम्पन्न करने के लिए शुक्रच्युती होती है।

द्वौ अंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य च अपि अधः।
मूत्रस्रोतः पथात् शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते॥
कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्न मनसः तथाः।
स्त्रीषु व्यायच्छतः च अपि हर्षात् तत् संप्रवर्तते॥ ... सु.शा.४/२२, २३

निर्गमन मार्ग, क्षरण अथवा च्युती मार्ग - पोष्य शुक्र वृषण, मेढ्र के द्वारा बाहर निकलता है। बस्तिद्वार के ऊपर २ अंगुल, दक्षिण (Right) भाग में यह मार्ग होता है। (संपूर्ण शरीर → मेढ्र)

शुक्रच्युती निमित्त कारण

१) **रस इक्षौ यथा दध्नि सर्पिः तैलं तिले यथा।**
सर्व अनुगतं देहे शुक्रं संस्पर्शने तथा॥
तत् स्त्री पुरुष संयोगे चेष्टासंकल्प पीडनात्।
शुक्रं प्रच्यवते स्थानात् जलम् आर्द्रात् पटात् इव॥
... च.चि.२ पाद ४/४६, ४७

२) **विशस्तेषु अपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते।**
सर्वदेहे आश्रितत्वात् च शुक्रलक्षणम् उच्यते॥
तत् एक च इष्ट युवतेः दर्शनात् स्मरणात् अपि॥
शब्दसंश्रवणात् स्पर्शात् संहर्षात् च प्रवर्तते।
सुप्रसन्नं मनसः तत्र हर्षणे हेतुः उच्यते॥ ... सु.नि.१०/१९-२१

शुक्रच्युति के निमित्त कारण

अ) कामोद्रेक ब) स्त्रीसंग क) प्रसन्नमनत्व

यह प्रक्रिया संक्षेपतः कुछ इस प्रकार है।

१) प्रसन्न मन पुरुष में रतिप्रसंग के दौरान कामोद्रेक के कारण।

२) शरीर स्थित शुक्रपोषक भाग अणुपरमाणुओं से पृथक् होते हैं।

३) वृषण तक पहुँते हैं। उन पर धात्वाग्नि संस्कार होकर पोष्य शुक्र की निर्मिती होती है।

४) यह पोष्य शुक्र मूत्रपथ के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है।

शास्त्रीय मीमांसा – संदर्भ – सु. शा. ३ / ४

१) संभोग के दौरान - संघर्षण क्रिया होती है।

२) शरीर में उष्णता की निर्मिती होती है - तेज महाभूत का अधिक्य।

३) उष्णता + वायु परस्पर संसृष्ट होते हैं।

४) शरीरस्थ शुक्र पर परिणाम होता है।

५) पोष्य शुक्र का मेढ्र के द्वारा च्यवन होता है।

शुक्रोत्पत्ति तथा शुक्रविसर्जन करनेवाली २-२ धमनियाँ होती हैं। (सु.शा.) धमनियों का कार्य वायु के कारण होता है।

शुक्रनिर्मिती के संदर्भ में दृष्टांत

चरकाचार्य ने ग्रहणी चिकित्सा अध्याय में दृष्टांत (उपमा) प्रमाण के द्वारा शुक्रनिर्मिती स्पष्ट की है। नवीन कुंभ में जल भरने पर जिस प्रकार वह छिद्र से बाहर निकलता है, उसी प्रकार मज्जा के अंतर्भाग में परिणत हुआ शुक्र उसमें से बाहर निकलता है।

स्रोतोभिः स्यंदते देहात् समन्तात् शुक्रवाहिभि हर्षेण उदीरितं वेगात् संकल्पात् च मनोभवात्॥ विलीनं घृतवद्व्यायाम् उष्माणा स्थानविच्युतम्। बस्तौ संभृत्य निर्याति स्थलात् निम्नात् इव उदकम्॥ ... च.चि.१५/३४-३५

शुक्रनिर्मिती – स्निग्ध, शीत गुण का संबंध महत्वपूर्ण

शुक्र कफसदृश गुण का होने के कारण अतिउष्ण गुण का संपर्क शुक्र निर्मिती में बाधाकर होता है, जैसे - ट्रक ड्रायव्हर, भट्टी के समीप काम करनेवाले कामगार इन व्यक्ति में अतिउष्णता के संपर्क के कारण Oligozoospermia अथवा Azoospermia मुख्यतः दिखाई देता है। साथही प्रत्यक्ष निसर्ग ने भी संरक्षण योजना की है। जन्म के समय तक Testis Abdominal Cavity में स्थित होती हैं, अर्थात नाभी अथवा पित्तस्थान के (उष्णता के) समीप होती हैं। तथापि, जन्म के समय Testis को Scrotum में लाया जाता है। Undescended Testis (Cryptorchidism) यह विकृति है।

शुक्रधातु के व्यापार तथा दोषसंबंध

शुक्र के गुण कफदोष से साधर्म्य दिखाते हैं। सार्वदेहिक शुक्रधराकला के व्यापार व्यानवायु के नियंत्रण में होते हैं। सभी धातुओं के स्तर पर होनेवाली नवीन परमाणुओं की उत्त्पत्ति व्यानवायु से प्राप्त पोषकांश पर निर्भर है। सर्व शरीरव्याप्त शुक्र के द्वारा प्रीति, धैर्य, शौर्य, बल, उत्साह ये कार्य व्यानवायु सम्पन्न करता है। उचित समय तक शुक्र का धारण तथा उचित समय पर च्युती ये कार्य अपान वायु के नियंत्रण से होते हैं। शुक्रधातु के प्राकृत व्यापार से व्यान, अपान का संबंध होने के कारण, विकृति से भी संबंध होता ही है।

शुक्रदोष प्रमेहांस्तु व्यान अपान प्रकोपजान्। ... सु.नि.१/२०

६) शुक्र – परिणमन काल

शीर्यते तत् शरीरम्।

इस न्याय से शुक्र धातु का पोषण,

संतत्या भोज्य धातुनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत्।

इस प्रकार अनवरत चलता रहता है। अष्टांग हृदयकार के अनुसार आहाररस की उत्त्पत्ति के उपरान्त सातवे दिन और सुश्रुत के अनुसार एक मास में पोष्य शुक्र धातु की निर्मिती होती है।

१) **केचित् आहुः अहोरात्रात् षड्हात अपरे परे।**
मासेन याति शुक्रत्त्वम् अन्नं पाकक्रमादिभिः॥ ... अ.हृ.शा.३/६५, ६६

२) **स एवं मासेन रसः शुक्रिभवति स्त्रीणां च आर्तवम्।** ... सु.सू.१४/१४

७) शुक्र – गुण

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च।
शुक्रम् इच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्र निभं तथा॥ ... सु.शा.२/११

विभिन्न ग्रंथकारों ने शुक्रधातु के गुण, स्वरुप का वर्णन निम्न प्रकार से किया है।

चरक – स्निग्ध, घन, पिच्छिल, गुरु, स्फटिकवत् शुभ्र, आमगंध विरहित, मधुर रस।

सुश्रुत – तैल सदृश, मधु के समान द्रव, पीताभ-ताम्रवर्णीय, मधुररस।

वाग्भट – सौम्य, स्निग्ध, तैल-घृत-मधु सदृश पिच्छिल, गुरु, शुक्लवर्ण, मधुवर्ण, मधुर रस।

- **सर्वसम्मत गुण** – स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, मधुर।

उपरोक्त गुणधर्मों में प्रत्येक ग्रंथकार के अनुसार कुछ अंतर दिखाई देता है, जो प्रत्यक्ष व्यावहारिक अनुभव में भी प्रतीत होता है। व्यवहार में भी प्रयोगशाला में Semen examination में Normal Semen के ३ - ४ Samples में भी उसके रंग, स्वरुप तथा Fructose Test, Liquification Test में विविधता दिखाई देती है।

गुणों का अधिक स्पष्टीकरण

१) मनुष्य शरीर से क्षरीत शुक्र निम्न गुणों से युक्त होता है। बहल (घन, गाढा, घनद्रव), विरल द्रव (जलाभ) ये दोनों प्रकार प्राकृत है।
किन्तु तनुता अथवा फेनिलता ये दोष हैं। साथही घनता बढकर ग्रंथीभूत स्वरुप प्राप्त होने पर शुक्राश्मरी व्याधि होने की संभावना होती है।

२) **मधुर रस** – इसके कारण गर्भोत्पादक बीज का उत्तम पोषण होता है।

३) **अविस्त्रम** (दुर्गन्धरहित)। आयुर्वेद ने पूतिपूयनिभ, कुणपगंधी, मुत्रपुरीषगंधी इन सभी को शुक्रदोष माना है।

४) शुक्र को मधुगंधी स्वरुप का विशिष्ट गंध होता है।

५) **शुक्लम् –** श्वेतवर्णी। यह शुक्र का प्राकृतिक वर्ण है। अन्य धातुदुष्टी अथवा संसर्ग के कारण शुक को अरुण, पीत, नील, रक्त आदि वर्ण प्राप्त होते हैं। शुक्र का शुक्ल वर्ण भी निर्मल, स्वच्छ होता है। इसी लिए स्फटिकाभ (स्फटिक पत्थर के समान) श्वेत बताया है अथवा घृताभ श्वेत। प्रकृति के अनुसार भी वर्ण में बदलाव दिखाई देता है, जैसे तैलाभ अथवा क्षौद्रनिभ वर्ण को भी शुद्ध वर्ण माना गया है।

६) **स्पर्शतः –** सरम् - द्रवम्। शुक्र जलीय द्रव्य है, अतः सर। इस गुण के कारण पुरुष बीज का योनिद्वार से गर्भाशय में प्रवेश होकर स्त्रीबीज से अल्पावधी में संयोग हो सकता है। स्वाभाविक द्रव गुण के विरोधी स्थिर गुण अथवा घनत्व प्राप्त होने पर शुक्र का अप्रसेक, ग्रंथीभूत शुक्र, शुक्राश्मरी आदि विकृतियां निर्माण होती हैं। शुक्र जलाभ द्रव नहीं है, किन्तु मधु, तैल, घृत सदृश विशिष्ट घनयुक्त द्रव, अतः बहल शुद्ध।

७) **पिच्छिल –** शुक्र का विशिष्ट गुण है - तन्तुलता अथवा गोंद के समान चिपचिपापन। शुक्र सांद्र होने पर ही पिच्छिल होता है, जलांश बढने पर तनुता स्वरुप की विकृति, विशदता उत्पन्न होती है। तन्तुमयता अथवा संसक्ती गुण कम होता है, जो दोष है।

८) **स्निग्धम् –** स्फटिकाभ अर्थात चमक, जो स्नेहांश सूचित करती है। जलीय द्रव्य में स्नेहगुण निसर्गतः ही होता है। इससे पार्थिव कणों को परस्पर संलग्न कर पिण्डिभाव निर्माण होता है। इस गुण के अभाव में शुक्र में रुक्षता दोष उत्पन्न होता है।

९) **गुरु –** शुक्र की गुरुता, पार्थिवतत्व प्रतीत करती है। गुरुद्रव्य निम्नगामित्व स्वभावी होता है। चरक संहिता में शुक्रप्रसेक के लिए यह गुण आवश्यक होने का निर्देश किया है। तनुता बढने पर गुरुता कम होती है।

१०) **बहु –** इस शब्द के द्वारा प्रमाण सूचित होता है। शुक्रच्युती के समय अधिक मात्रा में शुक्र बाहर निकलना अपेक्षित होता है। अल्पता शब्द शुक्रक्षय सूचित करता है। चरक संहिता में शुक्रराशी १/२ अंजली बताई गई है।

११) **अविदाही –** शुक्रच्युती के दौरान लिंगमार्ग अथवा योनीमार्ग में दाह उत्पन्न नहीं होना चाहिए। विदाही यह लक्षण पैत्तिक दोष है। (दहल्लिंग विनिर्याति।) शोथ, पूयोत्पत्ति, व्रणभाव, अधिक अम्ल, क्षार तथा उष्णता के कारण यह दोष निर्माण होता है।

१२) **अणु प्रवणभाव** सूक्ष्म स्त्रोतस में प्रवेश करने की योग्यता, कृत्स्न शरीर में व्याप्त।

१३) **फलवत् अथवा गर्भाय –** कर्मानुमेय गुण, गर्भोत्पाद रुप। कर्म स्वभावसिद्ध सामर्थ्य सूचित करता है। पूर्वोक्त सर्वगुणयुक्त शुक्र में फलप्रदता अर्थात् बीजगुणसंपन्नता, गर्भप्रद होने का सामर्थ्य प्राप्त होता ही है, परंतु क्वचित उपरोक्त गुणों के अभाव में भी गर्भोत्पादनक्षमता हो सकती है। शुक्र बीजभूत है। मनुष्यदेह के सभी अंगप्रत्यंगों के, सभी के बीजभूत अर्थात सूक्ष्मांश उस शुक्र में होते ही है और इसी कारण से साधर्म्ययुक्त तद्-तद् प्रत्यंग के समान प्रत्यंग अगली पीढी में निर्माण होते हैं। बीजरुप शुक्रधातु की कल्पना से ही निम्न प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं।

१) मनुष्य से मनुष्य ही किस प्रकार निर्माण होता है ?

२) अपत्य माता-पिता के समान अंगरुप युक्त किस प्रकार निर्माण होते है ?

३) निर्मित गर्भ सप्तधात्वात्मक किस प्रकार होता है ?

(शुक्र में बीजीरुप से तथा सूक्ष्मांश से सातों धातु उपस्थित होते हैं।)

इन सभी प्रश्नों के उत्तर सत्कार्यवाद सिद्धांत की सहायता से मिलते हैं।

शुद्ध शुक्र लक्षण ⟺ प्राकृत गर्भ निर्मिती

८) शुक्र – प्रमाण

अर्ध अंजली शुक्रस्य ॥ ... च.शा.७/१५

किन्तु सुश्रुत के अनुसार,

दोषधातुमलानां परिमाणं न विद्यते।

९) शुक्र – कार्य

१) सभी धातुप्रकारों का सामान्य कार्य है - धृ - धारयति, आयुष्य का धारण करना।

२) **गर्भोत्पादन अथवा बीजार्थ –** यह शुक्रधातु का श्रेष्ठ कार्य है।

- **गर्भोत्पादः (श्रेष्ठं कर्म शुक्रस्य)।** ... अ.हृ.सू.११/४
- **स्त्रीणां शुक्रं न गर्भाय भवेद गर्भाय च आर्तवम्।** ... सु.सू.१४/१४

३) **शुक्र के अन्य कार्य**

शुक्रं धैर्यं च्यवनं प्रीतिं देहबलम् हर्षबीजार्थम् च ॥ ... सु.सू.१५/५

कार्य का स्पष्टीकरण

१) मुख्य कर्म

गर्भोत्पत्ति अथवा बीजार्थ यह मुख्य कार्य है। बीजार्थ = बीज का अर्थ, उद्देश अथवा प्रयोजन। बीज अंकुरक्षम होना आवश्यक है। शुक्र के प्रसादअंश से गर्भ उत्पत्ति होती है। पुरुष बीज एवं स्त्रीबीज के संयोग से नवीन जीव की उत्पत्ति होती है, यह पोष्य शुक्रे का कार्य है। साथही समस्त शरीर में अणु-परमाणु स्तर पर होनेवाली नवनिर्मिति (Reproduction) के लिए भी शुक्रधातु ही जिम्मेदार होता है।

२) दूसरा कर्म

दूसरा कर्म है - हर्ष, ध्वजप्रहर्ष। यह कर्म देह एवं मन, दोनों से संबंधित होता है। गर्भोत्पत्ति के लिए शुक्रच्युती आवश्यक होती है और इसके लिए प्रहर्ष जरुरी है, अतः हर्ष पूरक अथवा सहायक कर्म है। शरीर पर रोमांच, मन में कामवेग, उत्साह निर्मिति होना इस प्रकार से भी हर्ष शद्ध के अर्थ वर्णित हैं।

३) देह बल

शुक्रोत्पत्ति का प्रभाव देह पर भी होता है। उपचय, वृद्धि, शक्ति, कर्मसामर्थ्य निर्माण होना इस स्वरुप में यह प्रभाव प्रतीत होता है। शरीर का आयाम, विस्तार, विकास, उपचय तथा बल, साहस, बलप्रदर्शन प्रवृत्ती इन सभी में वृद्धि होती है। शरीर में पुष्टी, बल वर्धित होकर पच्चीस वर्ष की आयु में पूर्णतः वृद्धि होती है। इसीको समत्वागत वीर्य अथवा संपूर्णता कहते है।

४) धैर्य

यह मुख्यतः मनोगुण है, परंतु देह तथा मन दोनों ही दृष्टि से इस संदर्भ का विचार करना आवश्यक है, जैसे - आपत्ती का सामना करना, कष्ट सहने का सामर्थ्य, प्रतिकूल परिस्थिती, शारीरीक श्रम, कष्ट, रोगपीडा, क्षुधा, तृष्ण। आदि सहना साथही मानसिक श्रम, काम, भय, शोक आदि वेगों के विषय में स्थिर रहकर धैर्यपूर्वक उनका सामना करना। नपुंसक व्यक्ति अधिक अधीर अथवा भययुक्त दिखते हैं और इसका कारण है - उनमें होनेवाला शुक्र का अभाव।

५) प्रीति

स्त्रीयों के प्रति आकर्षण, कार्मुकता। स्त्री तथा पुरुष एकदूसरे के प्रति कामभावना से प्रवृत्त होने पर गर्भोत्पादन कार्य सफल होता है। नपुंसक में 'नारी प्रति प्रीति' इस लक्षण का अभाव होता है।

६) च्यवनम्

आयु परिणाम के अनुसार, शुक्र उत्पत्ति, संचय जिस प्रकार स्वाभाविक है, उसी प्रकार विजातीय आकर्षण भी स्वाभाविक है। कामजन्म हर्ष के कारण संचित शुक्र का च्यवन, पतन स्वाभाविक ही है, क्यों कि उसमें द्रवत्व, सरत्व होने के कारण निम्नगामित्व, प्रवणभाव ये गुण निसर्गतःही होते हैं। च्यवन का अर्थ है - स्वस्थान से चलित होना, पतन होना।

उपरोक्त कार्यों में से क्रमांक १ तथा ६ ये क्षरीत शुक्र के कर्म हैं और २, ३, ४, ५ ये कार्य सर्वदेह व्यापक अव्यक्त शुक्र के हैं।

शुक्र - ओज - व्याधिक्षमत्व

शरीर के व्याधिक्षमत्व के लिए जिम्मेदार ओज तथा शुक्र का निकटस्थ संबंध होता है। प्रत्येक धातुस्तर पर धात्वाग्नि के संस्कार होते हुए, अत्यंत प्रसादरुप शुक्र धातु निर्माण होता है, जो शरीर का श्रेष्ठ सार होता है, अतः उसका नित्य रक्षण करना चाहिए।

शरीरस्य परं धामं शुक्र तत् रक्षेत आत्मानः।
क्षयो हि अस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति॥ ... च.चि.६/१०

शुक्र धातु का महत्व

सप्त धातुओं में अंतिम धातु। शुद्ध सुवर्ण के समान मल विरहित होता है। विशेषतः पुनरुत्पादन, गर्भोत्पादन क्षमता, पौरुषसूचक, अन्य गुण, उदा.- धैर्य आदि गुण शुक्र धातु के कारण ही प्राप्त होते हैं। इसके अभाव में 'पुरुषाकृतीभूयिष्ठं अपुरुषाम्' अर्थात केवल पुरुष के आकृति समान किन्तु पौरुषत्व के अन्य गुण विरहित मनुष्य निर्माण होता है (तृणपूलिक = अशुक्र, षंढ) और शुक्र अल्पत्व के कारण क्लैब्य (सशुक्र - षंढ) उत्पन्न होता है।

शुक्र की प्राकृतावस्था पर ही ओज निर्मिती निर्भर होती है। उत्तम ओज के कारण ही व्याधि प्रतिकार क्षमता उत्तम रहकर दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। अतः शुक्र धातुच्युती का नियंत्रण अर्थात ब्रह्मचर्य आवश्यक है। आयुर्वेद ने आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य इन तीन घटकों को जीवन का आधार अर्थात त्रयोपस्तंभ माना है। (यहाँ 'ब्रह्मचर्य' इस संज्ञा से योग्य काल में, योग्य मात्रा में तथा योग्य प्रकार से होनेवाली शुक्रच्युती अपेक्षित है - Controlled and Disciplined Sex)

१०) शुक्र सारता

शुक्र की गुणवत्ता का विनिश्चय करने के लिए शुक्र-कफ साधर्म्य समझकर मुख्यतः शरीर रचना तथा क्रिया का विचार करना आवश्यक है।

१) रचनात्मक परीक्षण

अ) सभी अवयवों में स्थिरता (सुदृढ, बलवान)। शारीरिक-मानसिक स्तर पर सौम्यता

ब) दंत - शुभ्र, मजबूज, सीधी रेषा में।

क) नेत्र - क्षीरपूर्णलोचन इव - दुग्धसदृश, स्निग्ध तथा आर्द्रतायुक्त नेत्र।

ड) कटिप्रदेश का बृहत् मापन।

२) क्रियात्मक परीक्षण

अ) प्राकृत गर्भोत्पादन।

ब) भारी एवं मधुर स्वर।

१) सोम्याः सौम्यप्रशेक्षिणः च क्षीरपूर्णलोचना इव प्रहर्षबहूलाः स्निग्ध वृत्त सार सम संहतशिखरदशनाः प्रसन्न स्निग्ध वर्णस्वराः भ्राजिष्णवो महास्फिचः च शुक्रसाराः। ते स्त्रीप्रियोपभोगाः बलवंतः सुखऐश्वर्य आरोग्य वित्त संमान अपत्यभाजः च भवन्ति॥ ... च.वि.८/१०९

२) स्निग्ध-संहत-श्वेत अस्थिदंत नखं बहुलकामप्रजं शुक्रेण।... सु.सू.३५/१६

शुक्र धातु के सार परीक्षण की पद्धति

१) लडका तथा लडकी ने 'यौवनावस्था' योग्य आयु में प्राप्त की या नहीं ?

अ) हाँ - (शुक्र बलवान)

ब) नहीं - (शुक्र दुर्बल)

२) लडका तथा लडकी के 'तारुण्यावस्था में प्रवेश करने के' समय दिखाई देनेवाले शारीरिक तथा मानसिक लक्षण प्राकृत (Normal) थे या नहीं ?

अ) हाँ - (शुक्र बलवान)

ब) नहीं - (शुक्र दुर्बल)

३) सर्वसाधारणतः शारीरिक तथा मानसिक बल उत्तम है या नहीं ?

अ) हाँ - (शुक्र बलवान)

ब) नहीं - (शुक्र दुर्बल)

४) संतती नियमन के साधनों का उपयोग किए बिना, विवाहोत्तर योग्य काल में संतती हुई है ?

अ) हाँ - (शुक्र बलवान)

ब) नहीं - (शुक्र दुर्बल)

५) संभोग सामर्थ्य प्राकृत (Normal) है ?

अ) हाँ - (शुक्र बलवान)

ब) नहीं - (शुक्र दुर्बल)

शुक्र घटक दुर्बल होने पर निम्न उपद्रव अथवा व्याधि पुनः-पुनः निर्माण हो सकते हैं

१) संभोग क्षमता में कमी।

२) संतती न होना।

३) गर्भस्त्राव तथा गर्भपात बार-बार होना।

४) शारीरिक एवं मानसिक व्याधिप्रतिकारशक्ति कम होने के कारण बार-बार व्याधिनिर्मिती।

शुक्र घटक दुर्बल होने पर उपयुक्त टॉनिक

१) दूध, घृत २) मधुमालिनी वसंत ३) च्यवनप्राश

४) मकरध्वज वटी ५) वंगभस्म ६) कवच बीज

७) आस्कंध चूर्ण (अश्वगंधारिष्ट)

११) शुक्र - उपधातु

स्तन्यं रजः च नारीणां ओजः च सप्तमम्।
इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तउपधातवः॥ ... शा.१/५/१६, १७

प्रसाद, किट्ट प्रकारों में से, शुक्र से प्रसादांश अर्थात ओज निर्माण होता है। कुछ आचार्य ओज को उपधातु और गर्भोत्पादक बीज को प्रसादांश मानते हैं।

शार्ङ्गधर के आढमल्ल इस टीकाकार ने शुक्र के उपधातु स्वरुप में ओज की निर्मिती बताई है और वाग्भटाचार्य ने कहा है - शुक्र का मल ही ओज है।

'ओज' का विस्तारपूर्वक विवेचन 'व्याधिक्षमत्व' विषय के संदर्भ में स्वतंत्र रुप से किया है।

१२) शुक्र - मल

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु ।

न शुक्रे पच्यमाने अपि हेमानि इव अक्षये मलः ॥ ... सु.सू.१४/१०

शुक्र में मल की उत्पत्ति नहीं होती । वह सुवर्ण के समान निर्मल, मलरहित होता है । सुश्रुत टीकाकार डल्हण कहते है, सहस्त्रआध्मात शुक्र के सदृश ओज है। शुक्र पर सहस्त्रदा अग्निसंस्कार हुआ होता है । अनेक बार अग्निसंस्कार के कारण मलभाग शेष नहीं रहता । अतः शुक्र में मल की उपस्थिति नहीं होती, अर्थात ओज शुक्र का मल नहीं है ।

परंतु शार्ङ्गधर ने श्मश्रु, लोम, यौवनपीटिका (पिडका) को शुक्रमल कहा है।

आकृष्ट अंडकोषस्य पुंसः श्मश्रुपातात् श्मश्रु शुक्रमलः इति एके ।

तत् च श्मश्रुहीनस्य अपि शुक्रदर्शनात् । ... सु.सू.१४/१०

अंडकोष निकालने पर श्मश्रु पतन क्वचित प्रत्यक्षतः दिखाई देता है । साथही छाती पर केश की उपस्थिति को पौरुषत्व का प्रतीक समझा जाता है ।

शुक्र विकृति

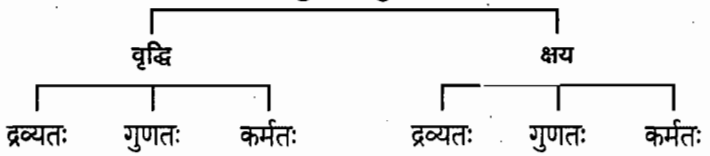

१३) शुक्र - वृद्धि

अति स्त्री कामतां वृद्धं शुक्राश्मरीम् अपि ॥ ... अ.हृ.सू.११/१२

१) अति स्त्रीसंबंध तथा मैथुनेच्छा (Excessive Sex Stimulation) निर्माण होती है, ऐसी अवस्था में कफकर पदार्थों का अतिसेवन कम करना चाहिए।

उदा.- मधुर, स्निग्ध पदार्थों का अति सेवन आदि ।

२) अश्मरी = कंकड, किसी भी प्रकार के अवरोध (शुक्रच्युती संदर्भ में) के लिए रुक्षण, लेखन स्वरुप की चिकित्सा अपेक्षित है ।

१४) शुक्र - क्षय

१) **शुक्रेचिरात् प्रसिच्येत् शुक्रं शोणितम् एव वा ।** ... अ.हृ.सू.१/२०

२) **दौर्बल्य मुखशोषः च पाण्डुत्वं सदनं भ्रमः ।**

क्लैब्यं शुक्र अविसर्गः च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम् ॥ ... च.सू.१७/६९

३) **शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदना अशक्तिः मैथुने चिरात् वा प्रसेकः प्रसेके च अल्परक्तशुक्रदर्शनम् ॥** ... सु.सू.१५/९

शुक्रविसर्ग के दौरान चिरात् (देर से) शुक्र सिंचन अथवा क्वचित रक्तप्रवृत्ती होना, धातुक्षयजन्य वातप्रकोप के कारण स्थानिक तथा सार्वदेहिक वेदना होती है । मैथुन शक्ति कम होती है (क्लैब्य - Impotency), कफक्षय के कारण दुर्बलता, मुखशुष्कता आदि लक्षण निर्माण होते हैं ।

इनमें वाजीकर स्वरुप के बल्य, कफकर उपचार लाभदायक होते हैं, जैसे - अभ्यंग, पुष्टीकर - संतर्पणात्मक आहार, दुग्ध, घृत, अश्वगंधा, कवचबीज, उडद, गोधूम, त्रिवंगभस्म, मकरध्वज वटी, अश्वगंधा + कवचबीज सिद्ध दुग्ध आदि आहार, औषधि के सेवन से शुक्रक्षय दूर होता है ।

शुक्रधातु से संलग्न अर्वाचीन पूरक विषयांश

Spermatozoa

Spermatozoon is a special cell having total length of about 60 mm. The mature Spermatozoon is divided into head and tail. The tail is again subdivided into neck, middle piece or body, main piece and end piece.

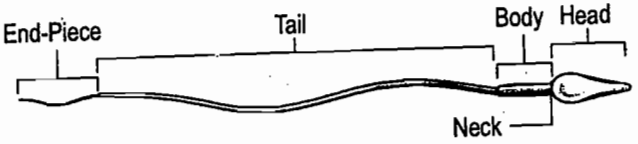

Spermatozoa

The head

The head of human spermatozoon is oval on surface view and pear shaped on side view. It is elastic and measures about 4 to 5 mm in length, 2.5 to 3.5 mm in diameter.

Middle piece or body

It is cylindrical in form. It has length of 5 to 7 mm and the thickness is 1 mm. It extends from a slender connecting piece

immediately behind the posterior pole of the head to a ring - like structure called as annulus or terminal ring.

Main piece

It is about 45 mm long and about 1 / 2 mm thick at the base, gradually tapering towards end piece.

End piece of the tail (Flagellum)

It consists of terminal portion of axial filament and is about 5 mm long.

Spermatogenesis

Definition

Spermatogenesis is the process of formation of spermatozoa including spermatocytogenesis and spermiogenesis.

The spermatocytogenesis is the first stage of formation of spermatozoa in which spermatogonia develops into spermatocyte and then into spermatid. Spermiogenesis is that stage in which spermatids are transformed into spermatozoa.

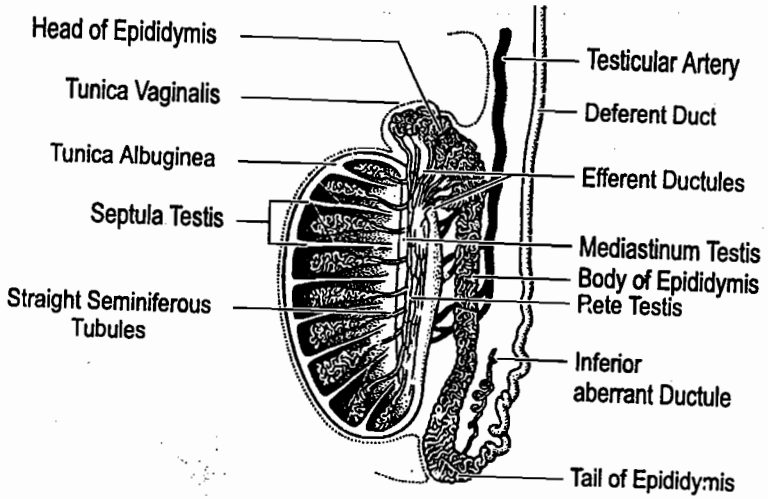

Vertical section through the testis and epididymis.

Stages of Spermatogenesis

Spermatogonia → Primary spermatocyte → secondary spermatocyte → Spermatid - spermatozoon.

In man this process begins during adolescence. On an average the maturation process takes place about 74 days from a primitive germ cell to a mature sperm.

Site of Spermatogenesis

Seminiferous tubules, which are long, convoluted structures about 150 to 200 mm in diameter and 30 to 70 cm in length and are the main bulk of the testis. There are several hundreds of them in each testis. The tubule is surrounded by a thin basement membrane, where lies a compound epithelium composed of supporting cells and spermatogenetic or germ cells. Each supporting cell (cell of Sertoli) extends from basement membrane to the lumen. Between the Sertoli lie spermatogenetic cells in a series of development ie.- Spermatogenesis.

Control of Spermatogenesis

The following factors regulate the process of Spermatogenesis

1) FSH and LH of anterior pituitary glands.
2) Temperature - Process of Spermatogenesis takes place at a temperature, which is considerably lower than that of body.

   Normal position of testes in scrotum help for this lowered need of temperature.
3) Vitamin E, A, ascorbic acid and several members of vit. B complex.
4) Thyroid gland.
5) Adrenal cortex.

6) Testosterone - secreted from interstitial cells of testis also has regulatory control on Spermatogenesis.

7) Spermatogenesis is inhibited by deep X - Ray, radium and alcoholism.

Fate of spermatozoa

After the entry of spermatozoon into the vagina, it travels at the rate of about 1 - 3 mm / min. and takes about 45 min. to pass from opening of cervix to the ovarian end of fallopian tube.

After travelling the body of uterus the gametes enters into fallopian tubes, where if the ovum is present fertilization takes place. If there is absence of ovum, spermatozoa die, degenerated and disapper generally after 72 hrs.

Metabolism of spermatozoa

When the spermatozoa are present inside the epididymis, they are metabolically inactive due to absence of O_2 and sugar to be metabolised. After ejaculation they normally metabolise. Fructose which helps in the regeneration of the ATP. For maximum mobility of sperm, both fructose and O_2 are needed.

Fertilization of the ovum

During the process of removal of the corona radiata, a large number of spermatozoa die and only the strongest reaches up to the ovum. This sperm enters the zona pellucida of the ovum by side to side jerky movements. Then the sperm looses its head cap, which contains an enzyme, which depolarises the zona pellucida in a very restricted zone. As soon as the spermatozoon enters the ovum, a stiff membrane develops around the ovum, preventing the entry of any other spermatozoon. The head and probably a part of the neck of the sperm enter the ovum. The rest of the gamete drops out and

degenerates. Fusion of the male and the female pronuclei takes place, which acts as a powerful stimulus for multiplication. The fertilised ovum starts multiplying with a tremendous speed. So the mass of cells, thus formed (morula) is carried slowly along the fallopian tube by the ciliary movement of it's epithelium and reaches the body of the uterus in about 8 days. At this time it has a diameter of about 0.2 mm. The fertilised ovum is embedded in the already prepared decidua and pregnancy starts.

Semen (Seminal plasma or fluid)

Semen is a suspension of spermatozoa in the secretion of the epididymis, prostate, seminal vesicles, Cowper's glands. Volume of each emission is about 2 to 4 ml., containing 100 to 200 million spermatozoa, 80 % of which should remain actively motile for 45 min. but not later than 3 hrs.

Semen should not contain more than 20 % abnormal forms. About 50 % of male contain 20 to 40 million sperms per ml. of semen. Semen having sperms lower than 20 million / ml. is called as Oligozoospermia. Absence of sperm in the semen is called as Azoospermia. Semen contains fructose, sorbitol, spermine acid, phosphatase, lipids and prostaglandins. It's specific gravity is 1.028 and PH is 7.35 to 7.50. Seminal buffers (phosphate and bicarbonate) serve to protect the sperms against low PH of the vagina. It's colour is highly viscid opalescent grayish white. Prostaglandins help in the movement of spermatozoa to the fallopian tube through uterus.

Human semen after ejaculation coagulates immediately due to conversion of fibrinogen into fibrin. But after 15 to 20 min., there is liquifaction by the enzyme fibrinolysin.

प्रकरण १०

ओज - सर्व धातुसार

सभी धातुओं का सार, तेजोभूत भाग, विशुद्ध, प्रसन्न गुणवान भावपदार्थ ओज कहलाता है। शरीर बल, व्याधिप्रतिकारक्षमता उत्तम रखने की दृष्टि से ओज का महत्त्व निर्विवाद है। ओज कल्पना आयुर्वेद का वैशिष्ट्य है।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

ओज क्या है ?

ओजस्तु तेजो धातुंना शुक्रान्तानां परं स्मृतम्॥ ... वा.सू.११

रस से शुक्र तक सभी सातों धातुओं का ओज यह श्रेष्ठ सार है। सेवन किए अन्न पर प्रथम जाठराग्नि के और धातुस्तर पर प्रत्येक धात्वग्नि के संस्कार होते हैं, जिससे प्रत्येक स्थान में मालिन्य दूर होते हुए, शुक्र धातु तप्त सुवर्ण के समान निर्मल स्वरुप में निर्माण होता है। दूध के प्रत्येक बिंदू में जिस प्रकार घृत का अंश होता है, उसी प्रकार शुक्र के प्रत्येक बिंदू में ओज का अंश होता है।

तस्तात् रसादि धातुस्नेहपरंपराहेतुकः स्नेहः शुक्रं।
शुक्रस्नेहात् क्षीरस्थघृतम् इव अभिन्नम् ओजः शुक्रेण॥ ... सु.सू.१५

पर्याय

१) ओज का संबध मुख्यतः शारीरिक एवं मानसिक बल से होता है. अतः बल यह पर्याय बताया गया है।

रसादीनां शुक्रान्तांना धातुनां यत् परं तेजः, तत् खलु ओजः, तदेव बलम् इति उच्यते सर्वशास्त्रसिद्धान्तात्॥ ... सु.सू.१५

२) जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी, अनिवार्य, आधारभूत; अतः प्राणायतन। जीवन का श्रेष्ठ आधार; अतः धारि, महत् ये पर्याय।

३) पर्याय - सर्व धातुसार, सार, स्थिरांश, स्नेहः, प्रसादः, रसः, जीवशोणितम्, श्लेष्मा, दीप्ती, कांती।

४) आयुर्वेद संहिताकारों ने तथा टीकाकारों ने विभिन्न अर्थ से ओज का उल्लेख किया है, जैसे -

अ) च. सू. - महत्, धारि, सर्व धातु स्नेह। (चक्रपाणी)

ब) च. सू. - उत्कृष्ट सार, घृतवत् स्थिरधातु, बल। (डल्हण)

क) चरक - रसः, प्राकृत श्लेष्मा।

ड) सुश्रुत - परमतेज, अ. सं. - शुक्रसार, अ. हृ. - शुक्रमल।

ई) डल्हण - भारादि हरण शक्ति, उपचय स्वरूप शक्ति, जीवशोणितम्।

२) ओज - स्थान

शरीर के सभी धातुओं, अवयवों, इंद्रियों में ओज का स्थान होता है। चरकाचार्य के अनुसार, ओजोवह धमनियों के द्वारा रसात्मक ओज अपने मुख्य अधिष्ठान, हृदय से निकलकर सर्व शरीर को व्याप्त करता है। पर (श्रेष्ठ) ओज हृदय में और अपर ओज धमनीयां तथा सर्वदेह व्याप्त, सभी शेष धातुओं में होता है। इसमें भी श्लेष्मा, रस, शुक्र एवं सोमात्मक, द्रवांशयुक्त रक्तादि सभी द्रव्यों में ओज का अस्तित्त्व प्राधान्य से दिखाई देता है।

हृदयस्थम् अपि व्यापि देहस्थितिनिबंधनम्। ... अ.हृ.सू.११/३७-४१

शुक्र के प्रत्येक बिंदू में ओज का अस्तित्व होता है और शुक्रधराकला सर्व शरीर व्याप्त है, यह सर्वश्रुत है। प्रत्येक धातु का सारभाग अर्थात ओज होने के कारण प्रत्येक धातु शुक्र का स्थान है ही।

३) ओज - संघटन

ओज

'द्रव्य' स्वरूप में विचार — 'शक्ति' अथवा 'बल' स्वरूप में विचार

सर्वम इदम् पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे।

इस न्याय से ओज का संघटन पांचभौतिक है ही, किन्तु प्राधान्य से वह सोमात्मक है। ओज सौम्य द्रव्य है। चरकाचार्य ने प्राकृत श्लेष्मा से ओज की तुलना की है। ओज कफ के सदृश प्रसन्न, शुद्ध, स्वच्छ, शुक्ल, ईषत रक्त पीत वर्णयुक्त, घृत के सदृश श्वेताभ पीतवर्ण, मधु सदृश मधुररस, लाजासदृश गंध युक्त है। सुश्रुताचार्य ने उसे सोमात्मक, आप्य अथवा श्लेष्मवर्ग का द्रव्य कहा है। उन्होंने चरकोक्त गुणों में सर तथा विविक्त गुणों का भी समावेश किया है। डल्हणाचार्य कहते है कि ओज स्थिर, शरीर अवयवों को स्थिर,

दृढ अथवा स्थायी बनानेवाला है, सर, प्रसरणशील अर्थात सभी अवयवों को व्याप्त करनेवाला, विविक्त गुणों में श्रेष्ठ है।

संक्षेपतः, विशिष्ट रस, गंध, वर्ण, स्पर्श आदि गुण तथा विशिष्ट कर्म युक्त पदार्थ (द्रव्य) है, जैसे दूध के अणुरेणुओं में घृत, उसी प्रकार शरीर के अणुरेणुओं में ओज व्याप्त होता है। यद्यपि ओज सर्व धातुओं का तेज है, तथापि वह तैजस द्रव्य नहीं। सभी धातुओं का प्राणद द्रव्य है। ओज संघटन में सप्त धातुओं के महत्त्वपूर्ण अंश होते हैं।

कुछ अभ्यासक ओज को शक्ति स्वरुप मानते हैं। 'शक्ति' दृष्य स्वरुप में प्रत्येक बार प्रतीत नहीं होती। ओज को ही 'बल' भी कहा जाता है। बल का अर्थ है - व्याधिक्षमत्व। बल शक्तिस्वरुप है, इसी लिए 'धारि' यह ओज का पर्यायी शद्ध है। जीवन का धारण करता है, उसे नष्ट होने नहीं देता, क्षरण प्रक्रिया से बचाव करता है।

वस्तुतः शक्ति स्वरुप में (अद्रव्यभूत) इसे अलग प्रकार मानना अनुचित होगा। 'ओज' को शक्तिस्वरुप कहते हुए, इस शक्ति के पीछे आधारभूत द्रव्य होना ही चाहिए।

४) ओज प्रकार

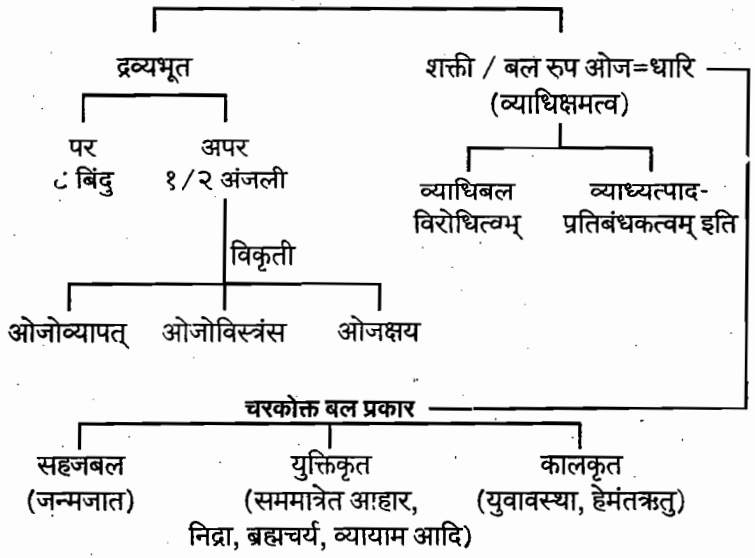

छात्रों के लिए उपदेश

ओज के प्रकार का अध्ययन करने के लिए केवल निम्न ग्रंथोक्त संदर्भ का ही मुख्यतः आधार लेना उचित है।

द्विविधम् ओजः (दर्शयति) परम् अपरं च।

तत्र अंजलिपरिमाणम् अपरम्। ... च.सू.३०/७

५) ओज - परिणमन

भ्रमरैः फलपुष्पेभ्यो यथा संचीयते मधु।

तद्वत् ओजः शरीरेभ्यो गुणैः संभ्रियते नृणाम्॥

अत्र शरीरेभ्यः इति धातुभ्यः गुणैः इति सारभागैः॥ ... च.सू.१७ (चक्रपाणी)

१) सभी धातुओं के सारभाग से ओज की निर्मिती किस प्रकार होती है ?

चरकोक्त दृष्टान्त

जिस प्रकार मधुमक्खियां विभिन्न फल तथा फूलों का रस जमा कर, शहद निर्माण करती हैं, उसी प्रकार ओज के लिए स्वतंत्र स्त्रोतस, कला अथवा अग्नि नहीं होते। सप्तधातुओं से उसकी परिणति होती है। ओज सप्तधातुओं का तेजोभूत अंश है। देहाग्नि ओज का उत्पादक कारण है। दही पर मंथनस्वरुप अग्निसंस्कार करने से असार, किट्ट पदार्थ नष्ट होते हैं, किन्तु घृत यह सार द्रव्य नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार, धात्वग्नि की क्रिया होने पर भी स्थिर रहनेवाला घटक है - ओज, अतः तेज, प्रभा ये पर्याय। अन्न भी ओज का उत्पादक कारण है, क्यों कि देह की पुष्टी, कांती, बल ये सभी अन्न पर ही निर्भर होते हैं। ओज ७ धातुओं की अपेक्षा पृथक्त्व से उपस्थित होने का उल्लेख नहीं मिलता (अभिन्न)। क्षीर अथवा मांस में जिस प्रकार घृत, वसा आदि स्नेह एकरूप हो जाते हैं उसी प्रकार, धातुओं में ओज। धातुस्वरुपी ओज ही अपर ओज है।

२) शुक्र से ओज की परिणति

शुक्रपोषक अंश का शुकाग्नि के द्वारा पचन होकर स्थायी शुक्र तथा सूक्ष्म तेजोभूत ओज निर्माण होते हैं (डल्हण)। ओज शुक्रधातु का उपधातु है (शार्ङ्गधर)। ओज का शुक्र मल के स्वरुप में भी उल्लेख किया गया है (अ. हृ.)। तथापि शुक्र का ओज से निकट संबध इससे निश्चित रुप से स्पष्ट होता है।

शुक्रात गर्भः प्रसादजः। ... च.चि.१५/१६

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार, पुरुष शरीर में उपस्थित शुक्र और स्त्री शरीर में उपस्थित आर्तव (स्त्री बीज) इन सर्वोत्तम सार पदार्थों का एकत्रीकरण होकर, चैतन्याविष्कार के पश्चात, अग्निसंस्कार के द्वारा पचन (परिवर्तन) का प्रारंभ होता है और इस परिणमन *प्रक्रिया में 'सार' स्वरूप में गर्भ की और 'मल' स्वरूप में ओज की निर्मिती होती है। गर्भ की*

दृष्टी से पर ओज यह मल है किन्तु रसादि धातुओं की तुलना में यह शुक्र शोणित से निर्मित होने के कारण सार द्रव्य ही है। शुक्र-शोणित मिलन के पचन व्यापार में उसका निर्माण होने के कारण शास्त्रीय परिभाषा में गर्भ को सार तथा ओज को किट्ट (मल) कहा गया है। पर ओज गर्भ में जन्म से ही प्राप्त (जन्मजात), वृद्धि-क्षय न होनेवाला और मृत्यु तक टिके रहने वाला होता है। 'पर अथवा अष्टबिंद्वात्मक ओज में' अल्प क्षय होने पर भी मृत्यु हो सकती है।

यस्य नाशात्तु नाशो अस्ति धारि यद् हृदयाश्रितम्॥ ... च.सू.३०

६) ओज - परिणमन काल

१) सप्तधातुओं का तेजोभूत अंश ही ओज है, इस संकल्पना के अनुसार प्रत्येक धातु की पोषण क्रिया में, ओज की भी निर्मिती होती है। ओज की उत्पत्ति अनवरत होती रहती है।

२) शुक्र का सार ही ओज है, इस मत के अनुसार, अर्थात आहाररसोत्पत्ति से लेकर १ मास में ओज, शुक्र से परिणत होता है।

३) प्रारंभ से ही, अर्थात गर्भ में ही ओज की उत्पत्ति होती है।
तथापि ओज का सुनिश्चित परिणत काल, ग्रंथों में अलग से वर्णित नहीं।

७) ओज के गुण

ओज विष एवं मद्य के विरोधी गुण का है।

चरकोक्त ओज के १० गुण

गुरू शीतं मृदु श्लक्ष्णं बहलं मधुरं स्थिरम्।
प्रसन्न पिच्छिलं स्निग्धम् ओजो दशगुणं स्मृतम्॥ ... च.चि.२४/३१

सुश्रुत ने भी ओज के गुण बताए हैं

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणामतनम् उत्तमम्॥ ... सु.सू.१५/२६

चरक - सुश्रुतोक्त गुणों की तुलनात्मक तालिका

	गुण	चरकोक्त	सुश्रुतोक्त
१	स्पर्श	शीत, मृदु, श्लक्ष्ण, स्निग्ध, पिच्छिल	स्निग्ध, शीत, मृदु, मृत्स्न
२	रुप	प्रसन्न (स्वच्छ) ईषत् रक्त, ईषत् पीत, शुक्ल	शुक्ल
३	रस	मधुर	-----
४	गंध	लाजागंध	-----
५	अन्य	सोमात्मक	सोमात्मक, प्राणायतन स्थिर (सर्व अवयवों को स्थिरता देनेवाला), सर (सर्व अवयव व्याप्त), विविक्त (प्रत्यग्र - ताजा) - गर्म, ताजे अन्नपान सेवन से ओज उत्पत्ति अथवा वृद्धि।

८) ओज - प्रमाण

१) हृदय में स्थित पर अर्थात श्रेष्ठ ओज का प्रमाण अष्ट बिंदू है। इसका नाश होने पर मृत्यु हो सकती है।

२) रस के साथ, सर्व शरीर में संचार कर देहप्रीणन करनेवाला, धातुओं को बल प्रदान करनेवाला, कनिष्ठ, अप्रधान ओज ही अपर ओज है। चरक तथा चक्रदत्त ने इसीको श्लेष्मा अथवा श्लैष्मिक ओज कहा है। इसका प्रमाण अर्धांजली होता है।

९) ओज - कार्य

१) **बल - ओज का प्रधान कर्म**

बलप्राप्ती से क्या होता है ?

तत्र बलेन स्थिरोपचितमांसता, सर्वचेष्टासु अप्रतिघातः, स्वरवर्णप्रसादः, बाह्यानाम् आभ्यंतराणाम् च करणानां आत्मकार्यप्रतिपत्तिर्भवति॥

... सु.सू.१५/२४

१) स्थिर, उपचित स्वरूप में मांसादि धातुओं की वृद्धि।

२) कायिक, वाचिक, मानसिक सभी प्रकार की चेष्टाएं अथवा कार्य अप्रतिहत स्वरूप से चिरकाल चलते रहते हैं।

३) स्वर तथा वर्ण उत्तम रहते हैं।

४) बाह्य कर्मेंद्रिय, आंतर ज्ञानेंद्रिय तथा मन के कार्य सम्यक होते हैं।

५) शरीर-इंद्रिय-मन-आत्मा इनका संयोग बने रहने के लिए ओज ही कारण होता है।

बल के कारण ही व्यायाम, क्लेश, कष्ट, क्षुधा, तृष्णा, आतप आदि सहने की शक्ति प्राप्त होती है। यही कार्य मांसधातु का भी है।

२) हृदयस्थम् अपि देहस्थिती निबंधनम्॥ ... अ.हृ.सू.११/३७-४१

देहस्थिति – शरीर बनाए रखने की प्रक्रिया।

आहाररस से लेकर शुक्र तक धातुओं की उत्पत्ति, इंद्रियोत्पत्ति आदि ओज पर निर्भर होते हैं। साथही मन की प्रसन्नता, संतोष ये ओज के ही कर्म हैं। शरीर की व्याधिप्रतिकारक्षमता भी ओज पर ही निर्भर होती है। ओज क्षीण होने पर मनुष्यदेह नष्ट हो जाता है।

३) प्राणायतन

प्राण अथवा जीवनशक्ति को आधार देने का काम ओज करता है, अतः धारि यह नाम। ओज नाश होने पर प्राणनाश होता है, यही कार्य रक्त का भी है।

४) ओज वृद्धि के फायदे

आजोविवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयाः॥ ... वा.सू.११/४३

तुष्टि + पुष्टि = बल।

मानसिक स्वास्थ्य + शारीरिक स्वास्थ्य = व्याध्युत्पाद प्रतिबंध + व्याधिलबल विरोधित्व

५) प्रीणन

ओज के कारण सर्वदा ताजगी बनी रहती है। यही रस का भी कार्य है।

ओज के अनेक कार्य किसी-ना-किसी अन्य धातु के भी कार्य हैं, यह स्पष्ट होता है।

१०) ओज – महत्त्व

यत् नाशे नियतं नाशो, यस्मिन् तिष्ठति।

निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः।

ओजो विवृध्दौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयः॥ ... वा.सू.११/४३

पर ओज के कारण ही मनुष्य का जीवन और जीवन की सर्वांगीण स्वास्थ्यावस्था प्राकृत रहती है।

११) ओजोविकृति

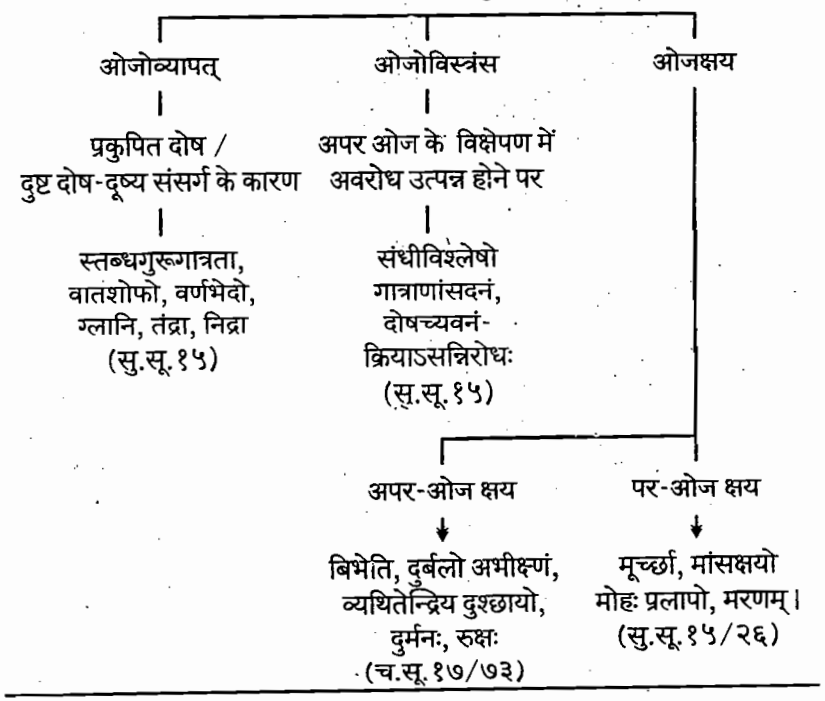

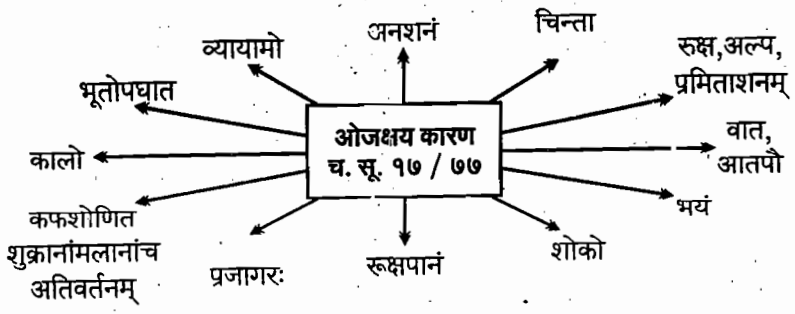

कुछ अभ्यासकों के अनुसार, एड्स व्याधि में, ओजोविकृति के कुछ लक्षण दिखाई देते हैं। एडस अथवा अन्य चिरकारी, दुःसाध्य व्याधियों में निम्न ओजोवर्धक चिकित्सा निश्चित फलदायी होती है, जैसे - योग, विपश्यना, दुग्ध, घृत, अभ्यंग, सुवर्णसिद्ध जल, अभ्रक, प्रवाल, मौक्तिक, शर्करा, अध्यात्मिक अनुष्ठान, ब्रह्मचर्य, स्वस्थवृत्त + सद्वृत्त का पालन।

१२) ओज क्या है ?

ओज के संदर्भ में जिन शरीर भावपदार्थों का विचार किया जा सकता है उनके विषय में अभ्यासकों ने निम्न घटकों का अथवा कार्यों का उल्लेख किया है। यह वर्णन केवल छात्रों की विचार शक्ति को चालना देने के लिए किया है।

१) ओजः - श्लेष्मा

Watery Substances, Serous Fluids, Protoplasm etc.

२) ओजः - रसः

Plasma, Lymph, Blood sugar, Prostaglandins.

३) ओजः - रक्तम्

Whole Blood, Cellular Protein, RBC.

४) ओजः - शुक्रसार

Internal secretions of testes and ovaries - Androgens and Oesteogene.

५) ओजः - उष्मा

Energy, Stamina, Vigour, Heat, All enzyme system of the body - Digestive to cellular.

६) ओजः - सर्वधातुसारः

Ant. pituitary hormones, Growth promoting hormones, Lactogenic hormone, Thyrotropic hormones.

७) ओजः - अन्नासार

Vitamins.

व्याधिक्षमत्व

विज्ञानयुग में, मनुष्य का आयुर्मान बढ गया है। किन्तु भाग-दौड के इस युग में, मानसिक तनाव भी बढ गया है, अयोग्य आहार-विहार, रहन-सहन, बढता हुआ वायु - अन्न - जल प्रदूषण, व्हिडिओ, टि. व्ही., सिनेमा में प्रदर्शित हिंसाचार, कामोद्रेक इनके कारण सांस्कृतिक प्रदूषण भी बढ रहा है। इन सभी के एकत्रित परिणाम स्वरूप मनुष्य की व्याधिप्रतिकारक्षमता कम होती जा रही है। स्वास्थ्य रक्षण में व्याधिक्षमता का महत्त्व शीर्षस्थ है। अतः आयुर्वेद का प्रथम उद्दिष्ट है - 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्' और साथही

व्याधिक्षमत्व बनाए रखने के लिए स्वस्थवृत्त के आचरण का उपदेश किया गया है। ५००० वर्ष पहले किया गया यह विवेचन आचार्यों की दूरदृष्टी प्रकट करता है। **'सद्वृत्त का लसीकरण (Vaccination) करने से एडस् जैसे व्याधियों का भय निश्चित ही दूर हो जाएगा।**

छात्र इस विषयांश के श्लोक शारीर क्रिया - श्लोकावली से मुखोद्गत करें।

व्याधिक्षमत्व (प्रकार)
संदर्भ - च.सू.२८/७

- व्याध्युत्पादप्रतिबंधकत्वम्
- व्याधिबलविरोधित्वम्

व्याधिक्षमत्व सम्यक होने पर रोगजंतुओं का शरीर में टिके रहना असंभव हो जाता है।

१) **अक्षेत्रे बीजम् उत्सृष्टम् - अन्तरेव विनश्यति।** ... मनुस्मृती

२) **अतृणे पतितो वन्हि - स्वयम् एव उपशाम्यति।** ... महाभारत

हानिकारक घटकों का शरीर के द्वारा जोरदार प्रतिरोध किया जाता है।

देहधातुप्रत्यनीकभूतानि द्रव्याणि देहधातुभिः विरोधम् आपद्यन्ते।

... च.सू.२६/८१

इस युद्ध में (रोगजंतु तथा शरीर बल) जो बलवान है, उसकी जय होती है।

विरुद्ध गुणसंनिपाते हि भूयसाल्पम् अवजीयते॥ ... च.वि.१/१४

कौनसा शरीर दुर्बल ?

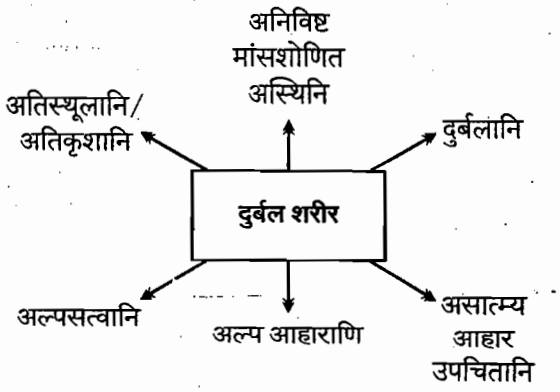

दुर्बल शरीर अव्याधिसह होता है। व्याधिसहत्व (प्रतिकारशक्ति) बढाने के लिए बलवृद्धिकर भावों का ज्ञान अत्यावश्यक है।

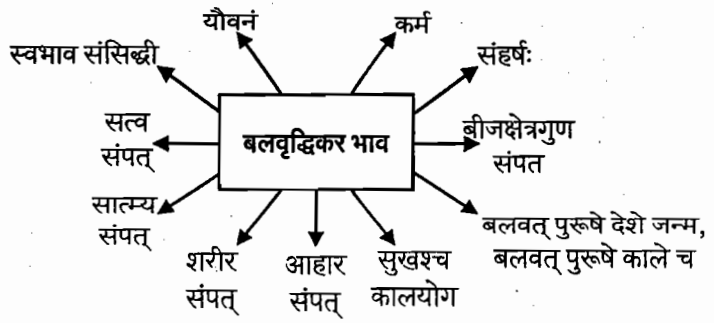

व्याधिक्षमत्व की दृष्टि से -

१) आनुवंशिकता

२) तारुण्य, हेमंत ऋतु आदि काल

३) उत्कृष्ट, परिपूर्ण, सर्व रसयुक्त आहार

४) शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य, आनंदपूर्वक रहने की प्रवृत्ती

ये सभी घटक महत्वपूर्ण हैं।

अर्वाचीन पूरक विषयांश

Immunity

Specific resistance to disease is called as Immunity. It involves the production of a specific type of cell or specific molecule (antibody) to destroy a particular antigen. The branch of science that deals with the responses of the body when challenged by antigens is referred to as Immunology. Immunology is a rapidly advancing science as a result of explosion of research in the field.

Antigens (AGS)

Chemical substances that when introduced into the body, stimulate the production of antibodies that react with the antigen, Examples - Microbes, pollen, incompatible blood cells and transplants.

Antibodies

Antibodies are proteins produced in response to antigens. They are of five principle classes - IgG, IgA, IgM, IgD, IgE.

Cellular immunity refers to destruction of antigens by T cells and humoral immunity refers to destruction of antigens by antibodies.

Lymphoid tissue contains primarily of lymphocytes, that may be distinguished into two kinds. T cells are responsible for cellular immunity. B cells develop into specialized cells (Plasma Cells) that produce antibodies and provide humoral immunity.

Aging and the immune system

With advancing age, individuals become more susceptible to infections and malignancies and response to vaccines is decreased.

Acquired Immune Deficiency Syndrome (AIDS) is a well-known example of Lowered Immunity.

Classification of Immunity

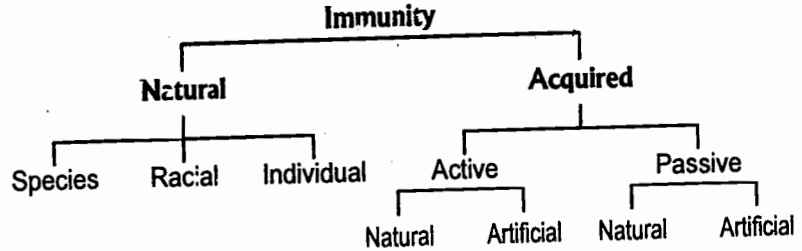

Examples

1) Species Immunity

Apart from man, other living organisms have the good immunity against Typhoid, Cholera. Rats are having good immunity for Diphtheria. Dogs and Horses for T. B. Mammals do not get the disease found in birds, fishes.

2) Racial Immunity

Nepalis are prone to get T. B. infection but Jues are resistant to it.

3) Individual Immunity

Person having 'Best Dhatu Sarata' possesses good immunity. Different tissues posses varied type of immunity e.g.- Gastric HCL destroys the various Helminths, bacteria. Skin resist to various bacteria.

Vit C boosts up immunity. Ayurvedic drugs like Shatavari (Asparagus Racemosus), Gulvel (Tinospora Cordifolia), Ashwagandha (Withania Somnifera) have been proved as a immuno modulators.

4) Acquired immunity

a) Active Immunity

i) Natural - Small pox and T. B. Bacteria when invade the body once in a lifetime, they may sometimes create acquired type of immunity (Anti Tetanus Toxoid).

ii) Artificial - When vaccines or Toxides are injected, some type of acquired immunity develops.

b) Passive immunity

i) Natural - From the mother to foetus, through breast milk.

ii) Artificial - Injections of serum.

प्रकरण ११

उपधातु

धातु स्तर पर पचन, परिणमन की प्रक्रिया के दौरान, पोष्य धातुओं के साथ उपधातुओं की भी निर्मिती अथवा पोषण होता है। धातुओं की अपेक्षा उपधातुओं का कार्य गौण स्वरूप का तथा मर्यादित काल तक ही सीमित होता है। ये उपधातु कौनसे हैं ?

रसात् स्तन्यो, ततो रक्तम् असृजः कंडराः सिराः।

मांसात् वसा त्वचाः षट् च मेदसः स्नायु संभवः॥ ... च.चि.१५/१७

	धातु	उपधातु	मल
१	रस	स्तन्य, रज	कफ
२	रक्त	सिरा, कंडरा	पित्त
३	मांस	वसा, षट्त्वचा	ख मल
४	मेद	संधि, स्नायु	स्वेद
५	अस्थि	दंत	नख, केश, लोम
६	मज्जा	-----	त्वचा, अक्षि, पुरीष, स्नेह
७	शुक्र	-----	ओज

धातु तथा उपधातु का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्न मुद्दे प्रायः स्पष्ट होते हैं।

१) धातुओं के द्वारा पर (अगले) धातुओं का पोषण किया जाता है, जैसे - रस के द्वारा रक्त का, रक्त के द्वारा मांस का आदि। इस प्रकार की गती उपधातुओं में नहीं दिखाई देती। धातु धारण एवं पोषण दोनों कार्य करते हैं। उपधातु केवल धारण करते हैं।

सिरास्नायुरजः स्तन्यत्वचो गतिविवर्जिताः।

धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्ते उपधातवः॥ ... च.चि.१५/१७

२) मनुष्य देह जन्मतः ही सप्तधात्वात्मक होता है। अर्थात धातुओं का कार्य, जन्म से मृत्यु तक अनवरत चलता रहता है। इसके विपरीत अधिकतर उपधातुओं का कार्य, विशिष्ट काल तक ही होता है। विशिष्ट आयु (यौवन) में अथवा अवस्था (गर्भिणी अवस्था) में उपधातुओं की वृद्धि होना आवश्यक होता है।

३) त्रिधा परिणमन के दौरान पोष्य धातुओं के साथ उपधातुओं का भी पोषण होता है, अतः धातुओं का समुचित पोषण न होने पर उपधातुओं का भी सम्यक् पोषण नहीं होता, जैसे - रसपोषण समुचित प्रकार से न होने पर उसका परिणाम स्तन्य, रज इन उपधातुओं की विकृति के स्वरुप में प्रतीत होता है।

४) धातुओं में बिगाड उत्पन्न होने पर अपेक्षाकृत अधिक गंभीर स्वरुप के व्याधि निर्माण होते हैं।

५) धातुओं की विकृति ठीक की जा सकती है, किन्तु उपधातुओं की हानी अत्यंत धीरे-धीरे भर आती है।

६) उपधातु शरीर के शल्यभूत हो सकते हैं, किन्तु धातु शल्यभूत नहीं होते।

७) धातु सदासर्वकाल शरीर में ही रहनेवाले घटक हैं (अपवाद शुक्रधातु) और स्तन्य, रज ये उपधातु अधिकतर शरीर के बाहर ही व्यक्त होते हैं।

८) सारांश - धातु मुख्य और उपधातु गौण होते हैं।

१) रस का उपधातु - स्तन्य

पोष्य रसधातु के पोषण के दौरान केवल विशिष्ट काल में स्त्री देह में उत्पन्न होने वाला स्तन्य यह उपधातु है।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

निरुक्ति - १) स्तनात् जातं स्तन्यम्। २) स्तने भवम् स्तन्यम्।

पर्याय - क्षीर, स्तन - क्षीराशय।

पर्याय - पयः, दुग्ध, सोमज, गोरस, ऊधस्य, पुंसवनम्।

२) स्थान

स्त्रीयों में २ - बहिर्मुख स्त्रोतस, स्तन्यवह स्त्रोतस।

३) स्वरुप, गुण

प्राकृत स्तन्य व ओज के गुण एकसमान ही हैं, जिनकी संख्या १० हैं। ये विष के गुणों के विपरीत स्वरुप के होते हैं।

गुण

१) **स्पर्श** - अनतिस्निग्ध, अपिच्छिल।

२) **रूप** - शुक्ल (शंखावभास), अच्छ तथा अविवर्ण।

३) **रस** - मधुर।

४) **अन्य गुण** - लघु, अनवसादि, अविदाही, अविस्र, द्रवधातु।

स्वरुप - रस धातु सौम्य होने के कारण उसका उपधातु स्तन्य भी सौम्य होता है।

शुद्ध स्तन्य (विशुद्ध स्तन्य) लक्षण

उपरोक्त गुणों की उपस्थिति के परिणामस्वरुप गर्भ या अपत्य का आरोग्य समुचित रहता है तथा उत्तम पोषण होता है। स्तन्य पानी में मिलाने पर दोनों शीघ्रतापूर्वक घुल-मिल जाते हैं। (अप्सु निमज्जन परीक्षा)

यदभ्दिरेकतां याति न च दोषैरधिष्ठितम्। तद्विशुद्धं पयः॥ ... वा.उ.२/२

दुष्ट स्तन्य (अष्टौ क्षीर दोषाः।)

फेनिल, लवण - कषाय रस युक्त, तनु (अत्यंत पतला), रुक्ष, विस्र गंधी, अतिपिच्छिल आदि। दुष्ट स्तन्य पानी पर या तो तैरता है अथवा डूबता है। स्तन्य का अप्सु (जल) परीक्षण इसी लिए महत्त्वपूर्ण होता है।

स्तन्य प्रमाण - २ अंजली ... वा.शा.३/८१

तथापि प्रत्येक स्त्री में प्रकृति, अवस्था के अनुसार विभिन्न प्रमाण हो सकता है।

४) स्तन्योत्पत्ति (परिणमन)

उत्पत्तिकाल

१) कौमार्यावस्था में स्तन्यवह स्त्रोतस तथा उनके मुख संवृत्त होते हैं।

२) जातव्यंजन अवस्था प्राप्त होने के पश्चात, शुक्रधातु पुष्ट होने के पश्चात योनि, गर्भाशय, स्तन आदि अवयवों की वृद्धि होती है और स्तन्यवह स्त्रोतस विवृत्त हो जाते हैं।

३) गर्भधारण एवं प्रसूति के पश्चात निसर्गतः ही स्तन्यवह स्त्रोतस अधिक विवृत्त हो जाते हैं।

तासाम् एव प्रजातानां गर्भिणीनां च ताः पुनः।

स्वभावत् एव विवृत्ता जायन्ते॥ ... सु.चि.१०/१७

४) **प्रत्यक्ष स्तन्योपत्ती किस काल में ?**

प्रसूति के परिणाम स्वरुप गर्भाशय की ओर होनेवाले स्त्रोतस वायु के कारण संकुचित हो जाते हैं। इसके परिणाम स्वरुप स्तन्यवह स्त्रोतस विस्तृत होकर तीसरे अथवा चौथे दिन समुचित प्रकार तथा मात्रा में स्तन्योत्पत्ति होकर स्तन्यप्रसव का प्रारंभ होता है।

सिराणां हृदयस्थानां विवृतत्वात्प्रसूतितः।
तृतीये ऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ॥ ... वा.उ.१/११

उपरोक्त शारीरिक अवस्था के साथही माता की मानसिक अनुकूलता तथा प्रसन्नता ये घटक भी स्तन्योत्पत्ति में परमावश्यक होते हैं।

आहाररसयोनित्वात् एवं स्तन्यम् अपि स्त्रियाः।
तदेव अपत्य संस्पर्शात् दर्शनात् स्मरणात् अपि ॥
ग्रहणात् च शरीरस्य शुक्रवत् संप्रवर्तते।
स्नेहो निरंतरस्तस्य प्रसवे हेतुरुच्यते ॥ ... सु.शा.१०/२०

अर्थात, स्तन्योत्पत्ति के लिए माता के अंतःकरण में वात्सल्य भी आवश्यक है।

५) **स्तन्योत्पत्ति के लिए प्राकृत रसधातु पोषण की आवश्यकता**

स्तन्य की निर्मिती रसधातु पोषण पर निर्भर होती है और रसधातु का पोषण प्राकृत आहाररस पर निर्भर होता है। दूध, घृत, शर्करा, सिद्ध जल, सिद्ध दुग्ध आदि द्रव, स्निग्ध स्वरुप आहार पर जाठराग्नि के संस्कार होकर, सारभूत रस, स्तन्यवह स्त्रोतस में पहुँचने पर उसका पचन होता है और स्तन्योत्पत्ति होती है।

अल्प स्तन्योत्पत्ति में दुग्ध, मेथिका, वट, उदु म्बर, पिप्पली आदि क्षीरीवृक्षों की छाल से सिद्ध दुग्ध, शतावरी कल्प, अनन्तमूल का चूर्ण - Tab Leptaden (Alarsin) आदि का उपयोग किया जाता है। तथापि यह उपचार देने से पहले सुनिश्चित करना जरुरी है कि रसधातु बिगाडनेवाले अन्य कारण; जैसे - लंघन (उपवास), शोक, क्रोध आदि; तो उपस्थित नहीं ?

६) **गति**

. स्तन्यवह स्त्रोतस यह बहिर्मुख स्त्रोतस है, अतः निर्मित स्तन्य की गति बहिर्मुख होती है। अप्रवर्तमान क्षीर के कारण, स्तनगौरव, वेदना, स्तन्यागमोत्थज्वर, स्तनकीलक, स्तनविद्रधि जैसे उपद्रव निर्माण होने की आशंका होती है। गर्भावस्था के अंत में अथवा प्रसूति के पश्चात तुरंत ही प्रवर्तमान घन दुग्ध को पीयूष कहा जाता है। पीयूष के पश्चात विशुद्ध क्षीर की उत्पत्ति होती है।

७) **स्तन्य कर्म**

अपत्य पोषण (नवजात शिशु का देहधारण व देहवर्धन) यह सर्वश्रेष्ठ कार्य है। बालक के 'आहार सेवन के अनुसार' तीन अवस्थाएँ स्पष्ट रुप से वर्णित हैं, जैसे - क्षीराद, क्षीरान्नाद तथा अन्नाद। सामान्यविशेष सिद्धांत के अनुसार स्तन्य के कारण कफ, ओज, रस, मांस, मेद, शुक्र आदि की मुख्यतः वृद्धि एवं पोषण होता है, वात - पित्त का शमन होता है। क्षीर 'मनस्कर' है अर्थात मन के गुण, तर्क, ध्यान, संकल्प तथा बुद्धि प्रसाद वर्धक है। स्तन्य बालक का सर्वांगीण पोषण करता है। जिस माता के बीज से शिशु का जन्म होता है, उसी माता के रस के द्वारा स्तन्य का पोषण होता है, अतः न्यूनतम एक वर्ष तक 'स्तन्य' ही सर्वाधिक सात्म्य होता है। इसी लिए चरकाचार्य कहते है,

तत् पुष्टिकरं आरोग्यकरं च इति ॥ ... च.शा.

स्तन्य के अन्य गुण भी है, जैसे -

जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः ॥ ... च.सू.१७/२८

आयुर्वेद की दृष्टि से गौरव की बात है कि, जागतिक आरोग्य संघटना (WHO) ने वाग्भटाचार्य के निम्न सूत्र का घोषवाक्य के स्वरुप में स्वीकार किया है -

मातुरेवं पिबेत् स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये ॥ ... वा.सू.१/१५

२) रस का उपधातु - रज

'रज' रस का उपधातु है एवञ्च 'आर्तव' भी स्त्रीविशिष्ट शरीरभाव है। ग्रंथों में 'रज' तथा 'आर्तव' शब्द अनेकानेक बार समान अर्थ से प्रयुक्त किए गए हैं। प्रत्येक श्लोक में 'रज' व 'आर्तव' का अर्थ संदर्भ के अनुसार जानना आवश्यक है। यहां पर संदर्भ के अनुसार 'रज' एवं 'आर्तव' इन दोनों घटकों का वर्णन किया जा रहा है। किन्तु चिरकालीन स्मरण की दृष्टी से रज तथा आर्तव का अर्थ निम्न प्रकार से जानना चाहिये ऐसा लेखक का मत है।

रज = मासिक रजःस्त्राव = Menstrual Discharge
आर्तव = स्त्रीबीज = Ovum

१) नाम, निरूक्ति, पर्याय

१) रज - शोणित, असृक्, लोहित।
२) आर्तव - पुष्पम्।

निरूक्ति

१) ऋतौ भवम् - आर्तवम्।

२) ऋतवे इदम् - आर्तवम्।

यहां ऋतु शब्द से शोतोष्णादि ऋतु ये अर्थ अभिप्रेत नहीं। वनस्पतियों में जिस प्रकार 'फल प्रसव योग्य काल' यह अर्थ जाना जाता है, उसी प्रकार जिस काल में संतान रूप फल उत्पन्न होने की संभावना होती है वह ऋतु कहलाता है। यह काल सूचित करने वाला घटक है - आर्तव।

व्याख्या

१) **आर्तव**

स्त्रीणां शुक्र न गर्भाय। भवेत् गर्भाय च आर्तवम्॥

इस सूत्र के अनुसार, स्त्रीयों में गर्भोत्पादन के लिए जिम्मेदार घटक आर्तव (स्त्री बीज) है, शुक्र नहीं।

२) **रजः**

- **रसादेव स्त्रिया रक्तं रजःसंज्ञं प्रवर्तते।** ... सु.सू.१४/६
- **मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम।**

तद्वर्षाद् द्वादशादूर्ध्वं याति पंञ्चशतः क्षयम्॥

स्त्रीयों में प्रतिमास योनिद्वार के द्वारा गर्भाशय से होनेवाले रक्तस्राव को रज कहा जाता है। यह प्रक्रिया स्त्रीयों में १२ से ५० वर्ष की आयु तक होती है। इसी आशय को निम्न श्लोक में व्यक्त किया गया है। अपितु इस श्लोक में रज के पर्यायस्वरुप आर्तव शब्द प्रयुक्त किया गया है।

तथा रक्तं एव च स्त्रीणां। मासे मासे गर्भकोष्ठ आप्रप्य त्र्यहम् प्रवर्तमानम् आर्तवम् इति आहुः॥ ... अ.सं.शा.१/१०

स्त्रीयों में गर्भकोष्ठ में आकर तीन दिन तक बाहर जाने वाला आर्तव, ऐसा इस श्लोक का अर्थ होता है, जिसका अधिक स्पष्टीकरण निम्न श्लोक से होता है।

ऋतौ भवति इति आर्तवम्। बहिः प्रवर्तमानत्वम् तस्य उपलक्षणम्॥

नतु आर्तवम् यद् प्रवर्तते। तद् एव केवलम्, ऋतौ भवति इति आर्तवम्॥

ऋतुस्तु निशिक्तस्य बीजस्य फलः प्रसवानु गुणानुकालः॥

- मुख्य लक्षण - फलप्रसवानुबीज।
- उपलक्षण - बाहरी ओर जाना।

प्राचीन आचार्यों को Ovum द्वारा होनेवाली Fertilization की संकल्पना का शास्त्रशुद्ध ज्ञान था, यह वास्तव निम्न श्लोक से सुस्पष्ट होता है -

बीजस्य फलः प्रसवानु गुणैः

साथही Fallopian Tube द्वारा Ovum का वहन इस संकल्पना से समानान्तर निम्न श्लोक देखिए।

सूक्ष्म केश प्रतीकाशा बीजरक्तवहाः सिराः।

गर्भाशयं पूरयन्ति मासाद्बीजाय कल्पते॥

... विश्वामित्र वचनम् भानुमत्यां चक्रेणउद्धृतम्।

२) स्थान

१) गर्भाशयः

आर्तवस्य स्थानम्।

२) गर्भाशयमुखम् योनिश्च

अधःस्ताद् रक्तवहं बहिमुखं स्त्रोतः स्त्रीणाम् अधिकम्।

३) आर्तववह स्त्रोतस

आर्तववहे द्वे तयोर्मूलं गर्भाशयः। आर्तववाहिन्यश्च धमन्यः।

तत्र विद्धायाः वन्ध्यत्वं, मैथुनासहिष्णुतम्, आर्तवनाशश्च। ... सु.शा.९

४) आर्तवह धमन्यौ

द्वे शुक्रवहे शुक्रपादुर्भावाय, द्वे विसर्गाय।

त एव च रक्तमभ्विहतो विसृजतश्च नारीणाम् आर्तवसंज्ञकम्॥ ... सु.शा.९

५) आर्तवह सिरा

सूक्ष्माः केशप्रतीकाशा गर्भाशयं पुरयान्ति। ... विश्वामित्रकथनं

३) स्वरूप, संघटन, गुण, प्रकार

१) **आर्तवं शोणितं त्वाग्नेयम् अग्नीषोमीयत्वात् गर्भस्य।** ... सु.सू.१४/७

२) **रक्तलक्षणम् आर्तवम् गर्भकृत् च।** ... सु.सू १५

३) **अग्निगुण प्राधान्यम्।** ... डल्हण

यद्यपि रस धातु सौम्य है, तथापि उसका उपधातु रज रक्तलक्षणों से मिलता-जुलता, अग्नेय गुणधर्म का है।

शुद्ध रजःस्राव के लक्षण

१) **शशासृक्प्रप्तिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम्।**
तद्आर्तवं प्रशंसंति यद् वासो न विरंजयेत्॥ ... सु.शा.२

२) **मासेन उपचितं काले धमनीभ्यां तद् आर्तवम्।**
ईषत् कृष्णं विवर्णं च वायु योनिमुखं नयेत्। ... सु.सू.१५

उपरोक्त दोनों श्लोकों में 'आर्तव' शब्द 'रज' (Menstrual Discharge) इस अर्थ से जानना प्रशस्त है।

वर्ण

खरगोश के रक्त समान लाल, लक्षारस के समान आरक्त, ईषत् कृष्ण, विवर्ण, गुंजाफल के समान गाढा लाल, आलक्त पद्मक, इंद्रगोप कीटक के समान।

प्रकृति के अनुसार, रक्तवर्ण की विभिन्न छटाएं दिखाई देती हैं।

विशिष्ट परीक्षा

पानी से धोने पर वस्त्र से रज का धब्बा साफ हो जाता है, उस पर दाग नहीं रहते।

गंध

विगंध = विशिष्ट गंधयुक्त / गन्धहीन (विगत गंध)।

स्पर्श

निष्पिच्छ, निर्दाह (पित्तदुष्टी होने पर दाह होता है।)

तन्तुयुक्त, पिच्छायुक्त स्पर्श विकृतिसूचक है।

सर्वं इदं पांचभौतिकम् अस्मिन् अर्थे॥

इस सिद्धांत के अनुसार, यद्यपि रज तथा आर्तव पांचभौतिक होते हैं तथापि उनमें आग्नेय तत्व का अधिक्य होता है।

राशि (प्रमाण)

आर्तव तथा रज का स्वअंजली प्रमाण ४ अंजली बतलाया गया है। किन्तु व्यवहार में यह मापन कठिन है। अतः अनुमान से - कर्मानुमेय प्राकृतत्व जानना उचित है।

विकृति

अ) आर्तव क्षय - अरजस्का - वात अथवा वातपित्त प्रधान योनिरोग।

ब) आर्तव वृद्धि - रक्तयोनी, रक्तप्रदर।

काल

१२ से ५० वर्ष की आयु के दौरान। प्रतिमास ३, ५ या ७ दिन।

४) परिणमन

रस से रक्त की अर्थात स्त्री शोणित की परिणती होती है, ऐसा चरकाचार्य ने ग्रहणीचिकित्सा में बतलाया है। सुश्रुताचार्य ने स्त्री शोणित को ही 'रज' संज्ञा दी है। जाठराग्नि-पाचन के पश्चात, आहाररस निर्माण होने पर, रसवह स्त्रोतस में रसाग्नि के संस्कार होकर, स्थायी रसधातु, पोषक रक्त एवं कफमल इस प्रकार त्रिधा विभाजन होता है। इस रक्तपोषक अंश से यकृत-प्लीहा में स्थित रक्तवह स्त्रोतस में पांच दिन में रक्तधातु (स्थायी) निर्माण होता है। साथही आर्तववह स्त्रोतस में तत्रस्थ अग्नि के कारण स्त्रीशोणित (रज) निर्माण होता है। आर्तव व स्थायी रक्त की उत्पत्ति समान होती है, ऐसा डल्हण ने स्पष्ट रुप से बतलाया है। मासिक स्त्राव के समय अन्तःफल व गर्भाशय अपान वायु की प्रेरणा से अधिक कार्यकारी हो जाते हैं। उनकी ओर व्यानवायु के द्वारा रस-रक्तादि अधिक मात्रा में पहुँचाए जाते हैं।

अपानो अपानगः। शुक्र, आर्तव शकृत्, गर्भ निष्क्रमणक्रियः।

मासिक रजःस्त्राव के कारण रक्त की शुद्धि होती है। अतः वातरक्त, शीतपित्त, रक्तपित्त, कुष्ठ, विसर्प आदि रक्तदुष्टीजन्य व्याधि, तारूण्यावस्था में स्त्रीयों को ग्रस्त नहीं करते। डल्हणाचार्य कहते है कि 'मासिक स्त्राव के कारण शरीर धातुओं की शुद्धि होती है, साथही प्रमेह जैसे कष्टसाध्य, पीडादायी व्याधि टाले जाते हैं।'

रजः प्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशोधयेत्।
सर्वं शरीरं धातूंश्च प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः॥ ... डल्हण

मासिक रजःस्त्राव प्रारंभ होने के पश्चात, प्रथम १६ दिन तक के काल को 'ऋतु' कहते है।

१) पहले ३ दिन = मलीन रजःस्त्राव = रजःस्वला स्त्री = समागम वर्ज्य बतलाया गया है, क्यों कि पुराण रज।

२) १६ दिन योनी संकोच का काल।

३) मासिक धर्म के ४ थे दिन से १५ वा दिन = ऋतु

= 'आपत्यफलप्रद'

= नूतन आर्तव ... डल्हण

= बीजरक्त / बीजरूप ... शिवदास, चक्रदत्त

गर्भधारणा पश्चात

गर्भधारणा के पश्चात आर्तववह स्त्रोतस अवरुद्ध होने के कारण मासिक धर्म बंद हो जाता है। स्त्राव का स्वाभाविक मार्ग होने के कारण इसमें से उपयुक्त द्रव्यों का उपयोग उर्ध्व भाग में अपरा निर्माण करने के लिए तथा अंशतः भाग का उपयोग स्तनों की वृद्धि करने के लिए किया जाता है।

गृहितगर्भाणाम् आर्तववहानां स्त्रोतसांवर्त्मान्यवरुध्यन्ते गर्भेण, तस्माद् गृहितगर्भाणाम् आर्तवं न दृश्यते, ततस्तत् अधःप्रतिहतम् उर्ध्वम् आगतम् अपरां च उपचीयमानम् अपरा इति अभिधियते। शेषं च उर्ध्वतरम् आगतम् पथोधरावभिप्रतिपद्यते। तस्माद् गार्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवन्ति॥

... सु.शा.४/२४

प्रसूती के पश्चात गर्भाशय, योनि, अन्तःफल ये अवयव पूर्वस्थान में आने पर मासिक रजःस्त्राव पुनः प्रारंभ होता है।

५) रज, आर्तव - कर्म

१) बीजरूप आर्तव का प्रमुख कार्य है - गर्भोत्पत्ति। शुक्र-शोणित संयोग के कारण ही गर्भ की उत्पत्ति होती है। चरक शारीर के अनुसार गर्भ पितृज तथा मातृज अंशों से निर्मित होता है। मातृज अंश की प्राप्ति बीजरूप आर्तव के द्वारा होती है।

२) आर्तव, रज ये शरीरभाव जब व्यक्त होते हैं, निर्माण होते हैं, तभी यौवनावस्था के जातव्यंजन लक्षण निर्माण होते हैं। इस कर्म को 'स्त्रीभावजनन' कहा जा सकता है।

बालानाम् अपि वयः परिणामात् शुक्रप्रादुर्भावो भवति रोमराज्यादयश्च विशेषाः नारीणाम्। रजसि च उपचीयमाने शनैः शनैः स्तनगर्भाशययोन्यभिवृद्धिर्भवति॥

... सु.सू.१४/१८

३) **आर्तव कर्म** - 'जीवन' का अर्थ है - गर्भ को जीवित रखना, उसका पोषण, वृद्धि करना।

४) **रज कर्म** - शरीर शोधन तथा क्षेत्रीकरण। इसी कारण स्त्राव को पुराण रज, मलीन, अशुद्ध रक्त भी कहा गया है। शरीर शुद्धि एवं गर्भाशय शुद्धि होने से ही 'बीजाधान' के कारण गर्भोत्पत्ति होती है।

६) आर्तव विकृति

आर्तव विकृति

वृद्धि **क्षय**

१) आर्तव वृद्धि

आर्तवम् अङ्गमर्दं अतिप्रवृतिम् दौर्गन्ध्यं च॥

२) आर्तव क्षय

आर्तव क्षये यथोचितकालादर्शनम् अल्पता वा योनिवेदना च॥

आर्तव के संदर्भ में पूरक अर्वाचीन विचार (स्त्रीबीज एवं रज)

Ovary

The ovaries are the paired sex glands or gonads in female produce sex hormones and ovum.

Anatomy

Adult ovary, one on each side is a solid flat ovoid body usually measuring about 3.5 cm. in width and 1.5 cm in thickness, weights 4 to 8 gm. It is situated close to the lateral wall of the true pelvis. This is an Intra peritoneal organ but remains uncovered by peritoneum. Before puberty ovaries are small elongated and after menopause these become atrophic and shrivelled up. Fallopian tubes and ovary are described as adnexum and appendage.

Blood supply

Ovary receives blood supply from the branches of ovarian artery and also from uterine artery.

Structure

It consists of cortex (outer zone) and medulla (inner zone) . It is covered on its surface by a cubical epithelial lining called Germinal epithelium.

Cortex is the functional part of the ovary. A part of the cortex on adult ovary during the reproductive period is composed of numerous primordial follicles with hormone and ovum producing functional units of the ovary called Graafian follicles. In their various stages of maturation, as well as yellow bodies called corpus Luteum in their various phages of development and retrogression.

Graafian follicles

The Graafian follicles (named after de Graaff Dutch physician) are the functional units of the ovary. During reproductive period they are thrown into stages of maturation by the follicle stimulating hormone. (FSH) of the anterior pituitary.

Ovulation

It is the process of discharge of the secondary oocyte on the surface of ovary; following are the rupture of a Graafian follicle.

Time of ovulation

This usually occurs from the 13th to 17th day of a 28 th day menstrual cycle but may occur earlier of later. It is believed that ovulation occurs 14 days before the onset of next month, irrespective of the length of menstrual cycle.

Fate of ovum

The discharged ovum surrounded by the corona radiata following ovulation is picked up by the tubal fimbria (आर्तववाही धमनियां) and slowly transmitted through the tube towards the uterine cavity. Unless fertilised, the ovum survives for only 12 to 24 hours

and there after begins to degenerate. Ovum gets disintegrated in the tube or uterus or may be discharged form the uterus in the next menstrual bleeding. In case of fertilization the zygote gets embedded in the uterine endometrium taking about four days to reach it and thus pregnancy begins.

Physiology of menstruation

Menstruation

Derived from Greek word men - month. It is the monthly vaginal bleeding coming at interval of about 28 days from the oestrogen progesteron primed, uterine endometrium.

This occurs during the reproductive period (from menarche till menopause) of a woman except during lactation.

The menstrual cycle starts on the day of onset of menstruation and ends at the start of the next mens. Similarly cyclical monthly bleeding may occur from only oestrogenated endometrium, which is termed as an - ovular menstruation. This tends to occur, for a few years after the first onset of menstruation (menarche) as well as before the final cessation of menstruation (menopause) .

आर्तवचक्र सविस्तर वर्णन

Menstrual cycle

The first day of menstrual bleeding is the first day of the cycle. The cycle consists of the following phases.

1) Proliferative phase

It starts at about the 7 th day of the cycle and ends at the 14th day. During the proliferative phase, the increasing concentration of oestrogens in blood produces progressive thickness of the resting endometrium due to proliferative changes in all its elements. The endometrium becomes vascular, the endometrial vessels begin to coil.

In some cases, the vascularity of the endometrium becomes so intense at the end of the proliferative phase that the intermenstrual bleeding per vagina may occur at the time of ovulation.

2) Secretory phase

(Premenstrual or progestational stage). This begins at the ovulation on the 14th day and ends before the onset of the menstrual bleeding on the 28th day. The essential changes in the oestrogen primed proliferated endometrium during this phase are secretory activity of the glands, oedema and further thickening of the endometrium.

3) The stage of regression

Occurs toward the later part of the secretory phase about 2 days before the onset of menstruation and is due to withdrawal of oestrogen and progesterone. The hormonal withdrawal causes shrinkage up to the functional layer of the secretory endometrium with the coiled spiral vessels becoming buckled or over coiled.

4) Menstrual or bleeding phase

Extendes from the 1st to 4th or 5th day of the cycle. The regressed functional layer of endometrium undergoes ischaemic Necrosis due to vascular injury of the coiled endometrial vessels. The sum total is shedding away of many such necrosed bits of endometrium followed by bleeding from the injured vascular channels produces the picture of menstrual bleeding.

Hormones During Menstruation

Oestrogen secreted by ovaries influence the proliferative phase of the cycle. Simultaneously the development and maturation of Graafian follicle goes on. The rupture of the follicle setting free the ovum is followed by formation of corpus Luteum. The secretion of

progesterone by the corpus luteum, along with oestrogen evokes the secretory activity of endometrium. Failure of fertilisation of ovum causes regression of corpus luteum by 22nd day of menstrual cycle and fall of progesterone level. This withdrawal of progesterone leads to menstrual bleeding in 6 - 7 days (withdrawal bleeding)

२) रक्त के उपधातु – सिरा, कंडरा

असृजः कण्डरासिराः ।

कण्डराएं अर्थात बडे स्नायु तथा रक्तवहन करनेवाली सिराएं ये रक्त के उपधातु हैं ।

२) सिरा

सिरा = रस-रक्तादि वहन करनेवाली नलिकाएं ।

सुश्रुतोक्त - चतुर्विध वर्गीकरण - अरूणा, नीला, गौरी, रोहिणी ।

निरूक्ती, पर्याय

सरणात् सिराः ।

इसमें बहनेवाले रक्त की गति अथवा प्रवाह करनेवाली रचना । चरक, सुश्रुत संहिता में 'सिरा' शब्द का प्रयोग स्त्रोतस के पर्यायी शब्द के स्वरुप में किया गया है । सुश्रुताचार्य ने तो सिरा, धमनी तथा स्त्रोतस इनमें कुछ भी विभेद नहीं, यह एकीय मत अनेकानेक बार प्रदर्शित किया है । ... सु. शा. ९

तथापि चरकाचार्य ने धमनी, सिरा एवं स्त्रोतस में कर्मभेद स्पष्ट किया है ।

... च.वि.५

स्वरूप

सुषिर, मृदु रचनाएं । सुश्रुत संहिता में सिराव्यधविधि (सिरामोक्ष) का वर्णन किया है । इसमें रक्तनिर्हरण की पद्धति के साथही रक्तस्राव अवरुद्ध करने के लिए सूत्रबन्धन, दाहकर्म के द्वारा सिरासंकोच (सु. सू. १४) आदि व्यावहारिक उपयोगिता के विषय भी वर्णित हैं । सिराए मृदु होने के कारण 'चल' होती हैं और भेदन शस्त्र के अग्रभाग से मत्स्य के समान छूट जाती हैं (सु. शा. ८) ।

संघटन

सिराएं रक्त से निर्मित होती हैं अपितु उनके संघटन में मेद का अंश भी होता है ।

'मेद के स्नेहांश का उपयोग कर वायु सिराओं की उत्पत्ति करता है। वायु के आध्मान व वहन इन क्रियाओं से सिराओं में सुषिरता निर्माण होती है' - इति सुश्रुताचार्य।

सिरा एवं स्नायु दोनों में मेद का अंश होता है, किन्तु सिरानिर्मिती (/त्रिधापरिणमन) के दौरान रक्ताग्नि के कारण सिरा निर्मिती के दौरान मृदुपाक होता है और स्नायु निर्मिती के दौरान मेदोग्नि के कारण मेदांश का खरपाक होकर स्नायु निर्माण होते हैं। मृदुत्व के कारण सिरा आकुंचन-प्रसरण आदि कार्य करने में सक्षम होती हैं और स्नायु लचीले तथा अधिक मजबूत एवं कठिन बन जाते हैं।

प्रकार – शरीर में ७०० सिराएं होती हैं।

४ प्रकार

गौरी, नीला, अरूणा, ताम्रा (सिराओं के दोषसंयोग अथवा शुद्ध रक्त के अनुसार)

जैसे - कफयुक्त रक्त के कारण - गौरी सिरा,
पित्तयुक्त रक्त के कारण - नीला सिरा,
वातयुक्त रक्त के कारण - अरुणा सिरा,
समदोषयुक्त शुद्ध रक्त के कारण - ताम्रा सिरा।

अपितु सिराओं को 'सर्ववहाः सिरा' कहा गया है।

प्रकार

हृदय से १० महामूल सिराएं संलग्न होती हैं (च. सू. ३०, अ. ह.) (इस संदर्भ में धमनी व सिरा दोनों का भी अंतर्भाव है।)

सुश्रुताचार्य ने २४ धमनियों को 'नाभिप्रभव' कहा है। ... सु.शा.९/३

यहां नाभी शब्द का अर्थ 'उदरमध्यबिंदु' की अपेक्षा 'हृदयं' करना उचित होगा। इसी नाभि के स्थान में सिराओं का भी उल्लेख सुश्रुत ने किया है।

सिराभिरावृता नाभिः चक्रनाभिरिवारकै : ॥ **... सु.शा.७/५**

स्थूल स्वरूप में १० या २४ सिराएं हृदयस्थित होती हैं। उनका विस्तार होकर ४० महासिराएं और उनकी सिराशाखाओं अथवा सिराप्रतानों के सम्मिलन से कुल संख्या ७०० हो सकती है।

सिरा – कार्य

रस का उपस्नेहन कर, रक्त के द्वारा जीवन (प्राण) प्रदान कर शरीर का अनुग्रह करना यह सिराओं का कार्य है। (संदर्भ - सु.शा. ७/३, ७/२३)

उपस्नेहन स्पष्टीकरण (चक्रपाणी कृत)

जब नदी जल का वहन करती है तब दोनों किनारों के आसपास की भूमी भी आर्द्र एवं सन्तृप्त हो जाती है। किनारों के समीपस्थ वृक्ष, वनस्पतियों को जल तथा पोषण की प्राप्ति होती है और वे हरे-भरे रहते हैं। इसी प्रकार सिराओं से रस-रक्त का वहन होने के दौरान, निकटस्थ प्रदेश के धातुओं का स्नेहन होकर उन्हे रस के गुण प्राप्त होते हैं। यही उपस्नेहन न्याय है। सिराओं के आकुंचन-प्रसरण के कारण यह कार्य होता है। सिराओं का कर्म बाधित होने पर वातादि का कार्य भी अवरुद्ध होता है।

२) कंडरा – रक्त का दूसरा उपधातु

१) नाम, पर्याय

चक्रपाणी ने इसे 'स्थूलस्नायु' और डल्हण ने 'महास्नायु' कहा है। अपितु सुश्रुत संहिता में 'कण्डरा' को स्नायु का ही एक प्रकार माना गया है (संदर्भ - सु.शा. ५/३०, ३१)। इस शरीर संख्या व्याकरण अध्याय में कंडरा को ही वृत्तस्नायु कहा गया है।

२) स्वरूप

वृत्त स्वरूप, स्थूल, बृहत (श्लक्ष्ण, रज्जु सदृश), रक्त का उपधातु एवं मांस सजातीय। पार्थिव तथा पितृज भाव। ...च. शा. ६

३) संख्या – १६

सोलह। (सुश्रुतोक्त)

स्थान विभागानुसार, दो पैरों में - ४, दो हाथों में - ४,
ग्रीवा में - ४, पृष्ठ में - ४

४) स्थान

विगत सुश्रुतोक्त मत है। चरक के अनुसार, कण्डरा अस्थि संयोग स्थान में उपनिबद्ध व मध्यमरोगमार्ग में समाविष्ट हैं।

५) उत्पत्ति

कण्डरा रक्त का उपधातु है। त्रिधापरिणमन के दौरान रक्तधातु से प्रसादांश स्वरूप में मांसधातु की और उपधातु स्वरूप में कंडराओं की निर्मिती होती है। अग्नि एवं वात के अल्प-अधिक एकत्रीकरण अथवा संयोग के कारण, मृदु स्वरूप सिराएं और अधिक खरपाक के परिणामस्वरुप मृदु किन्तु दृढ एवं चलगुणयुक्त स्नायु उत्पन्न होते हैं। 'कण्डरा' मांस के अग्रप्ररोह स्वरूप की होती है, ऐसा शास्त्रवचन है। जिस प्रकार वायु, मांस के मूलधातु में

प्रवेश कर पेशीयों में प्रविभाग निर्माण करता है, उसी प्रकार कण्डरा में भी प्रविभाग की निर्मिती वायु के द्वारा ही होती है।

६) **कार्य**

एकमेव शरीरे ऽ स्मिन यावन्तः सन्धयः स्मृतः।

स्नायुभिः बहुभिर्बध्दास्तेन भारसहा नराः॥ ... सु.शा.५/३५

स्थानानुरुप → हस्त-पाद की कंडराएं, मणिबंध, गुल्फ तथा हस्त-पाद के संधिबन्ध अधिक दृढ करना। विविध कार्य सम्पन्न करने की दृष्टि से उन संधियों का बल वर्धित करना। स्नायुबन्धनों के दृढत्व के कारण ही संधियों में भार सहत्व उत्पन्न होता है।

कण्डराएं मृदु स्नायुओं को ऊपर से आच्छादित कर, अधिक बलपूर्वक कार्य करने में सहायता करती हैं। ग्रीवा तथा पृष्ठ की कंडराएं, छोटे स्नायुओं का बल वर्धित करती हैं और शिर, पृष्ठ की गतिविधियां, भारवहन सामर्थ्य आदि सुलभता से करने में सहायता करती हैं।

कण्डरा की तुलना

Muscle Tendons इस प्रत्यक्षपर शरीरघटक से की जा सकती है।

३) मांसधातु के उपधातु - वसा, षट्त्वचा

१) वसा

१) **नाम, पर्याय**

मांस में उपस्थित स्नेह, मांस को पकाकर निकाला जा सकता हैं। इस स्नेह को 'वसा' कहते है।

शुद्धमांसस्य यः स्नेह सा वसा परिकीर्तिता। ... सु.शा.५

मांस धातु स्निग्ध होने के कारण उसमें गतिविधियां होती रहने पर भी वहां वातप्रकोप नहीं होता। शुद्ध मांस से निर्माण होने वाला स्निग्ध भाव ही वसा कहलाता है।

निरूक्ती

मूल धातु 'वस'। इसके २ अर्थ होते हैं - निवास, आच्छादन।

वसति - शरीरे - विशेषतः मांसे इति वसा।

आच्छादयति शरीरं - मांसम् उदरादिकं वा इति वसाः।

पर्याय

मांसजन्य स्नेह दर्शक शब्द - मेद, वपा एवं वसा। ... अमरकोष

प्रत्यक्षतः ये ३ भिन्न शरीरभाव हैं।

अ) **मेद =** स्वतंत्र धातु। चरबी। मेढोवह स्त्रोतस का मूल - वपाहन एवं वृक्क।

... चरक, स्त्रोतोविमानाध्याय

ब) **वपा =** उदर स्थित स्निग्धवर्तिका (चक्रदत्त)। तैलवर्तिका।

यज्ञ में पशुओं के उदर की वपा का उपयोग किया जाता है।

क) **वसा –** आयुर्वेदोक्त ४ स्नेह - घृत, तैल, वसा, मज्जा।

सुश्रुत - घृत, तैल, वसा, मेद, मज्जा - उत्तरोत्तर गुरू विपाकी एवं वातहर होते हैं (सुश्रुत)। मेद से अस्थिधातु की निर्मिती होती है, किन्तु 'वसा' से अन्य किसी भी धातु की उत्पत्ति नहीं होती। अर्थात मेद एवं वसा दोनों स्निग्ध होने पर भी उनमें निश्चित रुप से विभेद होता है।

२) **उत्पत्ति**

त्रिविधपरिणमन के दौरान, मांस से प्रसादांश स्वरूप में उत्पत्ति।

३) **गुण**

भौतिक दृष्टिकोण से जलत्व का अधिक्य, क्यों कि स्नेह (स्निग्धता) जलतत्व का स्वाभाविक गुण है, अतः गुरू तथा कफवर्गीय पदार्थ है। वसा चतुर्विध स्नेहों में से एक, अतः स्निग्ध होती है। शरीर में प्रमाण = ३ अंजली।

४) **कर्म**

अ) वसा मांस का स्नेह है; अतः मांस धातु को मृदुता प्रदान करना, एवञ्च मांस को पुष्ट तथा दृढ बनाना।

ब) व्यायामादि वातप्रकोपक कारणों से मांस की संभाव्य क्षीणता न होने देना यह वसा का कार्य है।

५) **विकृति**

- वसा क्षय के कारण - रुक्षता बढकर वातवृद्धि तथा मांसशोष हो सकता है।
- वसा अतियोग के कारण- अतिमेदस्विता, श्लथमांसता उत्पन्न हो सकती है।

मांसधातु का दूसरा उपधातु

२) त्वचा

१) नाम, निरूक्ती, पर्याय

त्वचा = शरीर के बाह्य भाग में सर्वत्र व्याप्त तथा समस्त शरीर धातुओं को आवरित करने वाला पतला आच्छादन।

पर्याय

त्वक्, चर्म, कृति, अजिन, वल्क, वल्कल (कृति = हाथी की त्वचा, अजिन = मृगादि की त्वचा)। कर्मसूचक पर्याय - स्पर्शन, छवि, छादनी, असृक्धरा।

निरुक्ति

- 'त्वग्' धातु को 'क्वीप्' प्रत्यय = त्वक्।
- 'त्वग्' धातु को 'टाप्' प्रत्यय = त्वचा।

अर्थात, ढकना, आवरित करना, मांस-सिरादि मृदु धातुओं को आवरित करना।

२) उत्पत्ति

अ) त्रिधा परिणमन के समय पोषक मांस पर मांसाग्नि की क्रिया होकर स्थायी मांस निर्माण होता है और इसी दौरान त्वचा की उपधातु स्वरूप में निर्मिती और पोषण होता है (१० दिन में)।

ब) प्रथमतः त्वक् निर्मिती - शुक्र-शोणित से गर्भ उत्पन्न होते हुए, अभिपच्यमान शुक्र-शोणित से प्रथम त्वचा की उत्पत्ति होती है, जैसे दूध पर मलाई जमा होती है।

३) स्थान

शरीर के सभी बाह्यभागों एवं अन्तस्थ अवयवों का आवरण।

४) स्वरूप, गुण

त्वचा स्पर्शनेंद्रिय का अधिष्ठान, अतः वायवीय पदार्थ है। त्वचा में भ्राजक पित्त होता है, जो शरीर को वर्ण प्रदान करता है। अतः त्वचा का स्वरूप पतला एवं कोमल होता है। जीवित व्यक्ति में त्वचा उष्ण स्पर्शयुक्त, मृदु एवं कांतियुक्त होती है। प्रकृति के अनुसार गौर, गौरावदात, श्याम तथा श्यामावदात ये वर्ण के प्रकार हैं। त्वचा का छेदन करने पर रक्त निकलता है, अपितु अक्षत त्वचा से रक्त बाहर नहीं निकलता, इसीलिए त्वचा को 'असृग्धरा' भी कहा जाता है।

५) कर्म

१) **आवरण** अथवा आच्छादन यह त्वचा का सर्वश्रेष्ठ कर्म है। मांसादि सभी शरीरघटक, मुख्यतः सिरा आदि मृदु अवयव त्वचा से आच्छादित होने के कारण उनका संरक्षण होता है।

२) त्वचा स्पर्शनेंद्रिय का अधिष्ठान है, अतः 'स्पर्श संवेदना' ज्ञान का कार्य त्वचा के माध्यम से होता है।

४) वर्ण, उष्णता (तापमान नियंत्रण), अभ्यंग - परिषेक - लेप आदि में प्रयुक्त औषधियों का पाचन-शोषण ये भ्राजक पित्त के कार्य त्वचा के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं।

५) 'रस' धातु का प्रीणन कार्य, ताजगी, उत्साह, प्रसन्नता ये कार्य भी त्वचा के माध्यम से ही प्रतीत होते हैं। इसी लिए डल्हणाचार्य कहते है कि त्वक्सार ही रससार है। सुदृढ, सुंदर, मृदु त्वचा त्वक्सारता का प्रमुख लक्षण है।

६) **धारण** – उदक (जल) तथा रक्तसदृश परमावश्यक पदार्थों का धारण करना, उनका बहिर्गमन नियंत्रित रखना त्वचा के द्वारा ही होता है।

७) **रोपण, सन्धान** – अभिघात के पश्चात पुनः रोपण, सन्धान करना, व्रण को आवृत्त करना।

८) **मांसधारण, पोषण** – मांस का धारण तथा पोषण मांसधराकला के द्वारा किया जाता है।

९) **मलनिर्हरण** – केश, नख, स्वेद तथा अन्य त्वक्स्थित स्नेहरूप मलों का धारण, निर्हरण ये त्वचा के कार्य हैं।

६) त्वचा के प्रकार

चरकोक्त षट् त्वचा

	नाम	वर्णन	व्याधि
१	उदकधरा	इसके आश्रय से उदक उष्मा का परिणाम होकर उदक स्वेद रूप में उत्सर्जित	-----
२	असृग्धरा	-----	-----
३	-----	-----	सिध्म, किलास
४	-----	-----	कुष्ठ
५	-----	-----	अलजी, विद्रधी
६	-----	-----	भ्रम, मूर्च्छा, असृंषी

सुश्रुतोक्त सप्त त्वचा

	नाम	वर्णन	मोटाई	अधिष्ठित व्याधि	अर्वाचीन तुलनात्मक विचार
१	अवभासिनी	अवभासन / चमक यह गुण।	१८ व्रीहिभाग	सिध्म, पद्मकंटक	Epidermis
२	लोहिता	रक्तवर्णयुक्त स्तर	१६ व्रीहिभाग	तिलकालक, न्यच्छ, व्यंग	-----
३	श्वेता	मेद का अल्प स्तर धारण करनेवाली	१२ व्रीहिभाग	चर्मदल, अजगल्लिका, मषक	Stratum Lucidum
४	ताम्रा	चरकोक्त रक्तधरा से साधर्म्य (?)	८ व्रीहिभाग	विविध किलास कुष्ठ	Stratum Granulosum
५	वेदिनी	चरकोक्त षष्ठी त्वचा से साधर्म्य (?) जिस स्तर के कारण वेदना या अन्य घटकों का ज्ञान होता है	५ व्रीहिभाग	कुष्ठ, विसर्प	-----
६	रोहिणी	पुनर्निर्माण, व्रण संधान कार्य	१ व्रीहि	ग्रंथी, अपची, अर्बुद, श्लीपद	-----
७	मांसधरा	अंतिम, गंभीर, आभ्यंतरतम स्तर, मांस को आवरित करता है।	२ व्रीहि	गलगंड, भंगदर, विद्रधि, अर्श	Deep Fascia

त्वचा की मोटाई का मापन

परिमाण

व्रीहि = १ यव,

२० व्रीहिभाग = १ व्रीहि।

उदर पर सर्वाधिक मोटी त्वचा = सातों स्तर

= ५ व्रीहि + १९ व्रीहिभाग = ६ व्रीहि ≈ अंगुष्ठोदर प्रमाण

छाया एवं प्रभा का अर्थ **(संदर्भ – च. इ. ७ / १०, १४–१६)**

१) **छाया** = निकट से प्रतीत होती है = वर्ण को ढक देती है।

२) **प्रभा** = दूर से प्रतीत होती है = वर्ण को निखारती है।

छाया – ५ प्रकार

१) नामसी (स्निग्ध, नीलवर्णीय)

२) वायवीय (रूक्ष, कृष्ण-ताम्र वर्णीय)

३) आग्नेयी (भूरी-ताम्र वर्णीय, प्रसन्न)

४) अंभसी (वैडूर्य वर्णी, स्निग्ध)

५) पार्थिवी (स्निग्ध, श्लक्ष्ण, श्याम)

वायवीय छाया – तीव्र वेदनायुक्त व्याधि के कारण मृत्यु।

प्रभा – ७ प्रकार

रक्त, पीत, सिता, श्यावा, हरिता, पाण्डुर, असित (कृष्णवर्णी)।

त्वक् – अर्वाचीन पूरक विषयांश

Functions of Skin

1) **Protective Function -** Protective coating on the body. Mechanical barrier against entry of bacteria etc. Protection from thermal, chemical and mechanical injuries.
2) **Regulation of body temperature -** There is vasodilatation and vasoconstriction of skin blood vessels in hot and cold weathers respectively. Also cutaneous and subcutaneous fat acts as a nonconductor.
3) **Synthetic Function -** Synthesis if vit. D from sterols in skin through radiation by ultraviolet rays.
4) **Sense organ for Sensation -** Skin has vary rich supply of nerve fibres, through which it perceive the sensation of touch, pressure, pain, heat and cold.
5) **Excretory Function -** NaCl and minute traces of urea are excreted through sweat.
6) **Absorption -** Certain oils, fat soluble substances and drugs may be absorbed through the skin.
7) **Storage -** The skin can store fat, salt, water and glucose to a certain extent and can act as blood reservoir as well.
8) **Secretory functions -** Sebum - Responsible for greasiness of the skin.
9) Maintenance of water balance.
10) **Muscle attachment -** certain muscles are attached to skin eg.- in region of face, where they are responsible for emotional expressions.
11) Skin - contributory factor towards the beauty of body.
12) Skin - principal organ of attraction.
13) Skin - ability to regenerate and heal wounds.

14) Skin - reflects the age of man.
15) Skin - pigment - melanin - protect the body from harsh ultraviolet rays of sun.

४) मेद धातु के उपधातु – स्नायु, संधि

१) मेद धातु का पहला उपधातु – स्नायु

१) नाम, निरूक्ति, पर्याय

स्नायु = रज्जु = तात।

'स्नायु' कंडराओं से भिन्न होते हैं, यह स्पष्ट करने के लिए स्नायु को 'सूक्ष्मस्नायुः' कहा जाता है।

कण्डरा = महास्नायु (डल्हण)

पर्याय

वस्नसा (अमरकोष), स्नसा।

२) स्थान

सर्व शरीर। शाखा, कोष्ठ, ग्रीवा, पृष्ठ, उर आदि स्थानों में।

३) परिणमन

अ) मेदोवह स्त्रोतस में, स्थायी मेद की निर्मिती के दौरान उपधातु स्वरूप में स्नायुओं की उत्पत्ति एवं पोषण होता है। ... डल्हण

ब) शरीरवायु मेद का स्नेहमय अंश प्राप्त कर, स्नायुओं का निर्माण करता है। मुदुपाक होने से सिराओं की निर्मिती होती है और स्नायु की निर्मिती होने के लिए मेदांश का खर अर्थात कठिन पाक होना आवश्यक है। ... सुश्रुत

क) मेद से स्नायुओं का निर्माण होता है। ... चरक, ग्रहणी अध्याय

मेद यह स्नायु निर्मिती में उपादान कारण है और वायु निमित्त कारण है।

४) परिणमन काल

आहाररस की उत्पत्ति के पश्चात १५ वे दिन मेदपोषकांश से मेद की निर्मिती होती है। इसी दौरान उपधातु स्वरूप में स्नायु का भी निर्माण तथा पोषण होता है।

५) स्नायु - स्वरूप, संघटन, गुण

स्नायु = मजबूत, लचीली रज्जू सदृश रचना; स्थिर, घन, पिच्छिल गुणों से युक्त, भारक्षम।

संख्या - ९००

सुश्रुतोक्त प्रकार - ४

	नाम	वर्णन	स्थान
१	प्रतानवत् (Ligaments)	अनेक धागों एवं शाखाओं से युक्त	हस्त, पाद
२	वृत्त (कण्डरा-Tendons)	गोलाकार (वृंताकार)	हस्त, पाद
३	पृथिल (Aponeurosis, Fascia)	प्रथ - विस्तारे	पृष्ठ, पार्श्व, उरस, शिर
४	सुषिर (Sphincters)	दृढ, तंतुमय, मुद्रिकायावलयाकार	आमाशय, पक्वाशय, बस्ति

६) स्नायु - कर्म

एवमेव शरीरे ऽ स्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृता :।

स्नायुभिर्बहुभिर्बध्दास्तेन भारसहा नराः ॥

प्रमुख कार्य

सधिबंधन एवं भारक्षमता।

जिस प्रकार नांव के तख्तों को रस्सी की सहायता से एक साथ बांधने पर उस नांव को मजबूती प्राप्त होती है, उसी प्रकार अस्थि एवं संधि स्नायुओं से बंधे हुए होते हैं। इसके कारण मजबूती प्राप्त होकर उन्हें वजन सहने की क्षमता प्राप्त होती है और शरीरधारी भार वहन कर सकते हैं।

शार्ङ्गधर

बडे (बृहत) स्नायु (कंडराएं) शरीर अवयवों का (हस्त, पाद आदि) प्रसरण तथा आकुंचन करने का कार्य करते हैं। संकोच एवं विकसन ये स्नायुओं की क्रियाएं शरीर व्यापार समुचित रुप से होने की दृष्टि से आवश्यक होती हैं। इस संकाच-विकसन के कारण होनेवाली स्नायुओं की क्षति की आपूर्ति मेद के स्नेह के कारण होती है।

मर्म संघटन में स्नायुओं का संबध महत्त्वपूर्ण होता है। स्नायु मर्म पर अभिघात होने पर तीव्र वेदना तथा क्रियाहानी की आशंका होती है।

२) मेद धातु का दूसरा उपधातु - संधि

संधि का अर्थ है - अस्थि संधि। कोई भी दो घटक एकत्र मिलकर भी संधि निर्माण होता है। विभिन्न परमाणुओं का संयोग होने के लिए मेद की स्निग्धता सहायक होती है। अस्थिसंधि में गतिविधियां (हलचलें) समुचित प्रकार से होने के लिए मेद का स्निग्धांश उपकारक होता है। वातप्रकोप एवं धातुक्षय टालने की दृष्टि से प्रकृति ने ही यह योजना की है।

प्रकरण १२

मल - विचार

शरीर स्वास्थ्य की दृष्टि से 'मल' यह शरीरभावपदार्थ भी दोष, धातु इन घटकों के समान ही महत्त्वपूर्ण है, अतः कहा गया है -

- **दोषधातुमलामुलं हि शरीरम् ।**
- **सम धातु मलः क्रियाः ।**
- **दोष दूष्य संमूर्च्छना जनितो व्याधिः ।**

इन सभी सूत्रों का महत्त्व स्पष्ट होता है । मलों की साम्यावस्था आरोग्य निर्माण करती है ।

एवं रसमलौ स्वप्रमाणः अवस्थितावाश्रयस्य समाधातोः धातुसाम्यम् अनुवर्तयतः ।

अर्थ - धातु मल स्वप्रमाण में होने पर स्वास्थ्य बना रहता है ।

स्वप्रमाण प्रत्येक व्यक्ति के शरीर की बनावट तथा आयु पर निर्भर होता है ।

ते सर्व एव स्वं मानम् अनुवर्तन्ते यथा वयः शरीरम् ।

मल की निर्मिती अथवा पोषण किस प्रकार होता है ?

स्थूल पचन के अंततः सार एवं किट्ट विभजन होता है ।

- सार भाग = धातुपोषक अंश ।
- किट्ट भाग = मलपोषक अंश ।

तत्र आहार प्रसादाख्यो रसः किट्टं च मलाख्यं अभिनिवर्तते ।

किट्टात् स्वेद मूत्र पुरीष वातपित्तश्लेष्माणः कर्ण अक्षिनासिकास्यलोमकूप प्रजननमलाः केशश्मश्रुलोम नखादयश्च अवयवाः पुष्यन्ति ।। ...च.सू.२८/४

पोषक अंश से धातुओं का निर्माण करना और तत्पश्चात कुछ काल के उपरान्त धातुघटकों का रुपान्तर मल अथवा त्याज्य पदार्थों में करना इन दोनों स्तरों में अग्नि के द्वारा पचन प्रक्रिया ही होती है । तथापि पहले पचन में घटकों की उत्पत्ति होती है और दूसरे पचन में घटकों का विनाश होता है । आहार के द्वारा धातुओं के साथ मल का भी पोषण होता है ।

धातुओं के समान मलों के पोषक अंश का वहन स्त्रोतसों के द्वारा होता है ।

- **तेषां तु मलप्रसादाख्यां धातूनां स्त्रोतांसि अयनमुखानि ।। ... च.सू.२८/५**
- **मलानां धातूनां तदेव आयनं यदेव प्रवेशमुखं इति, न अन्येन प्रवेशो न अन्येन च गमनम् इति उक्तं भवति ।। ... चक्रपाणि**

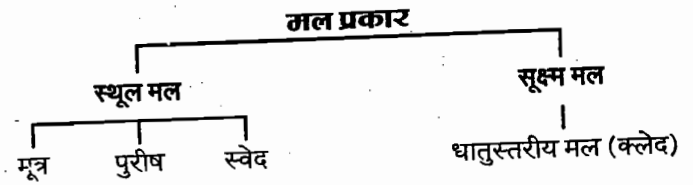

धातु - मल - तालिका

क्र.	धातु	मल
१	रस	कफ
२	रक्त	पित्त
३	मांस	ख मल
४	मेद	स्वेद
५	अस्थि	केश, लोम, नख, श्मश्रु
६	मज्जा	अक्षिविट्स्नेह
७	शुक्र	ओज

प्रथम स्थूल मल का अध्ययन करते है ।

स्थूल मल

१) मूत्र

१) नाम, निरुक्ति, प्रस्तावना

मूत्र शरीर का महत्त्वपूर्ण मलद्रव्य है, शरीर का आधारभूत द्रव्य हैं । अन्न पचन प्रक्रिया में उत्पन्न होनेवाले द्रव मल को मूत्र कहा जाता है ।

अन्नस्य किट्टं विण्मूत्रं सारः प्रागीरितो रसः ।। ... वा.शा.३

पर्याय

- **बस्तिमल** - उद्गमस्थान सूचक ।

- **मेह, मूत्र** – मिह सेचने, मूत्र प्रस्त्रवण-सिंचन होकर उत्सर्जित होनेवाला।
- **नृजलम्** – स्वरुप सूचक, जल सदृश तथा मानवी देह में उत्पती सूचित।
- **प्रस्त्राव, स्त्रव** – क्रिया सूचक।

२) स्थान

१) वृक्क, गविनियां, मूत्राशय, मूत्रप्रसेक।

प्रत्यक्षतः मूत्र उत्त्पत्ति, वहन, संचार विसर्जन में क्रमशः जिम्मेदार।

२) पक्वाशय

पोषक मूत्रांशों की निर्मिती।

३) पुरीषधरा कला

पक्वाशयस्थ पुरीषधरा कला आहारकिट्ट का पुरीष एवं मूत्र इस प्रकार पृथक्करण करती है।

४) मूत्रवह स्त्रोतस

मूत्रवहे द्वे तयोर्मूलं बस्तिर्मेढ्रं च, तत्र विद्धस्यानद्धबस्तिता, मूत्रनिरोधः, स्तब्ध मेढ्रता च। ... सु.शा.९/१२

५) बहिर्मुख स्त्रोतस

श्रवणनयनवदन गुदमेढ्राणि नवस्त्रोतांसि नराणां बहिर्मुखानि। ...सु.शा.५/१०

६) दशप्राणायतन

दशप्राणायतनानि तद्यथा गुदबस्तिः ... तेषुषट् पूर्वाणि मर्मख्यातानि।

... च.वि.५

७) उदराश्रित मर्म

अल्पमांसशोणितो अभ्यन्तरतः कट्यां मूत्राशयो बस्तिर्नाम, तत्रापि सद्योमरणम् - अश्मरीव्रणाद्दते। ... सु.शा.६/२५

३) स्वरुप, संघटन, गुण

सर्वं इदं पांचभौतिकम्।

इस सूत्र के अनुसार पांचभौतिक।

परंतु 'व्यपदेशस्तु भूयसा' न्याय से जल एवं अग्नि प्राधान्य।

मूत्रे अम्बुशिखिनोर्गुणः। ... सु.सू.१५/१४ (डल्हण)

महत्त्वपूर्ण पांचभौतिक गुण

१) **स्पर्श – किंचित उष्ण**

विकृति–अल्प उष्णता - शीतमेह, अति उष्ण - भृशोष्ण, उष्णवात, मूत्रेंद्रिय में दाह - क्षारतोयवत्, पैत्तिक क्षारमेह, अम्लमेह।

२) **रुप – ईषत् पीत**

विकृति–जलसदृश वर्ण - उदकमेह, अधिक पीत - कामला, विकृत वर्ण - रक्त, नील

दर्शन में - अच्छता, जलाभ विशदता प्राकृत है।

विकृति–पिच्छिलता के कारण तन्तुल - आलाल मेह, आविल मूत्रता - पिष्टमेह, सिकतामेह, शोणितमेह, हस्तिमेह, सुरामेह आदि।

३) **रस – लवण एवं कटु**

विकृति–मधुर रस = मधुमेह, विकृत रस - अम्ल, क्षार

४) **गंध – विशिष्ट गंध**

तत्काल विसृष्ट मूत्र में अल्प मात्रा में किन्तु दीर्घकालोत्तर संचित मूत्र में त्वरित गंध महसूस होता है। (बकरी के शरीर के समान गंध, अतः 'बस्तगन्धि' शद्ब।)

... सु.नि.३/५

मूत्र के अन्य गुण – लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुक्ष।

मूत्र का प्रमाण – ४ अंजली।

४) परिणमन

आहार किट्ट से मूत्र की निर्मिती होती है। अन्य किट्ट से वायु, मूत्र, पुरीष पृथक् होते हैं। पक्वाशयस्थ पुरीषधराकला आहारकिट्ट का पुरीष एवं मूत्र इस प्रकार पृथक्करण करती है। वृक्क में भविष्य में जो मूत्रोत्पत्ति होती है, उस मूत्र के पोषक अंश किट्टद्रव्य अन्न किट्ट में होते हैं।

- **किट्टम् अन्नस्य विण्मूत्रम्।** ... च.चि.१५/१८
- **पुष्यान्ति किट्टात् स्वेदमूत्र।** ... च.सू.२८

अपानवायु की क्रिया के कारण मूत्रपोषक अंश पक्वाशय से सिरा के द्वारा शोषित किए जाते हैं। मूत्रपोषक जलद्रव्य और प्रत्यक्ष मूत्र इनमें स्वरुपतः विभेद है। आहार किट्ट से पक्वाशय में पृथक् हुए द्रवस्वरुप किट्ट को मूत्रत्व प्राप्त होने के लिए वृक्क में उस पर प्रक्रिया होना आवश्यक होता है।

मूत्र = आहार किट्ट से पृथक हुआ किट्टद्रव्य + शरीरस्थ क्लेद (रसरक्तादि धातुगत जलस्वरुप मलांश)

मूत्रनिर्मिती के संदर्भ में निम्न सुश्रुतोक्त श्लोक मुखोद्गत होना आवश्यक है।

पक्वाशयगतास्तत्र नाड्योमूत्रवहास्तु याः।
तर्पयन्ति सदा मूत्रं सरितः सागरं यथा।
सुक्ष्मत्वान्नोपलभ्यंते मुखान्यासां सहस्त्रशः।
नाडीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयान्तरात्।
जाग्रतः स्वपतश्चैव स निः स्यन्देन पूर्यते।
आमुखात् सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्यते नवः।
घटो यथा तथा विद्धि बस्तिर्मूत्रेण पूर्यते॥ ... सु.नि.३

मूत्र निर्माण प्रक्रिया (मूत्र के पोषक अंश अलग होना) पक्वाशय में प्रारंभ होती है। अनेक नदियां जिस प्रकार सागर से मिलती हैं, उसी प्रकार मूत्रवाही नाडियां, पक्वाशय से मूत्र के पोषक अंश का वहन करती हैं और अंततः बस्ति का तर्पण करती हैं। अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण वे प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती। वे हजारों की संख्या में उपस्थित होती हैं। ये नाडियां निःस्यन्दन प्रक्रिया के द्वारा (Osmosis) बस्ति पूरण का कार्य अनवरत करती रहती हैं।

निःस्यन्दन प्रक्रिया के स्पष्टीकरणार्थ दृष्टान्त

जिस प्रकार संपूर्णतः पानीसे भरे हुए नूतन घट में सूक्ष्म छिद्रों के द्वारा पानी का रिसाव होकर पानी घट के भीतर प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार निःस्यन्दन प्रक्रिया चलती रहती है। किन पदार्थों को मार्ग से गुजरने देना हैं और किन्हें नहीं, यह विवेचन उसमें होता है।

मूत्रनिर्मिती में पक्वाशय का संबंध ज्ञात करना प्रायः कठिन है। किन्तु मूत्राशय के (Oliguria) व्याधियों में बकरी आदि प्राणियों के पक्वाशय, अंतडियों का सूप पीने से कुछ रुग्णों में वर्धित मूत्रप्रवृत्ती देखी गई है। अतः सामान्य विशेष सिद्धांत के अनुसार पक्वाशय में मूत्रपोषक अंश की उपस्थिति का आकलन होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर समन्वय प्रस्थापित करने की इच्छा रखनेवाले कुछ अभ्यासक, उपरोक्त श्लोक में वर्णित पक्वाशय, मूत्रवाहिनी नाडियां आदि का संबंध Kidney में स्थित Cortex, Calyces इस भाग से जोडकर अर्थ समझने का प्रयत्न करते हैं।

५) मूत्रनिष्क्रमण

अपानो अपानगः। श्रोणिबस्ति मेढ्र उरु गोचरः।
शुक्र आर्तव शकृत् मूत्र गर्भ निष्क्रमणक्रियः॥

अपान वायु द्वारा निर्मित यह वेग व्यान एवं प्राण वायु की सहायता से कुछ समय तक रोका जा सकता है। मूत्राशय मूत्र से भरने की संवेदना प्रथम प्राण को प्राप्त होती है और तत्काल बस्ति का द्वार अपान के कारण खुल जाता है।

६) मूत्र के कार्य

कार्य क्र. १ – मूत्र का सर्वश्रेष्ठ कार्य क्लेदवहन बतलाया गया है।

- **मुत्रस्य क्लेदवाहनम्।** ... वा.सू.११
- **बस्तिपूरणविक्लेदकृन्मूत्रम्।** ... सु.सू.१५/१८
- **विक्लेदः आर्द्रत्वम्, क्लेदः विवेकजम् इति पाठान्तरम् – क्लेदविवेकजम् इति क्लेदः आर्द्रत्वं स च आहारस्य ... विवेकात पृथकृत्वाजाताम् मूत्रम्।**

  मूत्रस्य क्लेदवाहनम् ... अ.हृ.

शरीर में संचित अतिरिक्त पानी बाहर निकालना यह प्रमुख कार्य है। अन्न के पक्व मलीन घटक तथा धातुओं के मल भी मूत्र के द्वारा उत्सर्जित किए जाते हैं। धातुओं के मल पानी में विद्रावित होने पर निर्मित विद्रावण (मिश्रण) = क्लेद।

क्लेद मलरुप ही होता है। अतः मूत्रविसर्जन = अन्न शुद्धी। मधुर एवं लवण रसों के अतिसेवन से क्लेद वर्धित होता है, जिससे मूत्रवृद्धि अर्थात अनारोग्य की प्राप्ति होती है। इसी लिए रक्त में मधुर एवं लवण रसों का प्रमाण समुचित रखने के लिए इन रसों का सेवन नियंत्रित प्रकार से करना आवश्यक है।

कार्य क्र. २ – मानवी मूत्र विषनाशक होता है।

मानुष मूत्रं तु विषापहम्।

विकृति
(सामान्य विशेष सिद्धांत के आधार पर)

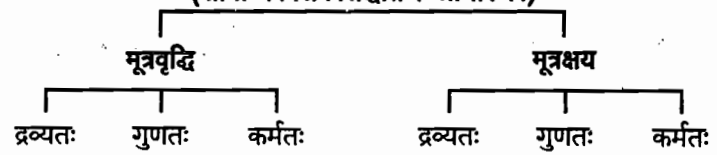

१) **मूत्रवृद्धि**

मूत्रं तु बस्तिनिस्तोदं कृते ऽ पि अकृतसंज्ञम् ।

(बस्तिनिस्तोद - बस्ति प्रदेश में वेदना, कृते ऽ पि अकृत संज्ञा - मूत्रविसर्जन करने पर भी न करने की भावना निर्माण होती है।)

चिकित्सा

मूत्र संग्रहण द्रव्य जैसे - जामुन, वंट, उदुम्बर, पिप्पली, भिलावा (भल्लातक)।

अपथ्य

अत्यम्बुपान, नमक, शर्करा, द्रव पदार्थ अपथ्य होते हैं।

२) **मूत्रक्षय**

मूत्रे ऽ ल्पं मूत्रयेत् कृच्छ्रात विवर्णं स अस्त्रमेव च ।

- अल्पमूत्र - मूत्र की मात्रा कम होना।
- मूत्रकृच्छ्र - सकष्ट मूत्रप्रवृत्ती (Dysuria)

विवर्ण + स अस्त्रमेव - मूत्र का वर्ण बदल जाता है अथवा लाल वर्ण की मूत्रप्रवृत्ती।

चिकित्सा

१) मूत्र विरेचन द्रव्य - गोक्षुर, वृक्षादिनी, दर्भमूल, मुस्ता।

२) मूत्र विरजनीय द्रव्य - जेष्ठमधु, नीलकमल, गहुला, धायटी।

पथ्य

नारियल का पानी, गन्ने का रस, पानी, ककडी, नमक, शर्करा का सेवन करें।

धनिए का पानी, घृत, अवगाह स्वेद भी पथ्यकर होते हैं।

अर्वाचीन पूरक विषयांश

Excretory system

Kidneys, skin, lungs, gastro - intestinal tract, salivary glands and liver are the main channels through which excretion takes place of which again kidney is the main organ.

The urinary system

1) **Function**

The primary function of the urinary system is to regulate the concentration and volume of blood by removing and restoring selected amounts of water and solutes. It also excretes wastes.

2) **Organs of the urinary system**

The kidneys, ureters, urinary bladder and urethra.

Kidneys

(External and internal anatomy)

1) The kidneys are two in number and retro peritoneal organs attached to posterior abdominal wall.
2) Three layers of tissue surround the kidneys - renal capsule, adipose capsule, renal fascia.
3) Internally, the kidneys consist of a cortex, medulla, renal pyramids, renal papillae, renal columns, calyces and renal pelvis.
4) The nephron is the functional unit of the kidneys.
5) The juxta glomerular apparatus (JGA) consists of a glomerular capsule - Bowman's capsule, proximal convoluted tubule, descending limb of the loop of the nephron, loop of nephron - loop of Henle, ascending limb of the loop of the nephron, distal convoluted tubule and collecting tubule.
6) The filtering unit of a nephron is the endothelial - capsular filtration membrane.
7) The extensive flow of blood through the kidney begins in the renal artery and terminates in the renal vein.
8) The nerve supply to the kidney is derived from the renal plexus.

Urine Formation

(अर्वाचीन विज्ञान के अनुसार मूत्र निर्मिती प्रक्रिया)

Nephron is a functional unit of kidney. Following 3 steps are important in excretory function or urine formation.

1) Glomerular filtration
2) Tubular Reabsorption
3) Tubular Secretion

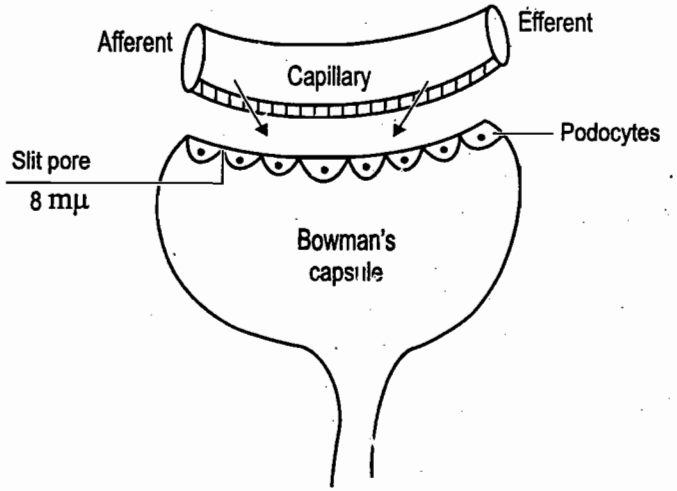

I) Filtration

i) Blood comes from fenestrated capillary

ii) It is filtered from thin lining epithelium of Bowman's capsule.

iii) This epithelium is made up of podocytes. In between two podocytes, slit pore is present measuring 8 mμ. So the particles > 8 mμ will not get filtered.

iv) Also, epithelium of Bowman's capsule is formed by negatively charged 'Glyco-calyx' (wall of carbohydrate and protein) . Hence negatively charged particles due to repelling action will not get filtered. RBC s and plasma proteins are negatively charged. So they do not get filtered. Albumin is of the size 7.8 mμ but, still due to negatively charge they can not get filtered.

v) Kidney disease will be detected earliest by "Albuminuria"

vi) GFR = Glomerular filtration rate = 125 ml. per min.
= 180 lit/day

Filtered urine = 180 lit/day

But excreted urine = 1.5 lit/day

Hence – 99% is reabsorbed.

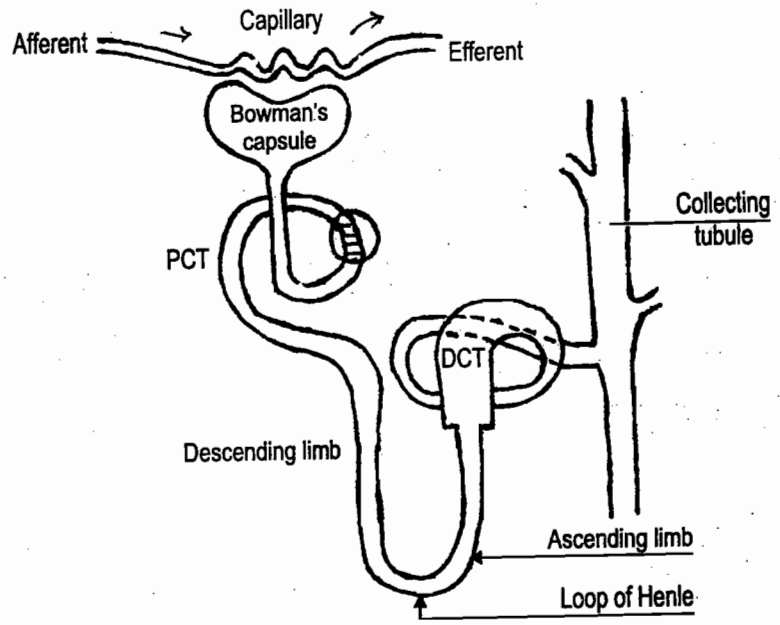

II) Reabsorption

i) 65% is reabsorbed in PCT (Proximal convoluted Tubule)

ii) 15% is reabsorbed in Henle's loop.

iii) 10% is reabsorbed in DCT (Distal convoluted Tubule)

iv) 9% is reabsorbed in CT (collecting tubule)

II-A) Reabsorption in PCT

i) Proximal convoluted tubules are having brush border as a cell lining, Mitochondria and basal channels.

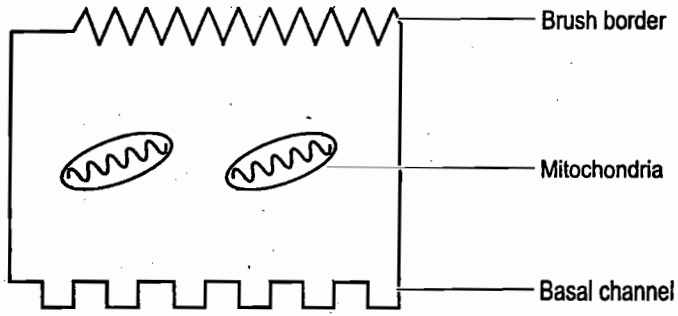

PCT

ii) Due to mitochondria, "Active transport" (with the use of energy) takes place.

iii) So, PCT is a segment for active transport of glucose, amino acids, Na^+, Ca^{++}, K^+ and HCO_3 (Bicarbonate) .
Absorption of H_2O is obligatory process (absorption)

iv) Useful substance only are absorbed but not the waste products like urea and uric acid.

II B) Reabsorption – In the loop of Henle

i) In this region, we get flat epithelium. No energy, no carrier. Hence, water is absorbed through osmosis (i.e. conduction from higher concentration to the lower concentration.)

ii) Practical utility.

a) In the camel, loop of Henle is deep. So more absorption of water takes place.

b) Action of the diuretic drug (मूत्रप्रवृत्ती वर्धक औषध- Lasix tab or inj. – given in the patients of edema (सुजन) – due to Lasix, water reabsorption decreases and so urine output increases. Lasix is used in the patients of C.C.F. (Congestive cardiac failure i.e. R.V.F. (Right Ventricular Failure)

III-C) Reabsorption in D.C.T.

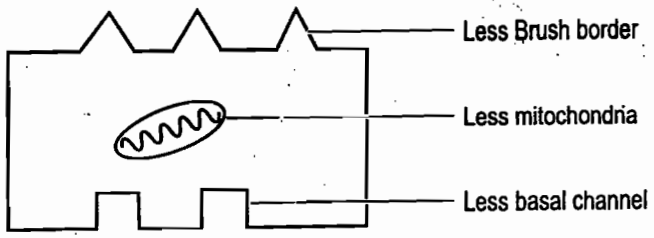

i) In D.C.T. less mitochondria, less brush border and less basal channels. (compare above figure with fig. of PCT)

ii) This is Hormone sensitive segment.

iii) Due to ADH (Antidiuretic Hormone) i.e. vasopressin (secreted by posterior pituitary gland or Neurohypophysis) water is reabsorbed.

iv) But K^+ and H^+ are dangerous to the body – so, they are excreted.

v) In this segment Facultative (शरीर की आवश्यकता समझते हुए) water absorption take place.

II-D) Reabsorption in Collecting Tubule

i) Same activity like D.C.T.

ii) This is also hormone sensitive segment

iii) Action of ADH also occurs in C.T.

iv) Facultative water absorption

III) Tubular Secretion

i) In D.C.T. due to the effect of aldosterone, carrier protein becomes available for Na^+. So, Na^+ is taken back from DCT into the blood. With the exchange of Na^+, K^+ is thrown out of the blood and is carried with the urine.

Note

Excess potassium in the blood can cause cardiac arrhythmia (irregular beating of heart) or cardiac arrest.

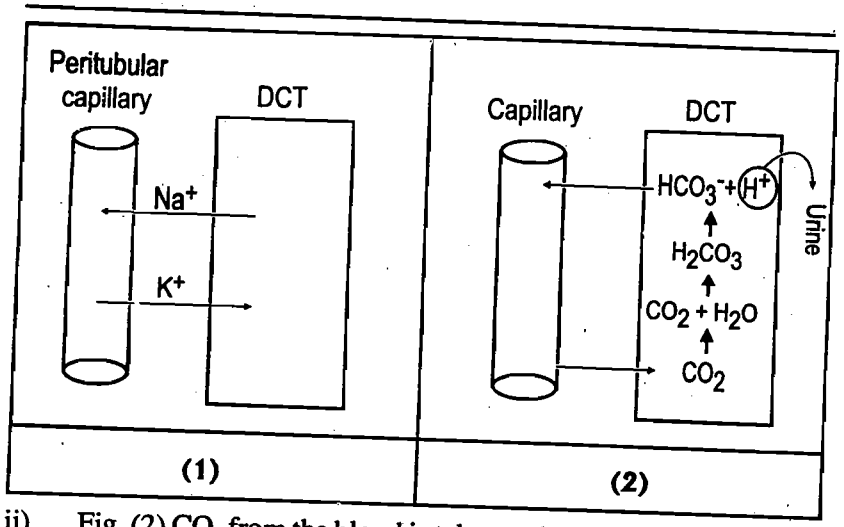

ii) Fig. (2) CO_2 from the blood is taken up by DCT. CO_2 combines with H_2O to form H_2CO_3.

H_2CO_3 dissociates into HCO^{-3} and H^+

HCO^{-3} is reabsorbed into the blood and H^+ is thrown away into the urine.

Note

Because of H^+ ion urine becomes acidic.

Functions of the kidney

1) It excretes waste products especially the nitrogenous and sulphur containing end products of protein metabolism.
2) It helps to maintain the normal H^+ ions concentration of the body fluid and electrolytes.
3) It helps to keep the water balance of the body and thereby plasma volume.
4) It helps to maintain optimum concentration of certain constituents of blood by the process of selective reabsorption.
5) It eliminates drugs and various toxic substances from the body.

6) It manufactures certain new substances like ammonia, hippuric acid and inorganic phosphates.

Ammonia helps in preserving the acid - base equilibrium.

7) It helps in maintaining the osmotic pressure in the blood and the tissues.
8) It helps in the regulation of BP during hypoxia in condition of emergency through the liberation of renin from the juxtaglomerular apparatus.
9) It plays an important role in vit. D metabolism.

Functions of glomeruli

The glomeruli act as ultra filters. They filter all the constituents of plasma except the colloids (proteins and fats)

Ureters

1) The ureters are retro - peritoneal and consist of a mucosa, muscularis and fibrous coat.
2) The ureters transport urine from the renal pelvis to the urinary bladder, primarily by peristalsis.

Urinary bladders

1) The urinary bladder is posterior to the symphysis pubis.
2) Its function is to store urine prior to micturition.
3) Histologically, urinary bladder consists of a mucosa muscularis and a serous coat.

4) Pathology

1) A lack of control over micturition is called incontinence.
2) Failure to void urine completely or normally is referred to as retention.

Urine

Normal human urine is a clear, lemon yellow fluid with or without sediments, frothing up when shaken and the froth being colourless.

	Characteristic	Description
1	Volume	1 - 2 Lit. in 24 hours but varies considerably.
2	Colour	Yellow or Ambar but varies according to concentration and diet.
3	Appearance	Transparent when freshly voided but becomes turbid upon standing.
4	Odor	Aromatic but becomes ammonia - like upon standing.
5	PH (Reaction)	Acidic 4.6 to 8, average 6.0, varies considerably with diet.
6	Specific gravity	It is directly proportional to its concentration. 1.001 to 1.035

Composition of urine

The following is the average composition of 24 hours specimen of urine of an adult man living on ordinary mixed diet.

1) Total amount = 1500 cc

2) Total solids = 60 Gm.

Division

Organic - 35 Gm. **Inorganic - 25 Gm.**

Organic constituents			Inorganic constituents	
Element	Amount		Element	Amount
Urea	30.0 Gm.	1	NaCl	15 Gm.
Creatinine	1.0 Gm.	2	KCl	3.3 Gm.
Uric acid	0.7 Gm.	3	SO_4	2.5 Gm
Hippuric acid	0.7 Gm.	4	PO_4	2.5 Gm.
Indicin	0.01 Gm.	5	NH_3	0.7 Gm.
Acetone bodies	0.04 Gm.	6	Mg^{2+}	0.1 Gm.
		7	Ca^{2+}	0.3 Gm.
		8	Fe	0.05 Gm.
		9	Other substances	0.2 Gm.

Factors affecting the formation of urine

1) Water intake - Directly proportional.

When large quantities of water (1 - 2 Lit.) is taken, diuresis starts after a latent period of about 15 - 30 min.

The flow becomes maximum in the second hour when the output may be as high as 1300 cc / Hr. Then it declines and comes back to normal in about 3 hours time.

2) Intravenous saline injection

If a large volume of saline is given, intravenously diuresis starts after a latent period at a few minutes. It becomes maximum in the second hour and then gradually falls.

3) Drinking saline solution

When about 1 Lit. is taken urine volume may not rise at all. When about 3 Lit. are taken in an hour, moderate degree of diuresis takes place.

4) Effects of salts

a) Increased salt intakes

Experimentally it has been shown that after injection of 28 Gm of NaCl, flow of urine was increased to 120 cc / Hr.

b) Deprivation of salt

This can be produced in man by giving a salt-free diet or by increasing the salt loss by inducing profuse sweating. In such cases it is found that at first both plasm Cl level and Cl excretion in the urine progressively lowered. Later on Cl excretion practically seizes due to complete reabsorption.

5) Effect of water deprivation

a) In adults, the volume of urine per hour is reduced to 30 - 40 cc. If urine volume is further reduced total solid excretion diminishes, so that they accumulate in the blood leading to uremic symptoms.

b) In children, effects of H_2O deprivation are more serious, because at birth the kidney is not functionally developed. Hence in children suffering from diarrhoea, vomitting etc the fluid intake should be kept high.

6) Effect of exercise

It always reduces urine volume.

Micturition

Micturition is the act of emptying the bladder.

Centres of Micturition

1) Cortical 2) Hypothalamic

3) Brain stem 4) Spinal

Nerve supply of bladder and urethra

1) Bladder internal sphincter and proximal urethra

a) Efferent Nerve

Sympathetic fibres arise from the first and second lumbar segment. Parasympathetic fibres are derived from the second and third sacral segments.

b) Afferent nerve

The fibres from these (Bladder etc.) pass along the sympathetic to the first and second lumbar and lower thoracic segment. They also pass into the sacral parasympathetic & enter the spinal cord.

2) External sphincters and distal urethra

The afferent & efferent nerve fibres are supplied by somatic nerve fibres derived from pubic nerve.

स्थूलमल

२) पुरीष

स्थूल पचन के अंततः उत्पन्न दो प्रमुख मलों में से एक है - पुरीष।

- **किट्टम् अन्नस्य विट्मूत्रम् ॥** ... च.वि.१५/१८
- **किट्टं सारश्च तत् पक्वम् अन्नम् संभवति द्विधा।**
  तत्र अच्छं किट्टम् अन्नस्य मूत्रं विद्यात् घनं शकृत्। ... वा.शा.३

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

पर्याय

शकृत् मल, उच्चार, उपवेशन, विट्, विष्ठा, अवस्कर, गूथ, शमल, वर्चस्, वर्चस्क

। मलीनिकरण करनेवाले गुणों के कारण मल कहा जाता है। किट्ट शब्द से 'आहार का असार भाग' यह अर्थ तथा सात धातुओं का भी 'असार भाग' जाना जाता है।

२) स्वरुप, संघटन, गुण

गुद के द्वारा विसर्जित किए जानेवाले घनरुप मल को पुरीष कहा जाता है। मल में घनीभाव न होने पर द्रवांश मल में मिश्रित स्वरूप में होता है और द्रवमल प्रवृत्ती होती है। इस विकृत अवस्था को 'अतिसार' कहते है।

सर्वं द्रव्यं पांचभौतिकम्

तथापि पुरीष में अग्नि एवं वायु प्राधान्य होता है। साथही इसमें 'पार्थिवता' भी होती है।

रूप (वर्ण)

पित्त के कारण पुरीष का प्राकृत वर्ण पीत होता है। अधोग रक्तपित्त, रक्तातिसार अथवा रक्तार्श, रक्तज प्रवाहिका में मांसप्रक्षालनाभ रक्तवर्ण, कामला में (रुद्धपथ) - तिलपिष्ट निभ, शुक्ल, कृष्ण वर्ण विकृति सूचक हैं।

रस

अनुमान परीक्षण के द्वारा - कटु। अन्न का समुचित पचन होने पर पुरीष को कटुत्व प्राप्त होता है। पुरीष का कटु रस, अपान वायु के द्वारा आंत्र का उद्वेजन कर, मलविसर्जन की स्वाभाविक क्रिया में सहायता करता है।

गंध

अल्पगंध यह सम्यक्पाक का लक्षण है, अपितु भृश दुर्गंधी आमनिदर्शक होती है।

अन्य गुण

लघु - अन्नपचन के अंत में सार भाग से धातुपोषण और निःसार अथवा किट्ट भाग से पुरीष की निर्मिती होती है। अतः पिण्डीभूत होने पर भी लघु गुण का होता है और 'अप्सु तरति' अर्थात पानी पर तैरता है। साम पुरीष होने पर 'जल निम्मजति' परीक्षण सहायक होता है।

संघटन

१) अन्न के पचनोत्तर मलांश - पचन में अग्निसंस्कार होने के कारण मूल अन्नपदार्थों का स्वरुप पुरीष द्रव्य में प्रतीत नहीं होता। तथापि समुचित पचन न होने पर ग्रहण किए पदार्थ मूल स्वरुप में ही दिखाई देते हैं अथवा आहार्य द्रव्य का वर्ण आदि सादृशता पुरीष में दिखाई देती है।

२) धातुओं का किट्ट भाग - धातुओं के मलीन भाग भी अन्तःकोष्ठ में आते हैं और गुद के द्वारा पुरीष के साथ बाहर निकलते हैं।

३) रसमल कफ एवं रक्तमल पित्त स्वकार्य सम्पन्न होने पर, मलस्वरुप प्राप्त होने के पश्चात पुरीष के साथही बाहर निकलते हैं।

४) मज्जा धातु के मल के कारण पुरीष को स्निग्धता प्राप्त होकर मलविसर्जन क्रिया सुलभता से होती है।

प्रमाण

पुरीष का प्रमाण ७ अंजली बतलाया गया है।

(२४ घंटों में विसर्जित पुरीष का प्रमाण ?)

३) स्थान

१) पुरीषवह स्त्रोतस

पुरीषवहानां स्त्रोतसां पक्वाशयो मूलम् स्थूलगुदं च ।। ... च.वि.५/७

पुरीष की उत्पत्ति, परिणमन, वहन, उत्सर्जन इन क्रियाओं की दृष्टि से पुरीषवह स्त्रोतस महत्त्वपूर्ण है।

मूलस्थान

पक्वाशय - इस स्थान में पुरीष की उत्पत्ति होती है।

गुद - इस स्थान में संचय (उत्तरगुद) तथा उत्सर्जन क्रिया (अधरगुद) होती है। गुद यह महत्त्वपूर्ण मर्म है।

- **तत्र वातवर्चोनिरसनं स्थूलान्त्रप्रतिबद्धं गुदं नाम मर्म।** ... सु.शा.६
- **उत्तरगुदं यत्र पुरीषम् अवतिष्ठते, येनं तु पुरीषं निष्क्रामति तद् अधर गुदम्।**

... चक्रपाणि च.शा.

अवतिष्ठन एवं निष्क्रमण इन प्रक्रियों के कारण गुद (पायु) महत्त्वपूर्ण कर्मेंद्रिय है।

२) पुरीषधरा कला

उण्डुक से लेकर गुद तक, संपूर्ण पक्वाशय के अंदर पुरीषधराकला होती है।

पंचमी पुरीषधरा नाम, सा अन्तःकोष्ठे मलम् अभिविभजते पक्वाशयस्था ।।
यकृत्समन्तात् कोष्ठं च तथा अन्त्राणि समाश्रिता।
उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला ।। ... सु.शा.४/१७

४) परिणमन

पुरीषवह स्त्रोतस, पुरीषधरा कला के माध्यम से पुरीष निर्मिती तथा उत्सर्जन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। पुरीष परिणमन संदर्भ में पाचक पित्त, समान - अपान - प्राण वायु के भी संदर्भ ज्ञातव्य है।

अ) पाचक पित्त

पित्तं पञ्चात्मकं तत्र पक्व आमाशयमध्यगम् पंचभूतात्मकत्वेऽपि ... ।।
... पचति अन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ।। ... वा.सू.१२/१०

पाचक पित्त के कारण अन्नपचन पूर्ण होता है। सारकिट्ट विभजन समान वायु की प्रेरणा से होता है।

ब) समान वायु

अन्नं गृण्हाति पचति विवेचयति, मुञ्चति ॥ ... अ.ह.सू.१२

उण्डुक में शोष्यमाण अग्नि एवं अपान वायु की सहायता से आहाररस ग्रहणी के द्वारा ग्रहण किया जाता है। द्रवमल तथा घनमल इस प्रकार विवेचन कर पुरीषधराकला के द्वारा घनरुप मल अथवा पुरीष की उत्पत्ति होती है।

विवेचयति रसमूत्रपुरीषाणि।

सो ऽन्नं पचति पञ्जांश्च विशेषान् विविनक्ति हि ॥

पुरीष विसर्जन – अपान के नियंत्रण में होता है।

अपानो अपानगः श्रोणि बस्ति मेढ्र ...।

शुक्रआर्तव शकृत् मूत्र गर्भनिष्क्रमणक्रियः।

पुरीष विसर्जन क्रिया, अपान की प्रेरणा से, गुदसंबंधित दो धमनियों के द्वारा होती है। विशिष्ठ काल तक 'प्राण वायु' के कारण उत्तर गुद में पुरीष का धारण किया जाता है।

तत्पश्चात उत्तर गुद पूर्णतः भर जाने पर कटुरस के कारण उत्तेजना प्राप्त होकर अधर गुद के द्वारा पुरीषविसर्जन किया जाता है।

कतिपय संदर्भों के अनुसार, पुरीष का समुचित काल तक धारण एवं तत्पश्चात उत्सर्जन ये दोनों कार्य अपान के नियंत्रण में होते हैं।

शुक्रमूत्रादिनां वेगकाले कर्षणम्।

अवेगकाले धारणम् ॥ ... सु.नि.१ (डल्हण)

प्रत्यक्ष व्यवहार में, पक्षाघात जैसी व्याधियों में अपने-आप मलमूत्रप्रवृत्ती हो जाती है। अतः संभवतः पुरीषधारण से प्राणवायु भी संबंधित होता है।

विशेष टिप्पणी

प्राण तथा अपान वायु का परस्पर संबंध ज्ञातव्य है।

अपानः कर्षति प्राणं, प्राणो अपाने च कर्षति। ... योगचिंतामणि पृ.१३

व्यवहार में भी, तीव्र श्वास से पीडित रुग्णों में मलावष्टंभ की शिकायत होने पर जब तक मलावष्टंभ दूर नहीं होता, तब तक श्वास में भी कमी नहीं आती। बस्ति, विरेचन के द्वारा अपान का अनुलोमन होते ही 'श्वास' लक्षण कम हो जाता है।

परिणमन काल

आहार सेवन के पश्चात आहाररस की उत्पत्ति एक दिन में होती है और इसी समय किट्ट भाग की निर्मिती होती है। अतः औसतन एक दिन यह परिणमन काल जाना जाता है।

५) पुरीष – कार्य

१) **दोष धातुमला मूलं हि शरीरम् ॥**

दोष, धातुओं के समान 'मल' भी; वृक्ष की जडों के भाँति; शरीर की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय को जिम्मेदार होते हैं। शरीर क्रिया व्यापार में पुरीष का स्थान महत्त्वपूर्ण है। पुरीष विशिष्ठ काल में, विशिष्ठ मात्रा में और विशिष्ठ पद्धति से शरीर से बाहर जाना आवश्यक होता है। इसमें किसी भी स्वरुप में बदलाव होने पर उसका परिणाम, शरीर के अन्य सभी क्रिया व्यापारों पर होता है। व्यवहार में भी किसी भी व्याधि में पुरीष प्राकृत होना (पेट साफ रहना) महत्वपूर्ण माना जाता है।

२) **पुरीष का श्रेष्ठ कार्य है – अवष्टंभन, शरीर को आधार देना।**

अवष्टंभः पुरीषस्य ॥ ... वा.सू.१५/८

पुरीष शरीर को किस प्रकार आधार दे सकता है ?

अ) **या एव अस्थिधराकला सा एव पुरीषधराकला।**

अस्थि शरीर को निश्चित स्वरुप से आधारभूत होते हैं, यह सर्वमान्य है।

ब) 'पुरीष' मल प्राकृत होने पर ही धातुओं का 'धारणात् धातवः' कार्य प्राकृत होता है। पुरीष में विकृति उत्पन्न होने पर (जैसे - मलावष्टंभ) समत्व, समयोगवाहित्व इनमें विकृति उत्पन्न होकर धातुओं के धारण कर्म में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

क) अन्नपचन में विकृति निर्माण होने के कारण सार-किट्ट विभजन बिगडने पर पुरीष विकृति के साथही सार भाग में विकृति उत्पन्न होकर शरीर का धारण (अवष्टंभन) समुचित प्रकार से नहीं होता।

ड) अतिसार की गंभीर अवस्था में अब् धातुक्षय होने पर, जो रुग्ण की अवस्था हो जाती है, उससे भी पुरीष का अवष्टंभन कार्य ज्ञात हो सकता है। इसी लिए राजयक्ष्मा जैसे जीर्ण व्याधि में, पुरीष रक्षण की प्रशस्ति की है।

पुरीष यह मल कुछ मर्यादित कालावधी तक पक्वाशय में (पुरीषधरा में) रहना आवश्यक है। इसका उत्सर्जन अति जलद अथवा अति प्रमाण में होने पर रसादि धातुओं में क्षोभ निर्माण होकर उनका ऱ्हास सत्वर होता है। धातुओं के पुरीष के

द्वारा बाहर निकलनेवाले मल भी कुछ विशिष्ठ कालावधी तक, अर्थात जब तक वे शरीरोपकारक कार्य करते हैं तब तक, शरीर में रहना आवश्यक है। ऐसा न होने पर धातु सत्वर जीर्णावस्था तक पहुँच जाऐंगे और शरीर अवष्टंभन नहीं होगा।

अवष्टंभ का पर्यायवाची शद्ध है - उपस्तंभ।

पुरीषम् उपस्तंभम् वायु अग्नि धारणं च ॥ ... सु.सू.१५/८

पुरीष की प्राकृतावस्था पर ही वायु का गतिनियंत्रण तथा अग्नि का प्राकृत पचन ये कार्य निर्भर हैं। पुरीष की साम्यावस्था बिगडकर वृद्धि/क्षय होने पर स्थानिक और तत्पश्चात सार्वदेहिक वायु तथा अग्नि में बिगाड उत्पन्न हो जाता है, जैसे - अतिसार में आंत्रकूजन (आंत्र की हलचल बढना), अग्निमांद्य (अग्निविकृति) आदि दिखाई देते हैं। मलावष्टंभ में भी आनाह, आटोप (वायु विकृति) ये लक्षण दिखाई देते हैं।

६) पुरीष विकृति

(सामान्य विशेष सिद्धांत के आधार पर)

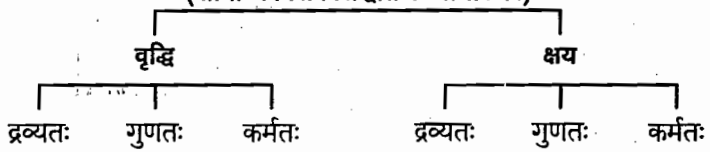

१) पुरीष वृद्धि

कुक्षि आध्मानं आटोपं गौरवं वेदना शकृत् ॥ ... वा.सू.२१/१२

पेट फूलना, पेट से गुडगुड आवाज आना, स्थानिक एवं सार्वदेहिक स्वरुप में जडता तथा वेदना ये लक्षण दिखाई देते हैं। मलावष्टंभ अथवा दूषित आहार ये प्रमुख कारण हैं।

चिकित्सा

वातानुलोमक - कोष्ण जलपान, स्नेहन - स्वेदन, सिद्ध घृत सेवन, एरंडस्नेह, अनुवासन / आस्थापन बस्ति।

२) पुरीष क्षय

पुरीषे वायुरन्त्राणि सशद्धो वेष्ट्यन्निव।

कुक्षौ भ्रमति यात्यूर्ध्वं हृत्पार्श्वे पीडयन् भृशम् ॥ ... वा.सू.१२/२१

धातुक्षयजन्य वातप्रकोप होकर, वायु संचरण, वेदना होती है। क्वचित मल की वृद्धि शरीर सहन कर सकता है, किन्तु मल का क्षय देह के लिए अधिक पीडाकर होता है।

मलोचित त्वाद्देहस्य क्षयो वृद्धेस्तु पीडनः ॥ ... वा.सू.११/१५

चिकित्सा

पुरीष क्षय न होने की दृष्टि से प्रयत्नशील रहें।

पुरीष वर्धक द्रव्य

उडद, चौल, ज्वार की रोटी, तंतुमय पदार्थ, हरी सब्जियां आदि।

Faeces

After the last stage of digestion, after absorption of water solid or semisolid waste part is formed which is called as faeces.

Quantity

Roughly about 150 Gm of solid stool is passed in 24 hours.

Composition

If vegetable course cereals and cellulose are excluded from the diet, the faeces show a fairly constant components as follows -

1) Water - 65 %
2) Solid - 35 %
i) Ash - 15 % (Mainly, Ca, P4, Fe)
ii) Ether soluble substances (Fat) - 15 %
iii) Nitrogen - 5 %
iv) Other - Desquamated epithelial cells, bacteria, mucous, undigested and unabsorbed food.

Reaction

Generally, neutral or acid.

Colour

Due to the presence of Stercobilin, derived from the bile pigments.

Odour

Mainly due to aromatic substances like indole, skatole and also gases like H_2S.

Under normal condition about 500 cc of gas is passed out per day.

Special notes

Cellulose serves the important purpose of increasing the bulk of stool and thus stimulating the movement of large intestine.

Faeces formation

Last stage of digestion in the large intestine

The last stage of digestion occurs through bacterial action and no enzymes are secreted by the colon. Mucus is secreted by the glands of the large intestine, but no enzymes are secreted.

Chyme is prepared for elimination by the action of bacteria.

These bacteria ferment any remaining carbohydrates and release hydrogen, CO_2 and methane gas. These gases contribute to flatus (Gas) in the colon.

They also convert remaining proteins to amino acids and breakdown the amino acids into simpler substances that is indol, skatole, hydrogen sulphide and fatty acids.

Some of the Indol and Skatole is carried of in the faeces and contributes to their order.

The rest are absorbed and transported to the liver where they are converted into less toxic compounds and excreted in the urine. Bacteria also decompose bilirubin into simpler pigments (Stercobilinogen) which gives faeces brown colour.

Several vitamins needed for normal metabolism including some B complex vitamins and Vit. K are synthesized by bacterial action and absorbed.

Absorption and faeces formation

By the time the chyme has remained into large intestine for 3 - 10 Hr. It becomes solid or semisolid as a result of absorption of water and is known as faeces.

Chemically faeces consist of water, inorganic salts, sloughed of epithelial cells from the mucosa of the GI tract, bacteria, products of bacterial decomposition and undigested part of food.

Physiology of daefecation

1) Mass peristaltic movements push faecal matter from sigmoid colon into the rectum.
2) The resulting distension of the rectal wall stimulates pressure - sensitive receptor initiating. Reflex of defecation which results in emptying of the rectum.

Note

The external sphincter is voluntarily controlled. If it is voluntarily relaxed defecation occurs, if it is voluntarily constricted defecation can be postponed. Voluntarily contraction of diaphragm and abdominal muscle aid defecation by increasing the pressure inside the abdomen.

In infants the defecation reflex causes automatic emptying of the rectum, without the voluntary control of the external anal sphincter. In certain instances of spinal cord injury, the reflex is abolished and defecation requires supportive measures such as laxative.

Pathology

1) **Diarrhoea** - means frequent defecation of liquid faeces, caused by increased motility of the intestine. Since chyme passes too quickly through the small intestine and faeces pass too quickly through the large intestine. There is not enough time for

absorption. Vomitting and diarrhoea can result in dehydration and electrolyte imbalance.

2) Constipation - means infrequent or difficult daefecation.

स्थूल मलों में से तीसरा मल–स्वेद

मेद धातु का मल - स्वेद।

त्वचा के रोमकूपों द्वारा बाहर निकलनें वाला जलसदृश द्रवरुप मल।

१) नाम, निरुक्ति, पर्याय

निरुक्ति

स्विद्यते अनेन इति स्वेदः।

स्वेद शद्ब सेंकना, गर्म करना, पकाना, भूनना, बाष्पीकरण इन अर्थों से प्रयुक्त किया जाता है। शरीर में आतप सेवनोत्तर अथवा श्रम के कारण त्वचा के द्वारा जो बाष्परुप उदक बाहर निकलता है, उसे 'स्वेद' कहा जाता है।

यच्चोष्मणा अनुबद्धं लोमकूपेभ्यो निष्पतत् स्वेदशब्दम् वाप्नोति॥

... च.शा.७/१५

पर्याय

स्वेद, घर्म, निदाघ।

२) स्वरुप, संघटन, गुण

स्वेद शद्ब अग्नि एवं उष्णता सूचक है। स्वेद यह उदक अथवा क्लेद का ही एक रुपान्तर है। स्वेद द्रव, स्निग्ध, उष्ण, विस्रगंधी धातुमल है। स्निग्धत्व यह प्रत्यक्ष एवं स्पर्शगामी गुण है। स्वेद के संघटन में उदकांश की मात्रा अधिक होती है, यह प्रत्यक्ष है। चरकाचार्य ने भी शरीरत्वचा से उत्सर्जित स्वेद उदकमय होता है, ऐसा वर्णन किया है। साथही मेद का स्निग्धांश भी उसे प्राप्त होता है। घृत आदि स्निग्ध द्रव्यों का जिस प्रकार उष्णता के कारण विलयन होता है, वे बहने लगते हैं, उसी प्रकार कोष्ण जल प्राशन, उष्ण द्रव्य सेवन, सेंक, धूप में घूमने से, व्यायाम के पश्चात शरीर गर्म होने के कारण स्वेद प्रवृत्ती बढ जाती है। अर्थात उदकांश के साथ स्नेहद्रव्य भी स्वेद में उपस्थित होता है। मेदस्वी व्यक्तियों में अपेक्षाकृत अधिक स्वेदोत्पत्ति होती है। अतः मेद एवं स्वेद का कार्यकारण भाव होता है, यह ज्ञात हो सकता है।

स्वेद गुण

द्रव, स्निग्ध, उष्ण, विस्रगंधी।

३) स्थान

मुख्य स्थान - त्वचा। उत्पत्ति, परिणमन, वहन, उत्सर्जन ये प्रमुख घटनाएं स्वेदवह स्त्रोतस में सम्पन्न होती हैं।

स्वेदवह स्त्रोतसां मेदोमूलं रोमकूपाश्च॥ **... च.वि.५**

त्वचा में उपस्थित सूक्ष्म छिद्र (रोमकूप) तथा मेद ये स्वेदवह स्त्रोतस के मूलस्थान बताए हैं।

आम - पक्वाशयस्थित समान वायु के वर्णन में, स्वेदवह एवं अंबुवह स्त्रोतस में स्थित समानवायु, इस प्रकार से उसका वर्णन किया गया है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि आमाशय पक्वाशय के समीप स्वेदवह स्त्रोतस होते हैं। इस स्वेदवह स्त्रोतस के द्वारा पोषक स्वेद की निर्मिती होकर, उसके कारण त्वक्गत स्वेद का पोषण होता है, ऐसा कहा जा सकता है।

अष्टांग संग्रह में व्यानवायु का कार्य 'स्वेदअसृक स्त्रावण' इस प्रकार बताया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि स्वेदवह स्त्रोतस में उत्पन्न हुए स्वेदमल का वहन कर त्वचा से बाहर निकालने का कार्य व्यानवायु के अधिपत्य (नियंत्रण) में होता है। व्यानवायु यह कार्य तिर्यक्गामी धमनियों के द्वारा करता है।

तिर्यग्गतानां धमनीनां मुखानि रोमकूपप्रतिबद्धानि।

येः स्वेदमभिवहन्ति॥ **... सु.शा.९/९**

आश्रयाश्रयी संबंध

पित्त दोष रक्त तथा स्वेद के भी आश्रय से रहता है। स्वेद यह पित्त का एक स्थान है। शरीर में पित्त वर्धित होने पर वह स्वेद से मिश्रित होकर त्वचा के द्वारा पित्त की उष्णता तथा पित्त बाहर निकलते हैं। पित्त प्रकोप कारणों से पित्तवृद्धि होती है। स्वेदवह स्त्रोतस अधिक कार्यकारी हो जाते हैं और इसी कारणवश अधिक स्वेद त्वचा के द्वारा बाहर निकलता है। पित्तप्रकृति व्यक्ति में पित्त के द्रव तथा विस्र गुणों के कारण स्वभावतः अति स्वेदप्रवृत्ती तथा दुर्गंध दिखाई देते हैं।

४) परिणमन

त्रिधा परिणमन के दौरान पोषक मेद से स्थायी मेद की और उसी समय मल स्वरुप में स्वेद की भी उत्पत्ति होती है।

५) स्वेद के कार्य

१) शरीरान्तर्गत जल अर्थात आर्द्रता की मात्रा संतुलित रखने का कार्य स्वेद के द्वारा किया जाता है।

स्वेदस्य क्लेदविधृतिः ॥ **... वा.सू.११**

शरीरस्थ जल का नियोजन करने का कार्य स्वेदवह स्त्रोतस करते हैं, जैसे - मेदोधातु में द्रवमल अथवा क्लेद अधिकता से होता है, जिसे कम करने की दृष्टि से मेदोरोग में स्वेदप्रवृत्ती अधिक होती है।

२) शरीरान्तर्गत जल के साथही उष्णता नियंत्रण का कार्य भी स्वेद के कारण होता है, जैसे - उष्ण वातावरण में, पित्तज्वर में, स्वेदवह स्त्रोतस खल कर, शरीर की अनावश्यक उष्णता बाहर निकाली जाती है।

३) त्वचा का आरोग्य बनाए रखना - स्वेद के कारण त्वचा आर्द्र, मृदु, स्निग्ध बनी रहती है। अपने स्निग्ध एवं क्लिन्न गुणों के कारण स्वेद बाहर निकलते हुए त्वचा को भी ये गुण प्रदान करता है, जिससे त्वचा मृदु तथा नाजुक (सुकुमार) बनी रहती है।

स्वेदः क्लेदत्वकसौकुमार्यकृत ॥ **... सु.सू.१५/८**

४) केशविधृति - स्वेद के अभाव में त्वचा शुष्क एवं रुक्ष होकर वातवृद्धि होती है, त्वचा स्फुटित (छालेदार/दरारयुक्त) होने लगती है। इससे त्वक्स्थित लोम क्षतिग्रस्त होते हैं। त्वक्स्थित केशों (रोमों) को बल प्रदान कर यथास्थिति में बनाए रखने का कार्य स्वेद करता है।

स्वेदस्य केशविधृतिः ॥ पाठभेदः ॥

स्वेद क्षीण होने पर त्वक्स्थित लोम झडने लगते हैं।

६) स्वेद विकृति

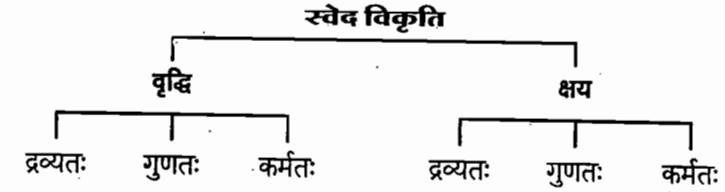

स्वेदवह स्त्रोतस निम्न कारणों से दुष्ट होता है

व्यायामात अतिसंन्तापात् शीतोष्णक्रम सेवनात स्वेदवाहिनि दुष्यन्ति क्रोधशोकभयैस्तथा ॥

१) स्वेदवृद्धि

स्वेदवृद्धि में, अधिक पसीना आता है और ठीक से सफाई न करने पर शरीर दुर्गंध तथा खुजली उत्पन्न होती है।

स्वेदो ऽतिस्वेददौर्गंध्यकण्डुः। **... वा.सू.११/१४**

चिकित्सा

स्वेदवृद्धि में पितशामक उपचार करें। अति तीखें, अम्ल, लवण व उष्ण गुणधर्म के पित्त प्रकोपक पदार्थ अपथ्य होते हैं। पित्त प्रकोपक विहार, जैसे - धूप में अधिक घूमना, अतिक्रोध टालने चाहिए। शतावरी कल्प दो चम्मच एक कप दूध के साथ सुबह-शाम लें। साथही चंद्रकला रस दो गोलियां एक चम्मच प्रवालयुक्त गुलकंद के साथ लें। कुछ रुग्णों में मेदधातु तथा उदक धातु पर कार्यकारी गोक्षुरादि गुग्गुल जैसे औषधों से भी उत्तम लाभ होता है। बाह्यतः चंदन, लोध्र चूर्ण का भी उद्वर्तन स्वरुप में उपयोग किया जा सकता है।

२) स्वेदक्षय

इस अवस्था में पसीना कम आता है अथवा बिल्कुल ही नहीं आता। त्वचा शुष्क हो जाती है, उसमें स्फुटीरता उत्पन्न होती है, जिसके कारण त्वक्स्थित केश झडने लगते हैं, कठिन हो जाते हैं, स्पर्शज्ञान का अभाव होता है।

स्वेदे रोमच्युति स्तब्धरोमता स्फुटनं त्वचः। **... वा.सू.११/१२**

चिकित्सा

अग्नि या अनग्नि स्वरुप का स्वेद दें। अनग्नि स्वेद निम्न स्वरुप में दिया जा सकता है - व्यायाम, उष्णसदन, क्रोध, गुरुप्रावरणम्, क्षुधा, बहुपानम्, उपनाह, आहव, आतपः।

धातु - मल

१) रस धातु का मल - कफ

रस का संपूर्ण शरीर में वहन होने के दौरान रसवह स्त्रोतस के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वहन मार्ग से, समय-समय पर तत्रस्थ धातु पोषक अंश बाहर निकलता है। यह अंश मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र का पोषण करने के लिए रसवह स्त्रोतस के द्वारा उपयोग में लाया जाता है। अर्थात यह धातु पोषक अंश कफ निश्चितही उपयोगी होता है। **अपितु केवल रसवह से (रसवह मार्ग से) दूर जाने वाला, अतः उसे 'रसमल किट्ट' कहा गया है।**

किट्टात ... । श्लेष्माणः पुष्यन्ति ॥ **... च.सू.२९/३**

कुछ अभ्यासकों के अनुसार, रसमल कफ मुख्यतः मुख, गल, श्वासमार्ग, गुद, मूत्र, अपत्य मार्ग इन स्थानों में विशेष रुप से कार्यरत होता है। अतः ये अंग आर्द्र बने रहते हैं और उनके व्यापार सुव्यवस्थित प्रकार से चलते रहते हैं। क्वचित मुख तथा गल स्थित कफ अन्न के साथ उदर में प्रवेश करता है और पुरीष के द्वारा निष्कासित किया जाता है।

२) रक्त का मल – पित्त

रक्तवह स्त्रोतस से बाहर निकलकर वर्ण, स्वरुप बदलकर अन्नसदृश घटकों से संबंधित पचन-परिणमन कार्य में सहायता करने वाला घटक (पित्त) 'रक्त' के स्वरुप में पुनः उपयोगी न होने के कारण ही इस घटक (पित्तदोष) को रक्त मल कहा गया है। कुछ अभ्यासकों के अनुसार, रक्त के जीर्ण अथवा मलीन घटकों से निर्मित पित्त यकृत में पित्ताशय में संचित किया जाता है। इस मलपित्त का शरीर से बाहर उत्सर्जन होना आवश्यक होता है और उसका निष्कासन मार्ग है - आंत्र। लघ्वांत्र से यह पित्त अन्न के साथ पक्व होकर पक्वाशय में प्रवेश करता है और पुरीष के साथ बाहर निकलता है। इस पित्त के कारण पुरीष को पित्त वर्ण प्राप्त होता है। सर गुण के कारण पुरीषविसर्जन कार्य में सहायता होती है। मल विसर्जन कार्य में पित्त का कटु गुण सहायक होता है।

अत्यंत महत्त्वपूर्ण आशंका

त्रिदोषों में से 'कफ, पित्त ये दोष' और 'रसमल, रक्तमल इस स्वरुप के कफ, पित्त ये घटक' इनमें कोई विभेद है ?

सैद्धांतिक दृष्टी से विचार करने पर, दोनों संदर्भों में कफ, पित्त एक ही हैं। इनमें होने वाला अंतर समझने के लिए अ.सं.शा. ८/६-१२ इस संदर्भ के द्वारा प्राकृत एवं वैकृत दोष इस संकल्पना का गहराई से आकलन करना आवश्यक है।

तथा केचित् आहुः - द्विविधा वातादयः प्राकृता वैकृताः च।

तत्र प्राकृताः सप्तविधायाः प्रकृते हेतुभूताः शरीरैकजन्मातः।

ते शरीर धारणाद् धातु संज्ञाः। वैकृतास्तु गर्भादभिनिः सृतस्य आहारस्य मलाः संभवंती। प्राकृतेषु अवरोहन्ति। ते कालादिवशेन स्वप्रमाणवृद्धिक्षययोगाद् देहम् अनुगृण्हान्ति दूषयान्ति च॥ ... **अ.सं.शा ८/६**

सारांश

रसमल कफ तथा रक्तमल पित्त ये आहार के द्वारा पोषण होनेवाले वैकृत (विकृत नहीं) द[illegible]ष हैं।

३) मांस धातु का मल – ख मल

पोषक मांस से स्थायी अथवा पोष्य मांसधातु निर्माण होने के दौरान एक घन किट्ट निर्माण होता है, जिसे ख मल कहा जाता है।

'ख' = छिद्र, रिक्त स्थान, अवकाश अथवा [illegible]तस। स्रोतस्

त्वचा के रोमरंध्र अथवा रोमकूप, कर्ण, नेत्र, [illegible]सिका, मुख तथा जननेंद्रिय इन अंगों में स्थित किट्ट को ख मल भी कहा गया हैं। इन मलों [illegible] 'दूषिका' कहते हैं। ख मल शरीर से बाहर निकलते हुए अथवा व्यक्त होते हुए संबंधित [illegible] का उपलेपन कर संरक्षण का कार्य करता है। इन मलों के अभाव में ये स्थान (त्वचा, [illegible], कान) शुष्क होकर वहां वेदनाएं निर्माण होंगी। त्वक्स्थित ख मल के कारण बाह्य जी[illegible]ओं का शरीर में सहसा प्रवेश नहीं हो सकता। नासास्थित मलों के कारण गंधज्ञान सम्[illegible] रुप से होता है, वायु का आदान-प्रदान सम्यक् होता है। कर्णस्थित मल अप[illegible] कटु [illegible]धर्म के कारण कृमी-कीटकों का प्रतिरोध करता है।

ख मल का अर्थ है - बहिर्मुख स्त्रोतसों में स्[illegible] मल।

७ स्त्रोतस - मुख (आस्य) १, नासा २, कर्ण २, नेत्र २।

अन्य स्त्रोतस - प्रजनन, लोमकूप (असंख्य) [illegible] के अतिरिक्त लोमकूप के स्थान के मल को मांस मल समझें)

चरक तथा वाग्भटाचार्य ने 'ख मल को' - [illegible] मल बताया है। शार्ङ्गधर ने केवल कर्णविवर को मांसमल कहा है। शार्ङ्गधर के टीक[illegible] ने कर्ण को उपलक्षण मान कर नासामल को भी मांसमल माना है।

विभिन्न नामकरण

मुख -	आस्यमल	-	शार्ङ्गधर के अनुसार यह मेद[illegible]मल है।
	दन्तमल	-	दन्त कर्दम या दंतशर्करा - [illegible]।
	जिव्हामल	-	काकूलक।
	मुखगत जल	-	आस्यास्त्राव, सृणीका, स्यन्द[illegible]लाला, कफ, चूचिका, प्रसेक, ष्ठीवन।
	नासामल	-	सिंघाणक - घ्राणमल।
	अक्षिमल	-	अक्षिकर्दम, पिल्ल, दूषीका, पि[illegible]कोलिका।
	कर्णमल	-	कर्ण विट्, कर्णगूथ, पिंजूष।
	प्रजननमल	-	पुष्पिका, पुष्पिक्षातु, लिंगमलम् (शब्द कोश)।

४) मेदधातु मल - स्वेद

इसका विस्तृत वर्णन पहले ही किया गया है।

५) अस्थिधातु मल

नख, केश, लोम, श्मश्रू।

नख

१) पर्याय

करज - उत्पत्ति स्थान - सूचक; करशूल अथवा भुजाकण्ट = तीक्ष्णाग्रता तथा कठिनता, सविषता, घातकता सूचक; पुनर्भत अथवा पुनर्नव = कटने पर पुनः उत्पत्ति सूचक; कामांकुश - कामक्रीडा में रतिप्रवर्तन, प्रवर्धन सूचक; महाराज - रक्तवर्ण या अधिक चमक।

२) स्वरुप

पार्थिव अवयव। खरता, काठिन्य अधिक प्रमाण में, अतः पितृज भाव है। वृद्धिशील सचेतन द्रव्य। तथापि नखाग्र वेदनारहित होते हैं, जिन्हें हर पाँच-छह दिन के पश्चात काटना चाहिए। नीचनख (नख छोटे रखना) यह सद्वृत्त का एक नियम है।

प्राकृत नख

स्थिराः वृत्ता स्निग्धास्ताम्रास्तुंगा कूर्माकारा करजाः। ... च.शा

दोष / धातु प्रबलता के अनुसार नख का स्वरुप

१)	वात प्रकृति	-	परुष - अल्प - रुक्ष नख, खादति दन्तान।
२)	पित्त प्रकृति	-	ताम्र नख।
३)	कफ़ प्रकृति	-	दीर्घ नख।
४)	रक्त सारता	-	ताम्र नख, श्रीमद्, भ्राजिष्णु।
५)	मेद सारता	-	स्निग्ध, चमकीले (सतेज) नख।
६)	अस्थिसार	-	बडे, स्थूल नख, कठीन।
७)	शुक्रसार	-	स्निग्ध, दृढ, श्वेत।

नख - स्वरुप

कछुए की पीठ के समान उन्नत, अग्रभाग में वृत्त, स्निग्ध दृढ (स्थिर)। नख के अग्रपर्व में रक्तपूर्णता एवं मांस पुष्टता होने के कारण नख परिपुष्ट तथा चमकीले (सतेज) होते हैं।

नख के स्वरुप में विकृति

शुक्तिवत् अवनत, गड्ढे जैसा, रुक्ष, शुष्क, परुष, विवर्ण। पांडु में - शुक्तिवत् रुक्ष, हरित नीलाभ, गर्तयुक्त। नखभेद अथवा स्फुटित - वात के नानात्मज व्याधि, चिप्प एवं कुनख क्षुद्र रोग।

वर्ण

नख में ईषत् श्वेत, ईषत पीत किन्तु अधिक प्रमाण में रक्त, ताम्र वर्ण प्राकृततः दिखाई देते हैं। अपितु कामला में नख हरिद्राभ पीत हो जाते हैं।

- वात के कारण - श्यावकृष्ण, अरुण वर्ण तथा परुषता।
- पित्त के कारण - पीतता, हरितता, हारिद्रता।
- कफ के कारण - शुक्लता, श्वेतवर्ण।
- विषस्पर्श के कारण - स्फुटितता, छोटे बिंदु अथवा पुष्प सदृश वर्ण परिवर्तन दिखाई देता है।

ये सभी विकृति सूचक हैं।

उपयोग

- मनुष्य में - उँगलियों के अग्रपर्व का संरक्षण करने के लिए।
- अन्य देहधारियों में - शिकार पर हमला तथा भक्षक से संरक्षण करने के लिए।

अस्थिमल - केश, लोम

१) पर्याय

बाल, कच, चिकुर, कुन्तल, शिरोरुह, मूर्धज, अस्त्र (त्वस्त्र) तीथवाक। शरीर पर स्थित सूक्ष्म बालों को लोम, रोम, तनुरुह कहा जाता हैं। पुरुषों में चेहरे पर स्थित बालों को श्मश्रु और होंठों पर स्थित बालों को मासूरी (मूँछ) कहा जाता हैं।

२) व्युत्पत्ति

क्लिश्यते बध्यते, क्लिश विबाधायाम्, केशते - जिन्हें बाँधा जाता है, जो सिर पर स्थित होते हैं। शिरसि रोहति - शिरोरुह, मूर्धनि जायते - मूर्धज। रोम - लोम रोहति रुयते, लूयते वा (रु शब्दे, लूञ् - छेदने - मनिन्।)

३) स्थान

त्वचा का कुछ भाग लोमरहित, कुछ अंश लोमयुक्त और कुछ अंश दीर्घघन लोम (केश) युक्त होता है। मनुष्यों में हस्त-पादतल लोमरहित होते हैं। आयुर्वेद में अतिलोम तथा अलोम इ। दोनों स्थितियों का समावेश 'अष्टौनिंदित' श्रेणि में किया गया हैं।

४) उत्पत्ति

अस्थि धात्वग्नि के द्वारा, त्रिधापरिणमन के दौरान किट्ट स्वरुप में केश, लोम, नख की उत्पत्ति होती है। गर्भावस्था के ६ से ७ वें मास में सिर पर केश निर्माण होते हैं (चरक) । पूर्णकालिक प्रसव समय में, गर्भ के सिर पर दो इंच लंबे केश प्राकृतता निदर्शक हैं। आयु परिणाम के प्रभाव के कारण यौवनावस्था में जातव्यंजन लक्षण स्वरुप में, दाढी-मूँछ, बगल तथा गुह्यांग में केशउत्पत्ति होती है।

५) स्वरुप

प्रशस्त केश - एकैकजा मृदवो अल्पाः स्निग्धाः सुबद्धमूलाः कृष्णाः केश प्रशस्यते ॥ ... च.शा

पार्थिव घटक तथा पितृज भाव। गुरु, खर, कठिन अंग दुर्जरता, अपाच्यता, झडना पकना इनका अभाव होने से गुरु गुण बतलाया है। मनुष्य की मृत्यु के पश्चात भी केश नहीं सडते। केश-लोम वृद्धिशील होते हैं। अर्थात चेतन लक्षणयुक्त हैं, अपितु संज्ञाहीन हैं। इसी लिए वेदनारहित शारीर द्रव्यों में उनकी गणना की जाती हैं।

लोम जिन त्वक्रंध्रों से बाहर निकलते हैं उन्हें 'रोमकूप' कहा जाता हैं।

त्वक् सारता (रस सारता) होने पर त्वचा में मृदु, अल्प, सूक्ष्म, सुकुमार, स्निग्ध श्लक्ष्ण, प्रसन्न किन्तु गंभीर मूल युक्त लोम दिखाई देते हैं। वात प्रकृति में - केश, लोम अल्प, रुक्ष, परुष; पित्त प्रकृति में - अल्प, मृदु, पिंग - कपिल वर्णी तथा खालित्य - पालित्य युक्त, केशयुक्त स्थानों में पित्त एवं स्वेदाधिक्य के कारण दुर्गंधी; कफप्रकृति में केश - स्निग्ध, घन, दीर्घ अतिनील, कुटिल (घने) प्राकृत जानने चाहिए।

केश - दोष

दीर्घ रोमता, कर्कश रोमता, संकीर्ण रोमता।

संख्या

केशलोम श्मश्रु की संख्या - २९, ९५६ (चरक), साडेतीन करोड (मनुस्मृती) वर्णित है।

६) चौल, मुंडन या चूडा कर्म संस्कार

आयु के तीसरे वर्ष में, क्यों कि इस समय तक शिरोस्थि पूर्णतः जुड जाते हैं। स्वस्थवृत्त में केश कल्पना तथा केश संप्रसाधन की आवश्यकता बतलाई गई है।

७) केश-स्वास्थ्य वर्धक उपक्रम

मूर्धतैल के चार प्रकार - शिरोभ्यंग, पिचूधारण, शिरोधारा, शिरोबस्ति, सार्वदेहिक स्नेहाभ्यंग, नस्य।

नासा हि शिरसो द्वारम्।

धूमपान। व्याधि उपचार - अति लोम में - लोम शातन या लोम अपहरण (औषध लेप्न या क्षार प्रयोग)

८) मज्जा धातु का मल - त्वचा, अक्षि, पुरीष स्नेह

नेत्र, त्वचा एवं पुरीष में उपस्थित स्नेहांश यह मज्जा का मल है (चरक, वाग्भट)। सुश्रुत ने पुरीष में उपस्थित स्निग्धांश का उल्लेख मज्जामल में नहीं किया। साथही नेत्र में किट्ट यह मज्जामल है, ऐसा सुश्रुत कहते है।

मज्जा मल के कारण त्वचा एवं नेत्र में वात प्रकोप नहीं होता और स्निग्धांश के संपर्क के कारण ये अवयव चिरकाल कार्यरत रह सकते हैं। मज्जा का मल पुरीष के द्वारा बाहर निकलने के दौरान स्निग्धांश प्रदान कर पुरीष विसर्जन क्रिया प्राकृत रुप से सम्पन्न की जाती है।

मज्जादुष्टी के (अति उष्णता आदि के कारण) परिणाम स्वरुप मज्जामल क्षय होने पर त्वचा, नेत्र, पुरीष इन स्थानों में रुक्षता निर्माण होती है।

९) शुक्रमल - ओज

इसका विस्तारपूर्वक वर्णन पहले ही किया गया है।

प्रकरण १३

इंद्रिय विज्ञानम्

अभ्यासक्रम - पेपर २ - भाग ख

मुद्दा २ - पंचज्ञानेंद्रियाणां वर्णनम्, तेषां अधिष्ठानम्, रुप, रस,गंध आदि ज्ञानग्रहण क्रियावर्णनम्, प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियस्य केंद्रस्थानस्य परिचयः (And Study of Sensory Organs, Centre and Sensory Pathways.)

इंद्रिय पंचपंचक

संदर्भ - च. सू. ८/३ - ७ से ११, १४

	ज्ञानेंद्रिय	अधिष्ठान	इंद्रिय द्रव्य	विशेष गुण	इंद्रियबुद्धि
१	श्रोत्र	कर्ण	आकाश	शद्ध	श्रावण
२	स्पर्शन	त्वचा	वायु	स्पर्श	स्पर्शन्
३	चक्षु	अक्षि	तेज	रुप	चाक्षुष
४	रसन	जिह्वा	आप	रस	रासन
५	घ्राण	नासिका	पृथ्वी	गंध	घ्राणज

इंद्रिय प्रकार (११)

ज्ञानेंद्रिय (५) — कर्मेंद्रिय (५) — उभयेंद्रिय - मन

१) **५ ज्ञानेंद्रिय कौनसे हैं ?**

चक्षुः श्रोत्रं घ्राणं रसनं स्पर्शनम् इति पंचेन्द्रियाणि। ... च.सू.८

२) **संघटन**

प्रत्येक इंद्रिय पांचभौतिक होता है, तथापि एकेक महाभूत का आधिक्य होता है और तदनुसार, तद्-तद् महाभूत के गुणों का ही, अर्थ का ही ग्रहण संबंधित इंद्रिय कर सकते हैं।

- **एकैकाधियुक्तानि खादीनाम् इन्द्रियाणि तु।** ... च.शा.१/२४

- **इंद्रियेणिन्द्रियार्थं तु स्वं स्वं गृण्हाति मानवः।**
  नियतः तुल्ययोनित्वात् न अन्येन अन्यम् इति स्थितिः॥ ... सु.शा.१

३) **आहार का इंद्रिय कार्यक्षमता पर परिणाम**

इंद्रिय पांचभौतिक होने के कारण पांचभौतिक आहारों का उन पर सामान्य विशेष सिद्धांत के अनुसार परिणाम होता है।

अन्नम् इष्टं हि उपहितम् इष्टैर्गन्धादिभिः पृथक्।
देहे प्रीणाति गन्धादीन् घ्राणादीन् इंद्रियाणि च॥ ... च.चि.१५

४) **सूक्ष्म केंद्र एवं अधिष्ठान**

कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासा ये इंद्रियों के बाह्य अधिष्ठान हैं और सूक्ष्म इंद्रिय मस्तिष्क में स्थित होते हैं।

शिरसि च इंद्रियाणि इंद्रियप्राणवहानि च स्रोतांसि सूर्यम् इव गभस्तयः संश्रितानि॥ ... च.वि.९/४

इंद्रिय कार्य विकृति में है, विकृति अधिष्ठान में है अथवा सूक्ष्म इंद्रिय में है, यह सुनिश्चित करना आवश्यक होता है।

५) **दोष एवं इंद्रिय**

- प्राणवायु का स्थान - 'प्राणोऽत्र मूर्धगः।
- प्राणवायु का कार्य - 'इंद्रिय - चित्त' धृक् है।

इंद्रियों के स्नेहन, पोषण तथा स्वास्थ्य रक्षण का कार्य 'तर्पक कफ' करता है।

अक्ष तर्पणात् तर्पकः।

(अक्ष अर्थात इंद्रिय)

५ ज्ञानेंद्रियों का संक्षिप्त परिचय

१) श्रोत्र - कर्ण

निर्मिती आकाश महाभूत से अतः 'शद्ध' ग्रहण का कार्य। श्रोत्र यह वात का स्थान है, अतः स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए तिलतैल और बाधिर्य के लिए बिल्वतेल से कर्णपूरण अति उत्तम।

शब्द लहरों के तरंग - कर्ण पटल - प्रत्येक कान में २ शद्धवह धमनियां - प्रस्पंदन प्राणवायु प्रेरणा से सूक्ष्म ज्ञानेंद्रियों की ओर - मज्जा के द्वारा मन को शद्ध का ज्ञान।

शद्ध छटा - मृदुता, स्निग्धता, गंभीरता, कर्कशता।

२) स्पर्शनेंद्रिय - त्वक्

'त्वच् - संवरणे' इस प्रकार शरीर को व्याप्त करने वाला इस प्रकार का स्पर्शनेंद्रिय (त्वचा) है। यह स्पर्शनेंद्रिय अन्य ४ इंद्रियों को (श्रोत्र, चक्षु, रसना, घ्राण) भी व्याप्त करता है।

स्पर्शनेंद्रिय सर्वेन्द्रियव्यापी है।

तत्र एकं स्पर्शनेन्द्रियं इंद्रियाणां इंद्रियव्यापकं, चेतः समवायि ... ॥

... च.सू.११/४०

स्पर्शनेंद्रियों की निर्मिती वायु महाभूत अधिक्य से होने के कारण 'स्पर्श' इस अर्थ का ज्ञान मन को कराया जाता है। इसमें त्वक्गत तिर्यक् धमनियां, सूक्ष्मातिसूक्ष्म शाखाएं सहायक होती हैं।

स्पर्शनेंद्रिय के द्वारा कौनसा ज्ञान होता है ?

स्पर्शनेंद्रिय विज्ञेयाः शीत - उष्ण, श्लक्ष्ण - कर्कश, मृदु - कठिन तु आदयः स्पर्श विशेषाः ॥ **... सु.सू.१५**

ज्ञानप्राप्ति में किसकी सहायता होती है ?

१) प्राणवायु की प्रेरणा से - स्पर्श संवेदना मन तक।

२) व्यानवायु के द्वारा - प्रतिक्रिया। (स्पर्शानुसार उस भाग का, रक्तवाहिनियों का आकुंचन, प्रसारण आदि।)

३) भ्राजक पित्त के द्वारा - 'स्पर्श' ज्ञान का, संवेदनाओं का अथवा त्वक् स्थित पदार्थों का पचन।

स्पर्शनेंद्रिय के फायदे

संबंधित अवयव को सुख-दुःख की अनुभूती होती है, जिससे वह अवयव संरक्षण की दृष्टि से सहायता कर सकता है। (जैसे - मुँह में भात के साथ आये हुए कंकड की अनुभूति, गविनियों में मूत्राश्मरी की अनुभूति, आँखों में प्रविष्ट धूलीकणों की अनुभूति आदि सभी स्पर्शनेंद्रिय के कारण ही संभव हैं।)

स्पर्शनेंद्रिय का अधिष्ठान त्वचा। इसका अध्ययन हमने पहले ही किया है।

३) चक्षुरेंद्रिय - नेत्र

रुपग्रहण कार्य सम्पन्न करने के लिए, तेज महाभूतप्रधान चक्षुरेंद्रिय की योजना मानवी शरीर में की गई है।

रुप के द्वारा किन विषयों का ज्ञान होता है ?

वर्ण (७) - शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिल, चित्र तथा द्रव्यों के परिमाण (आकार), स्निग्धता / रुक्षता आदि।

रुपग्रहणार्थ रचना

प्रत्येक नेत्र में १ - १, इस प्रकार रुपग्रहण करनेवाली दो धमनियां, (उर्ध्वगामी धमनियों की शाखाएं) होती हैं।

दोषधातु संदर्भ

१) प्राणवायु की प्रेरणा से - धमनियां रुप ग्रहण तथा मन तक वहन करती हैं।

२) व्यान के कारण - उन्मेष, निमेष (नेत्र खुलना एवं बंद होना)।

३) उदान के कारण - अन्तःकरण के भाव, भावनाए नेत्र के द्वारा प्रतीत।

४) आलोचक पित्त - रुप आलोचनतः स्मृतम् ॥

रक्तसार व्यक्ति - अक्षि - स्निग्ध, रक्तवर्ण, श्रीमद् भ्राजिष्णुः।

मांससार व्यक्ति - अक्षि - स्थिर, शुभ, मांसोपचित।

मेदसार व्यक्ति - नेत्र - विशेषतः स्नेहो।

मज्जासार व्यक्ति - महानेत्रं।

शुक्रसार व्यक्ति - सौम्यप्रेक्षिणः, क्षीरपूर्णलोचना इव।

४) रसनेंद्रिय - जिह्वा

रसग्रहण करनेवाला, जलमहाभूतप्रधान, रसनेंद्रिय (आप्य जिह्वा) है।

जिह्वा उत्पत्ति

कफ शोणितमांसानां सारो जिव्हा प्रजायते ॥ **... सु शा. ४**

जिह्वा के भाग - जिह्वाग्र, जिह्वामूल (रसना बंधन)।

प्राकृतिक जिह्वा - आरक्त, श्लेष्मल, लंबी, पतली।

षट् रस - मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय।

ज्ञानप्राप्ती किस प्रकार होती है ?

रसग्रहण करनेवाली दो धमनियां होती हैं, जिनके अग्रभाग सर्व जिव्हा व्याप्त होते हैं। अन्न - जिव्हा संबंध - संवेदनाओं का ज्ञान प्राणवायु के द्वारा मन को कराया जाता है।

ज्ञान के लिए सहायता

बोधको रसनास्थानी। बोधको रसबोधनात्। ... बोधक कफ

टिप्पणि – त्वचा में स्पर्शनेंद्रिय व्याप्ती के कारण ही अन्न के साथ प्रविष्ट तीव्र संवेदना उत्पादक घटकों का (कंकड, केश आदि) सत्वर ज्ञान होकर अन्नमार्ग का रक्षण किया जाता है।

५) घ्राणेंद्रिय – नासा

गंधज्ञान करने वाला पृथ्वी महाभूतप्रधान इंद्रिय।

रचना विशेष

स्वाभाविक नासा

४ अंगुल लंबी, सीधी, बडी, सुखपूर्वक श्वासोच्छ्वास करने योग्य, सीधी अस्थि युक्त, प्राकृत गंधज्ञान करानेवाली। गंधग्रहण करनेवाली फणा नामक धमनियों की शाखाए नासा में फैली हुई होती हैं। कर्ण, नेत्र, गल, शिर की धमनियां नासा में एकत्रित होती हैं, उस स्थान को श्रृंगाटक मर्म कहा जाता है। मांस धातु का ख मल नासा के स्थान में दिखाई देता है।

गंधज्ञान प्रकार

सुगंध, दुर्गंध।

गंधज्ञान किस प्रकार होता है ?

नासा की त्वचा के द्वारा संवेदनाओं का मन के द्वारा वहन प्राणवायु की प्रेरणा से होता है।

स्वास्थ रक्षणार्थ प्रतिदिन किया जाने वाला प्रतिमर्श नस्य (२ बूँद) नासा के द्वारा ही किया जाता है (नासा हि शिरसो द्वारं।); एवञ्च,

उर्ध्वजत्रुविकारेषु विशेषात् नस्यम् इष्यते॥

प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय के द्वारा ज्ञानग्रहण प्रक्रिया किस प्रकार होती है ?

इसका सर्वसमावेशक सूत्र निम्न प्रकार से बताया जा सकता है।

१) **आत्मा मनसः संयुज्यते ...।**

२) **मनः इंद्रियेण ...।**

३) **इंद्रियम् अर्थेन ...।**

४) **ततः ज्ञानम्॥**

उपरोक्त श्रृङ्खला में कहीं भी अपूर्णता/विकृति होने पर ज्ञानप्राप्ती नहीं होती।

व्यावहारिक महत्त्व

इंद्रिय एवं अर्थ का प्राकृत संबंध (सम्यक् योग) स्वास्थ्यरक्षणार्थ परमावश्यक है। 'असात्म्य - इंद्रियार्थ संयोग' यह व्याधि निर्मिती का एक महत्वपूर्ण कारण है। वर्तमान काल में अति- मिथ्या योग के अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं, जैसे - ध्वनी प्रदूषण यह श्रोत्रेंद्रियों का अति-मिथ्यायोग, धूल, मिट्टी, धूर यह स्पशनेंद्रियों की दृष्टि से और फास्ट फूड रसनेंद्रियों की दृष्टि से हानिकारक होते हैं। इनका हानिकारक परिणाम केवल तद्-तद् इंद्रियों तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके दुष्परिणाम समस्त शरीर तथा मन पर भी होते हैं। इसी लिए इंद्रियों के स्वास्थ्य का विशेष रक्षण करना आवश्यक है।

ज्ञानेंद्रिय ज्ञान ग्रहण प्रक्रिया के संदर्भ में अर्वाचीन पूरक विषयांश

Sensations

What are sensations ?

Sensations are feelings aroused by change of environment.

Classification

1) **General Sensations -** superficial, deep, visceral

2) **Special Sensations -** Hearing, Vision, Taste, Smell.

Definition of tract

A tract may be defined as a bundle of fibres carrying one or a group of motor or sensory impulses in the C. N. S.

1) **Hearing - Anatomy**

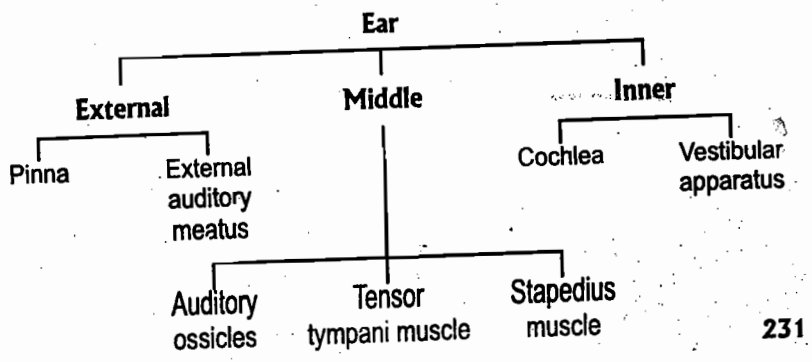

Properties of sound

Pitch, loudness, quality. (The unit of loudness is called decibel. e.g.- faintest audible sound - 0 decibel, whisper at 4 ft. - 20 D, Average office = 40 D, Noisy street 60 - 80 D, Limit of endurance = 130 D) ! Range of hearing = 20, 000 to 25, 000 vibrations / sec.

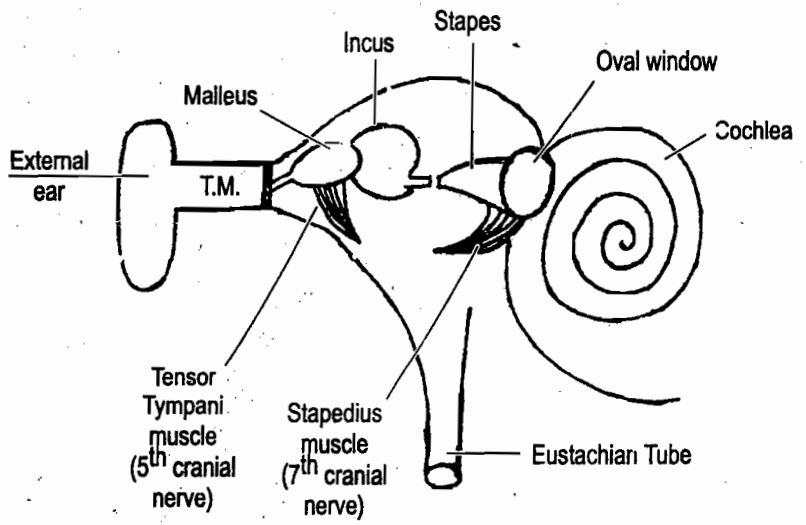

Ear

- Tympanic membrane amplifies the sound 22 times
- Audiometry – The instrument to check the hearing problem.
- T.B. में streptomycin Injection दिया जाता है, जिसके कारण वृद्धों में hearing problem निर्माण होता है, कम सुनाई देता है।

  Due to air pollution degeneration of cilia take place.

Structure of the Cochlea

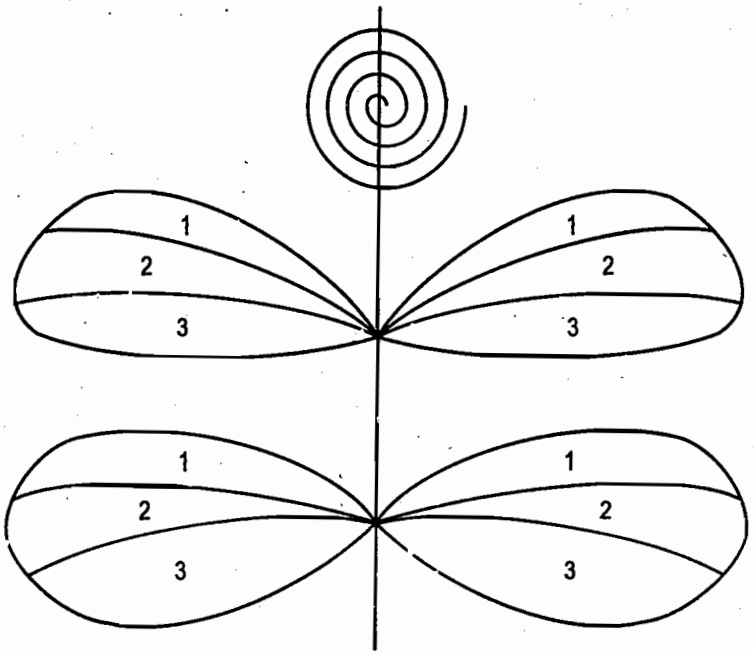

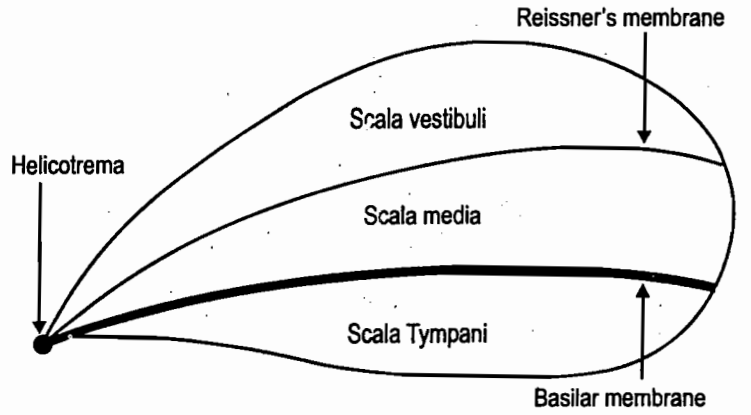

Auditory Pathway (शब्द ग्रहण प्रक्रिया)

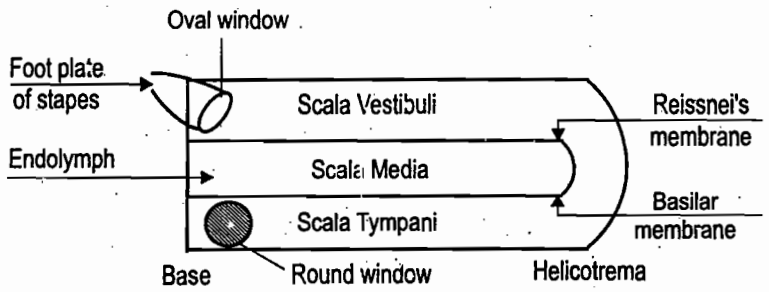

Cochlea

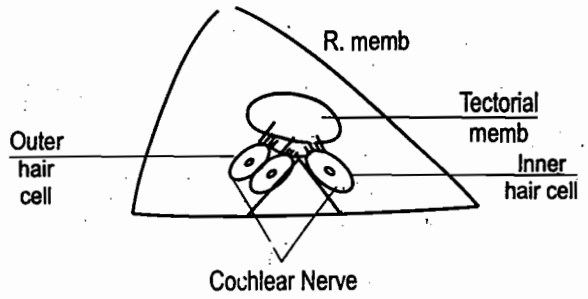

Organ of Corti (Present on Basilar membrane)

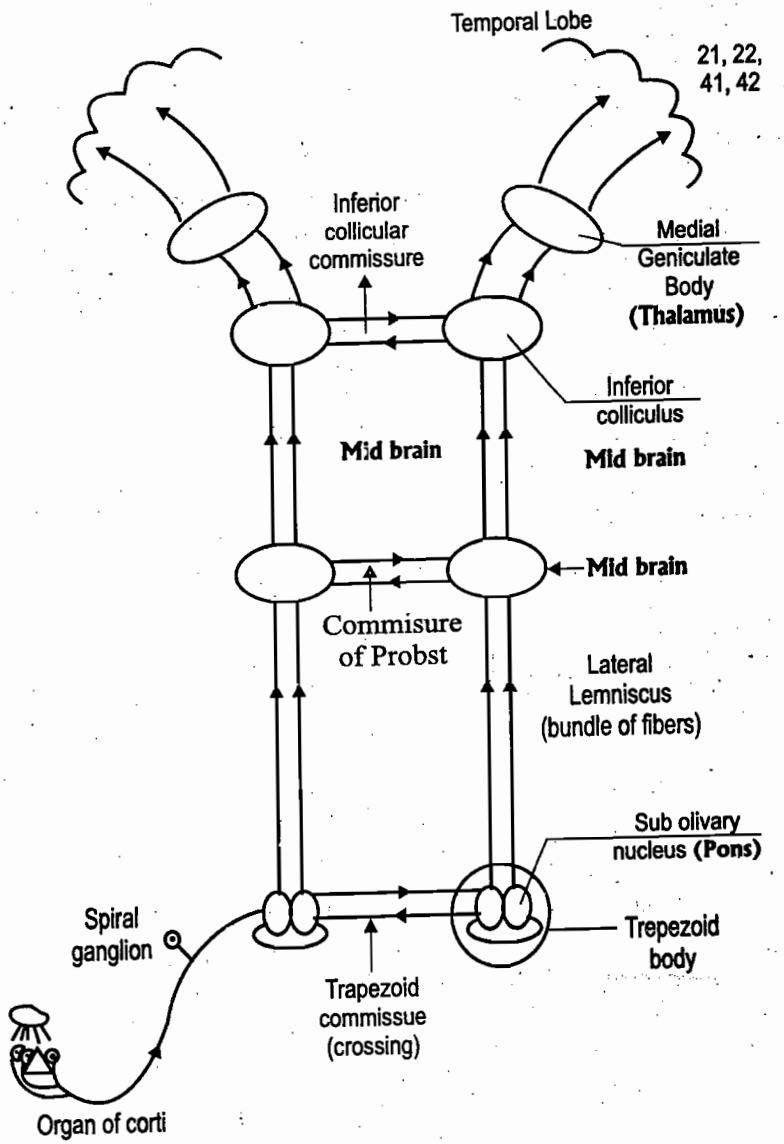

Auditory Pathway

1) Main causes of deafness

1) Congenital – जन्मजात विकृति
2) Traumatic injury
3) Side effect of drug – औषधियों का दुष्परिणाम (Injection streptomycin for T.B.)
4) Sound pollution (Traffic police, industrial worker, - damage to the cilia of the cells in the organ of Corti)

2) Important functions of Middle ear

i) Impendeance matching = AC > BC

AC – Air conduction

BC – Bone conduction

ii) Tympanic membrane, **amplifies** the sound 22 times, to overcome the inertia of cochlear fluid (Perilymph and Endolymph) .

iii) Attenuation Reflex

This is protective reflex against the loud sound to avoid the damage to cochlea.

When loud sound waves hit on tympanic membrane, Tensor Tympani and stapedius muscle undergo reflex contraction. Ossicular chain is made rigid. Excess movement of foot plate of stapes is avoided and cochlear damage does not take place

iv) Sound waves after vibrating ossicular chain in the middle ear, reach to oval window. It then passes through cochlea from oval window, towards round window through perilymph.

vi) Cochlea is three-dimensional tube with 3 cavities and two membranes. The apex is called as 'Helicotrema'

Sound waves create the up and down movements of basilar membrane. On basilar membrane, sound wave frequencies are coded from 20 HZ to 20,000 HZ.

Basilar membrane can identify the specific pitch of sound. This is called as **'Place principle'**.

Reissner's membrane, do not have the "Receptors" for sound wave.

vi) Organ of Corti

is responsible for acceptance of sound waves and transmition of these waves to cochlear nerve. Organ of corti are present in basilar membrane.

Organ of corti is consist of outer and inner hair cell.

Hairs are embedded in gelatinous "Tectorial membrane". Hair or cilia do the friction on tectorial membrane and Neurotransmitter GABA is liberated from hair cell.

GABA = Gamma Amino Butyric Acid

Due to depolarization, 8th cochlear nerve is stimulated.

3) Cochlear nerve and transmission of auditory impulse.

i) Cochlear nerve starts from organ of corti
ii) From organ of corti up to the pons = 1st order Neuron
iii) From pons up to the midbrain = 2nd order Neuron
iv) From midbrain up to the thalamus = 3rd order Neuron.
v) From thalamus up to the temporal lobe of the cortex = 4th order Neuron.

4) Important locations in the pathway and their position

	Location	Position
i	Organ of corti	Cochlea in the internal ear
ii	Superior Olivary nucleus	Pons
iii	Nucleus of lateral lemniscus	Midbrain
iv	Inferior colliculus	Midbrain
v	M.G.B.	Thalamus
vi	Association areas (21,22) and primary auditory areas (41,42)	Temporal lobe of cerebral cortex

5) Names of crossings of fibers

i) Trapezoid commissure (Pons)
ii) Commissure of Probst (Midbrain)
iii) Inferior colliculus commissure (Midbrain)

6) About the centers

i) Primary auditory centers (Area 41, 42)

Situated in superior part of temporal lobe near lateral cerebral sulcus.

These centers give information about basic characteristic of sound (Pitch and Rhythm)

ii) Auditory association areas (Area 21, 22)

They are situated inferior and posterior to primary auditory area. These centers determine

a) Whether the sound is speech, music or song.

b) It also gives the information about the meaning of speech by translating works into thoughts.

Applied part - 2 types of deafness

a) Conductive deafness

Interference with the passage of sound waves through the external and middle ear.

b) Nerve deafness

Interference of transmission of impulses by the auditory nerve.

Tests of hearing

1) Rinne's test. 2) Weber's test.

2) Second pathway

Superficial sensations

Path of touch

Tactile corpuscles ⇒ Thicker medullated fibres in the sensory nerves ⇒ posterior root ⇒ spinal cord.

Here, touch fibres become divided into two parts -

a) Epicritic part passes through the tracts of Goll and Burdach.

b) Protopathic part passes through the ventral spinothalamic tract.

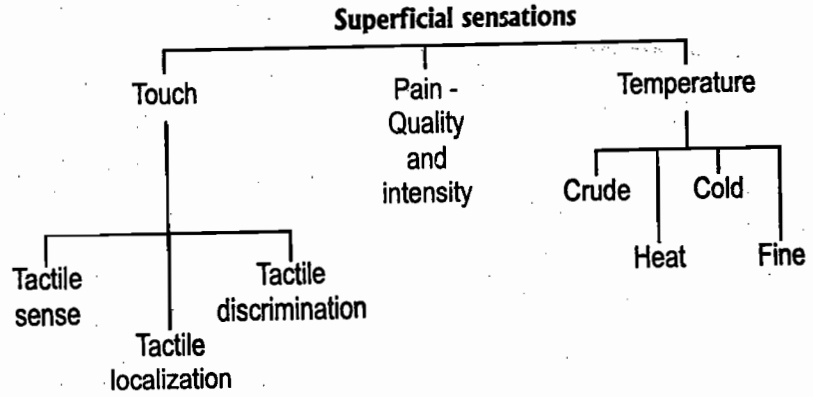

Dorsal Column tract (स्पर्श-संवेदना वहन)

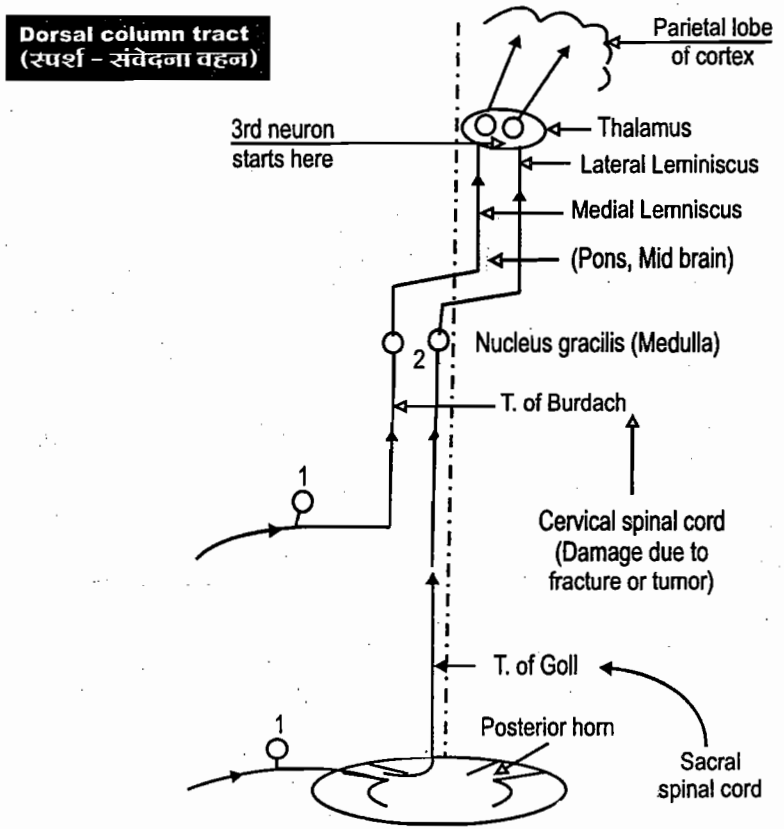

Functions of Dorsal Column Tract

i) Fine touch
ii) Tactile Localization
iii) Tactile Discrimination
iv) Stereognosis
v) Vibration
vi) Joint position
vii) Muscle movement sense

Dorsal Column Tract

1) Tract of Goll

This is formed by axons of dorsal root ganglia in **sacral spinal cord.**

- These axons relay the impulses at Nucleus gracilis (in Medulla oblongata). Here 1st order neuron ends and 2nd order Neuron begins.
- Then axons cross to opposite side and ascend up through brain stem, via lateral Lemniscus.
- Fibers relay the impulse to ventro basal Nucleus of thalamus.
- From here 3rd order neuron begins and axon terminates in parietal lobe of sensory cortex.

2) Tract of Burdach

is formed by axons of dorsal root ganglia in **cervical spinal cord.**

- These dorsal root ganglia give 1st order neuron – This tract travel on the same side of spinal cord and relay at nucleus cuneatus

  Here 1st order neuron ends and 2nd order neuron begins.
- Now axons cross to opposite side and ascend up through brain stem via Medial Lemniscus.
- Fibers relay in ventro basal Nucleus of thalamus.

Spino thalamic Tract (स्पर्श-संवेदना वहन)

From here 3rd order neuron begins and axon terminates in parietal lobe of cortex.

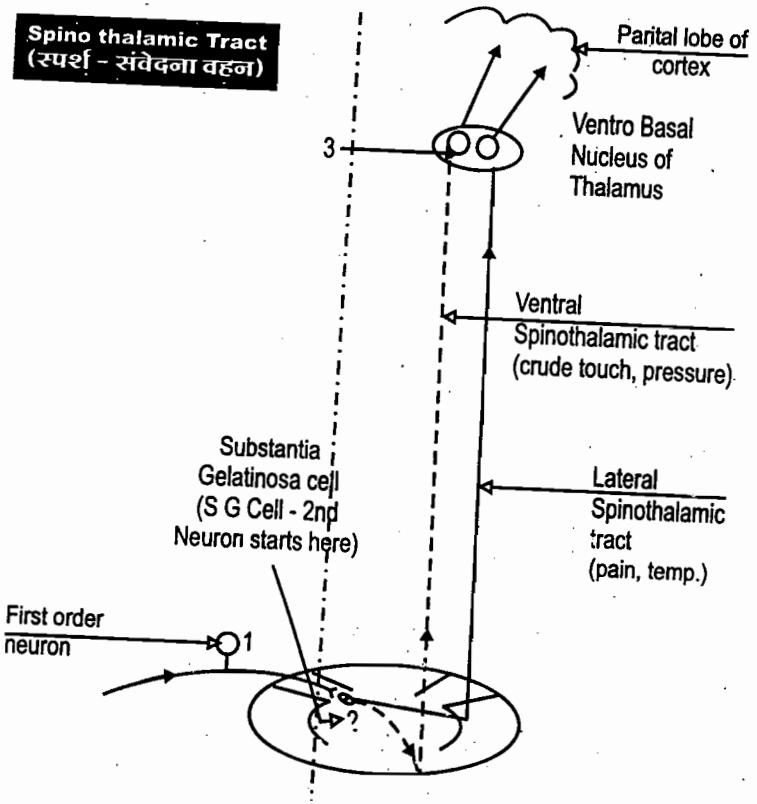

Functions of spinothalamic tract

All crude sensations are carried (स्पर्श ग्रहण प्रक्रिया)

i) Ventral tract – Crude touch, pressure

ii) Lateral tract – Pain and Temperature

Functions of Dorsal Column Tract

1) **Fine touch** – Specific touch, like pin prick

2) **Tactile localization** – ability to localize point of stimulus.

3) **Stereognosis** – To identify familiar object (For e.g. Pen. Pencil, key) by closing eyes

4) **Tactile discrimination** – ability to differentiate two points of stimuli (tested by Esthesiometer)

5) **Vibration sense** – tested by vibrating tuning fork (100 HZ) (on joint)

6) **Joint position sense and Muscle movement**

Sense – (Propreoseptiv sensation)

Useful in day to day life for climbing, walking, sitting.

Pathology

Ataxia =, Loss of coordination,
especially during walking or during standing.

Sensory Ataxsia

The patient is not able to stand or walk with closed eyes.

Various tests of coordination

a) Finger – nose test

b) Knee – heel test

c) Straight line walking test

d) Romberg's test (The patient is asked to stand with closed eyes)

Note

The doctor should able to differentiate between sensory and motor ataxia (संतुलन बिगडना). In sensory ataxia, the patient will get problem only after closing eyes. In Motor ataxia, all the tests will be +ve (Test of coordination), whether you close the eyes or whether you do not close the eyes.

Causes

Test of coordination will be abnormal, with the closed eyes, when the dorsal column tract is damaged bilaterally due to

a) Syphilis of nervous system (Tabes dorsalis)

b) Tumour (Benign or Malignant)

Spino-thalamic Tract

1) Type

a) Lateral spinothalamic tract
(Starts from lateral part of spinal cord)

b) Ventral spinothalamic tract
(Starts from ventral part of spinal cord)

2) Three specialties of this tract

i) Fibers from right and left side of body cross each other at the level of spinal cord only.

ii) Tracts are named, according to their starting point in the spinal cord.

iii) Most of the crude types of sensations are perceived at the level of Thalamus only. So the name of the tract is 'Spinothalamic Tract

3) Pathway

- Tracts are formed by clongated axon of dorsal root ganglia in spina cord.
- They act as 1st ordered neuron.
- They relay to the interneurons, called as 'substantia Gelatinosa cell (SG cells) . They act as 2nd ordered neuron.
- They give axon, which cross the opposite side and then ascend upwards through Medulla, pons, and midbrain and finally terminate into ventrobasal nucleus of thalamus. Most of the

crude sensations are appreciated at the level of thalamus only.

- Very few fibers go upward, as a 3rd ordered neuron to the sensory area in the parietal lobe of the cerebral cortex.

4) Pathology

i) This tract is damaged due to the tumours pressing on the spinal cord.

ii) If tracts are damaged in spinal cord, crude sensations are loosed below the site on the opposite side of body.

3) Third pathway - Path of vision

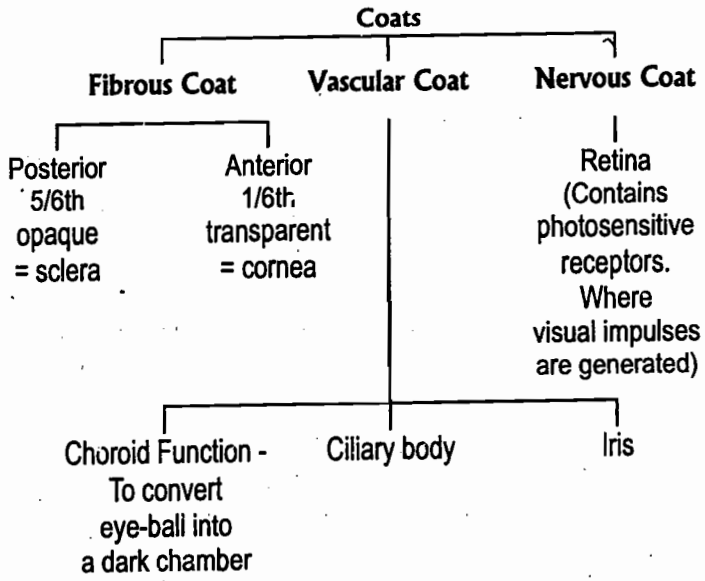

Vision - Anatomy

Human eye - ball is roughly spherical. The optic nerve enters the eye - ball, through the optic disc.

Conjunctiva

Thin stratified mucous membrane. Function is protection & lubrication.

Lacrimal Apparatus

Lacrimal gland - almond shaped racemose gland and function of tears is to keep the exposed surface moist.

The interior of eye - ball is divided into two compartments by a partition. Centre of this partition = Lens. Anterior compartment contains - Aqueous Humour. Posterior compartment contains = vitreous Humour. Intra ocular pressure = 25 - 30 mm of Hg. The pressure is measured with the help of Tonometer. In Glaucoma, the pressure becomes high.

Refractive media of the eye - ball -

The eye - ball acts as a camera. 4 media are

1) Cornea. 2) Aqueous humour.

3) Crystalline lens. 4) Vitreous Humour.

Errors of refraction

Hyper metropia	Myopia
(Long sightedness)	(Short sightedness)
Can see distant objects but not near ones.	Can see near objects but not distant ones.
Correction by convex lens.	Correction by concave glasses.

Photoreceptors of retina

Rods	Cones
(Dim light vision, No colour vision)	Bright light vision Colour vision and acuity of vision.

Retina can be examined by Ophthalmoscope.

Layers of Retina

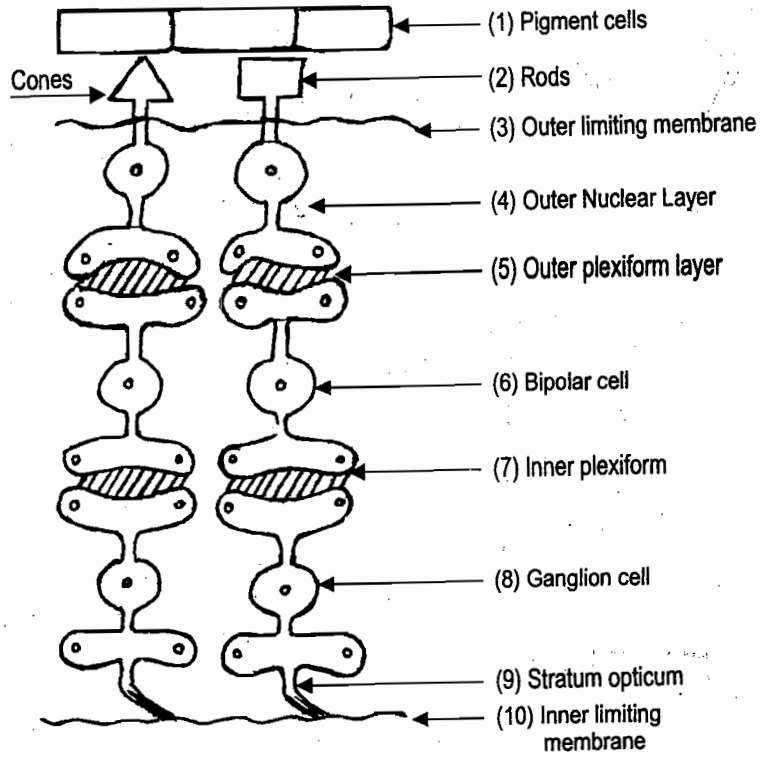

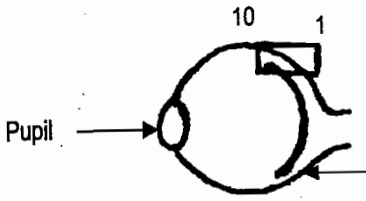

Arrangement of layers from No. 10 to No. 1

How conduction takes place?

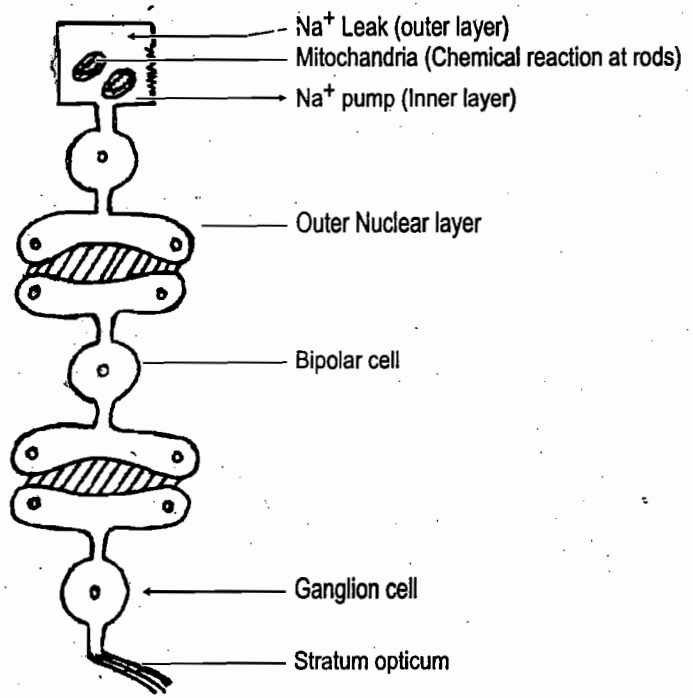

रुप ग्रहण प्रक्रिया (Optic pathway)

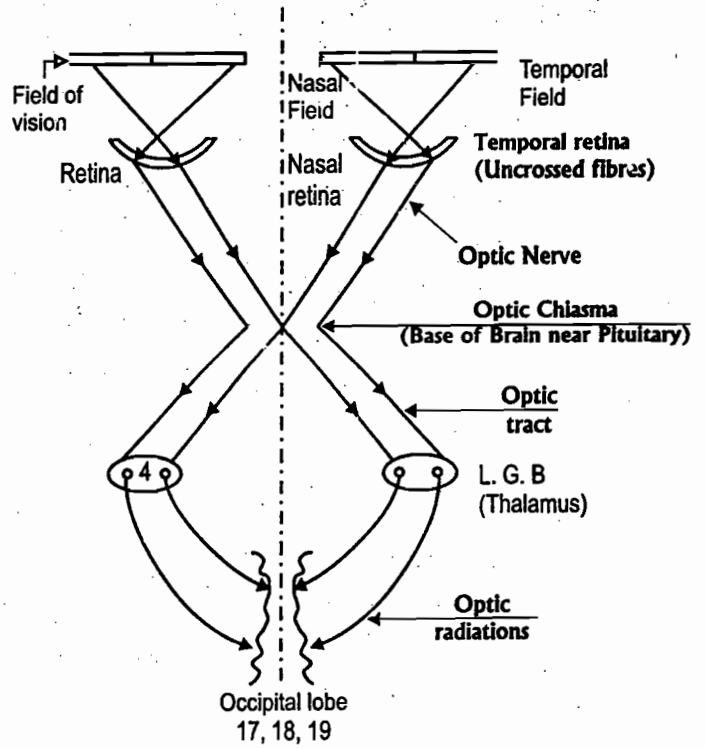

L.G.B. Lateral Geniculate body

Thalamus is also called as 'Relay Centre.

Optic Pathway

1) Ten layers of Retina

1)	Pigment cells	2)	Rods & cones
3)	Outer limiting membrane	4)	Outer nuclear layer
5)	Outer plexiform layer	6)	Bipolar cell
7)	Inner plexiform layer	8)	Ganglion cells
9)	Stratum opticum	10)	Inner limiting membrane.

2) Hyperpolarization

Hyperpolarization is the main cause for stimulation of optic pathway

i) When the light rays come in contact with pigment cells (Which are sensitive to light) rods and cones get stimulated.

ii) In the rods, there is continuous Na+ leakage from outer segment and Na+ pump from inner segment.

iii) Due to light rays **Rhodopsin** enzyme in the rods get decomposed. So that Na^+ leak stops but Na^+ pump continues.

iv) Naturally, more positive ions get outside of the cell. More negativity occurs, inside the cell. (This situation is called Hyperpolarization)

v) This hyperpolarization is the main cause for nerve conduction in optic pathway.

vi) After the layer of rods and cones, nerve conduction takes place through synapses with the effect of Neurotransmitter.

vii) Finally, at the layer of ganglion cells potential difference is converted into Action potential (P.D. is converted into A.P.)

viii) Lastly, from stratum opticum, optic nerve is formed. It comes out of retina and proceed towards visual centers (17, 18, 19) in occipital lobe of the brain.

3) Actual optic pathway

i) In the eye, there is crossing of fibers from temporal to nasal side of retina.

ii) Fibers from temporal side of field of vision of right and left eye cross each other in the brain. **(Fibers from the nasal field of vision do not cross each other.)**

iii) Crossing of the fibers occur at the base of brain, near pituitary gland.

iv) This crossing is called as **Optic chiasma.**

v) Crossed and uncrossed fibers, then reach to the thalamus (At L.G.B. → Lateral Geniculate Body)

vi) From thalamus, fibers reach to the occipital lobe of the cortex, at visual or optic centers. (No. 17, 18, 19)

4) Names of path

a) From retina to optic chiasma – Optic Nerve.

b) From optic chiasma to thalamus – Optic tract.

c) From L.G.B. to cortex – Optic radiations

4) Fourth pathway

Path of taste impulses

Tongue is mainly concerned with taste sensation. Taste buds are end organs of taste.

Four primary tastes

sweet and salty = At the tip,

sour = at the sides and

bitter = back of tongue.

Circumvallate & fungiform papillae contain taste buds. The substances to be tasted must be in solution. Normally, saliva acts as the solvent.

Gustatory Pathway (रस ग्रहण प्रक्रिया)

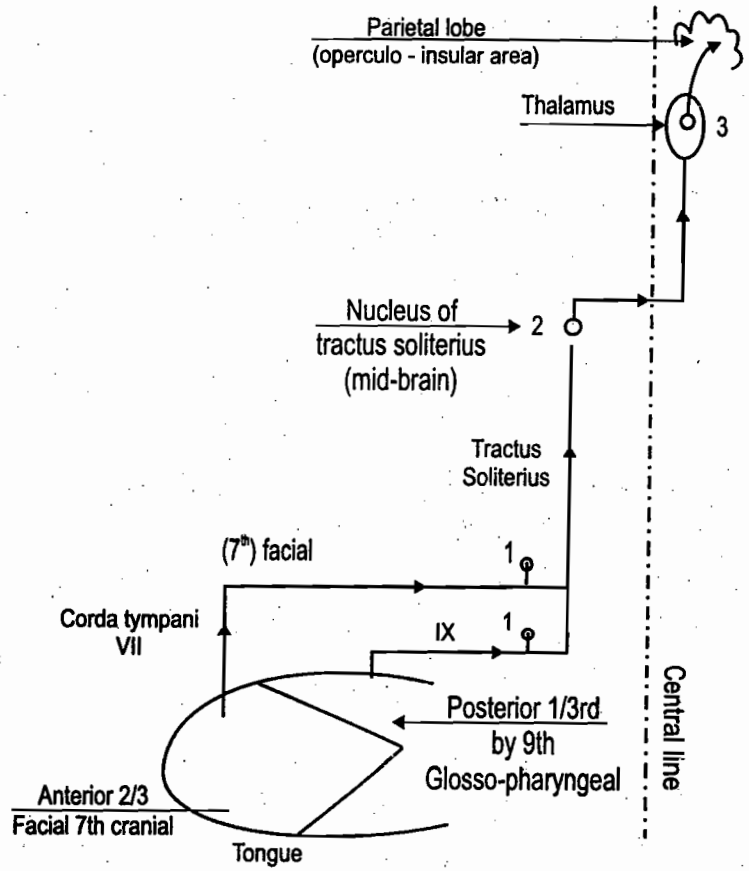

1) Functions of tongue

i) Motor function (आज्ञा)

a) Mastication and act of swallowing

b) Speech (वाक्प्रवृत्ति)

ii) Sensory function

a) Taste (रस/स्वाद) (बोधक कफ)

b) Touch sensation

2) In order to appreciate the taste, the substance must be soluble in water secretion of mouth and salivary gland.

3) Four basic Tastes

Sweet, sour, salt, bitter

(आयुर्वेदोक्त षड्रस - मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय।)

4) Tongue

Mobile organ, consist of muscles. Covered by mucus membrane. Roughness of upper surface is due to numerous minute elevations, called 'Papillae'. **The end organ for sense of taste = taste buds**

5) Taste buds

Connection of receptor cells and supporting cells, with sensory nerve endings. Taste bud has a pore that opens on epithelial surface of tongue.

1) Tongue

1) Tongue

- Mobile organ, three inches long, situated in the floor of the mouth.
- Associated with the functions of taste, speech, mastication and deglutition.
- It has two parts – i) Oral part ii) Pharyngeal part
- Tongue has – i) A root ii) A tip iii) A body
- Tongue is a muscular organ. It is covered by mucous membrane. Roughness of upper surface is due to numerous minute elevations, called as 'Papillae'

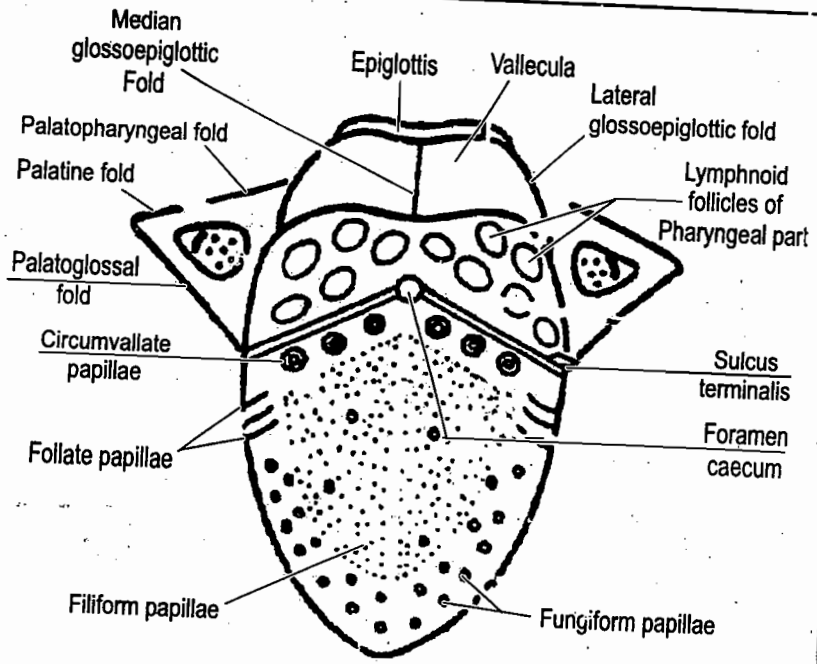

2) Taste buds

Taste buds are most numerous on the sides of the vallate papillae, and on the walls of the surrounding sulci. Taste buds are numerous over the foliate papillae and over the posterior one-third of the tongue and sparsely distributed on the fungiform papillae, the soft palate, the epiglottis and the pharynx. There are no taste buds on the mid dorsal region of the oral part of tongue.

Taste Pathway

This involves chorda tympani, branch of facial nerve for carrying the taste sensation from anterior 2/3rd part of tongue.

Glosso-pharyngeal nerve carries – sensations from posterior 1/3rd part of tongue.

These both the nerves unite together and form **Tractus solitarius**, which reaches at Nucleus of tractus solitarius in the midbrain.

From the mid brain second order neuron starts and reaches at thalamus.

From the thalamus 3rd order neuron starts and reaches to **Operculo – insular area** in the parietal lobe of the cortex.

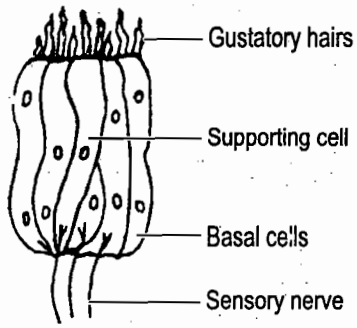

Taste buds

5) Fifth pathway

Path of olfactory impulses

Like taste, smell is also a chemical sensation. For taste, the substance must be in liquid form, for smell it should be in gaseous form. An Olfactometer is used to determine the Minimum identifiable odour (MID) of a substance.

The Olfactory Epithelium is that part of nasal epithelium, which is sensitive to smell and confined to the nasal mucosa of the olfactory area. The olfactory area is formed by the superior nasal concha, the upper part of the septum and the roof of the nose.

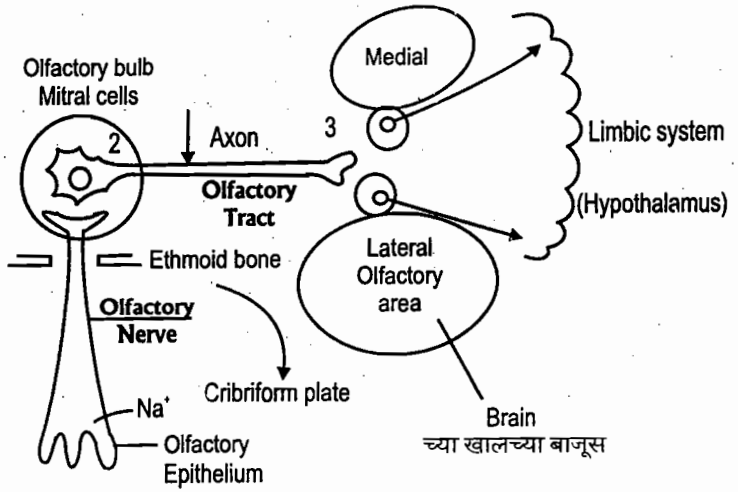

Olfactory Pathway (गंध ग्रहण प्रक्रिया)

1) Introduction

Olfaction (smell sensation) is rudimentary or vestigeal sensation, in the human being.

It is not the conscious effort by brain. Smell sensation is more important in lower animals like dogs, cats and dears. They use these sensations to detect territory of their habitat, to identify enemy and to attract opposite sex. These animals are more dependant on olfactory sense than the optic sense.

In human being, taste and olfaction is basically important.

i) To select the food

ii) For certain digestive responses.

2) Olfactory Pathway

Olfactory epithelium is located in the roof of the nose. This epithelium is modified nerve cells. These cells show cilia, which are having specific receptor proteins for smell substances.

Volatile material gets dissolved in moisture. They stick to the cilia and Na^+ influx takes place and depolarization occurs.

Olfactory nerves pass through the cribriform plate of Ethmoid bone and made Synapse with axon of Mitral cell.

This 2nd order neuron then reaches to medial and lateral olfactory area.

Medial olfactory system forms – old olfactory system while lateral area relays both old and new olfactory system.

From lateral area fibers radiate towards limbic system. Limbic system मन की भावभावनाओं से (सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष) संबंधित होती है।

प्रकरण १४

नाडी संस्थानम् (Nervous System)

अभ्यासक्रम - पेपर २ - भाग ख

गट ५ में मुद्दा क्र. १

स्वतंत्र परतंत्र नाडी संस्थानस्य वर्णनम् विविध संज्ञा चेष्टा क्षेत्राणाम् (Study of Central Nervous System and Autonomous Nervous System) ; अिडा, पिंगला, सुषुम्ना एव षटचक्र निर्माण।

What is the role of nervous system ?

1) To respond in a coordinated manner to environmental changes.
2) To co-ordinate, control different movements. (Muscular, secretomotor etc.)
3) Prolong the life by protecting the body against harmful stimuli.

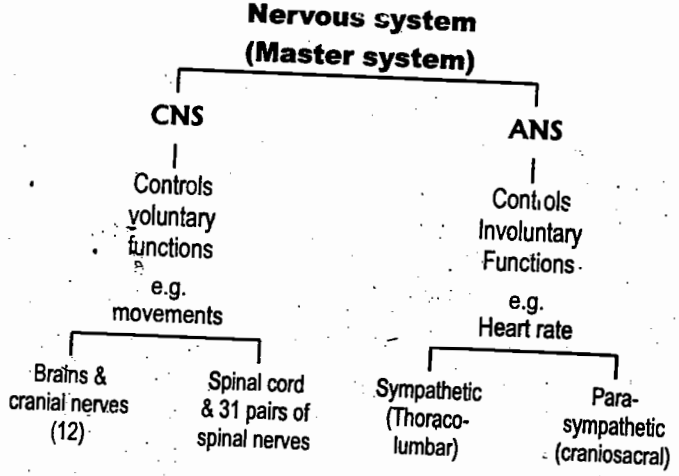

12 Cranial Nerves (नाम इस प्रकार याद रखें - O^3 T^2 ABC G V A P)

1) Olfactory
2) Optic
3) Oculomotor
4) Trochlear
5) Trigeminal
6) Abducent

7) Facial
8) Cochleo – vestibular
9) Glossopharyngeal
10) Vagus
11) Accessory
12) Hypoglossal

31 Pairs of spinal nerves

8 Cervical + 12 Thoracic + 5 Lumbar + 5 Sacral + 1 Coccygeal

Parts of Brain

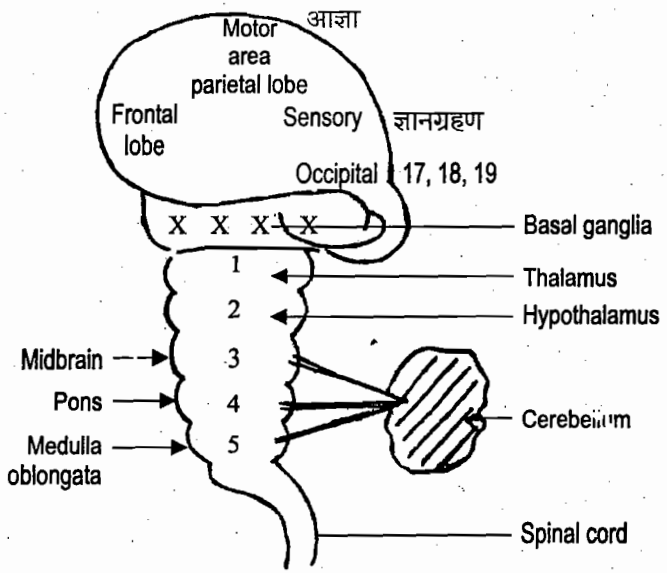

Parts of the brain.

i) **Fore brain** – Cerebrum, Thalamus, Hypothalamus
ii) **Mid brain**
iii) **Hind brain** – Pons, medulla, cerebellum

(Brain stem = mid brain + Pons + medulla)

Lobes of cerebrum - Frontal, Parietal, Occipital, Temporal.

Functions of Brain

1) **Frontal lobe** – Motor, **Function** - controls voluntary movements of opposite side (contralateral)

2) **Parietal lobe** – Sensory, **Function** - perceives sensation of opposite side

3) **Occipital** – Visual centers

4) **Temporal** – Auditory centers and Limbic system

5) **Prefrontal** – Intellectual functions.

6) **Thalamus** – Relay station in sensory pathway

7) **Hypothalamus** – Control – Pituitary – temperature – Food intake – water intake – ANA – Biological Rhythm – sexual behavior

8) **Brain stem** – Origin to cranial nerves

9) **Reticular formation** (Network of Neurons and nerve fibers) – sleep and wakefulness.

10) **Medulla** – Contains vital center – Respiratory and cardiac

11) **Cerebellum** - a) Neo – Co-ordination of movements
b) Paleo – Muscle tone
c) Archi – Posture and equilibrium

12) **Basal ganglia** – Corpus striatum (caudate nucleus and putamen), Globus pallidus, substantia Nigra, Subthalamus – regulation of muscle tone

13) **Spinal cord** – Reflex action, Ascending and descending tracts, origin to ANS fiber.

	Name	Type	Function	Distribution	Origin/End organ
1	Olfactory	Sensory	Sense of smell	From the nose	Cerebrum
2	Optic	Sensory	Sense of vision	From eye	Cerebrum
3	Oculomotor	Motor	Eye movements	Muscles of eyeball	Midbrain
4	Trochlear	Motor	Eye movements	Muscles of eyeball	Midbrain
5	Trigeminal	Mixed	Sensory-Skin sensation from face Motor – Movements of jaw	Face, tongue, lips and jaws	Pons
6	Abducent	Motor	Eye movements	Muscles of eyeball	Pons
7	Facial	Mixed	Sensory – Taste Motor – Secretion of saliva & facial expression	From taste buds ascending fibers and descending fibers to salivary glands and facial muscles	Pons

No.	Name	Type	Function	Distribution	Origin/End organ
8	Auditory (Vestibulo-cochlear)	Sensory	Sense of hearing and equilibrium	From ear	Medulla
9	Glosso-pharyngeal	Mixed	Sensory – Taste sensation from Pharynx Motor – Swallowing and the secretion of saliva	i) From and to pharynx ii) From the taste buds iii) To the salivary glands	Medulla
10	Vagus	Mixed	Sensory – Sensations from pharynx, visceral organs Motor – Movements of pharynx, larynx, peristalsis, Heart beats and respiration	From and to – visceral organs, larynx and pharynx	Medulla
11	Accessory	Motor	Movements of the shoulder	To the shoulder muscles	Medulla
12	Hypoglossal nerve	Motor	Movements of the tongue	To the tongue	Medulla

Note

a) **Purely Motor**

Oculomotor	(3),	Trochlear	(4),
Abducent	(6),	Accessory	(11),
Hypoglossal	(12)		

b) **Sensory**

Olfactory	(1),	Optic	(2),
Auditory	(8)		

c) **Mixed**

Trigeminal	(5),	Facial	(7),
Glossopharyngeal	(9),	Vagus	(10)

Structurally, the nervous system consists of Neuroglias and Neurones. Neuroglias are the supporting cells with less physiological importance with regards to nervous system. Neurons are the nerve cells with all its branchings. **A neuron is taken as the functional unit of nervous system.**

Properties of nerve fibres

Excitability, conductivity, All or none law, Refractory period, Summation, Adaptation.

Classification of nerve fibres

1) Medullated and nonmedullated (Histologically) ;
2) Motor and Sensory (Functionally), Adrenergic = producing adrenaline and cholinergic = producing acetylcholine (Chemically) .

Reflex (Definition)

Reflex action is an involuntary motor response due to a sensory stimulus.

Three types

1) Superficial, 2) Deep, 3) Visceral.

Superficial Reflexes

	Superficial reflexes	Method of eliciting	Response	Centre
1	Plantar	Stretching the lateral or medial border of sole	Normally dorsiflexion of toes. But in infants & pyramidal lesions, the extension & fanning of toes (Babinski's sign)	Sacral 1
2	Upper Abdominal	Stretching below costal margin	Retraction of hypochondrium of the same side	Dorsal 8, 9, 10
3	Lower abdominal	Stroking above the inguinal ligament	Contraction of the lower abdominal wall on the same side	Dorsal 11, 12
4	Cremasteric	Stroking the inner side of thigh	Drawing up of testicle	Lumbar 1
5	Conjunctival & Corneal	Touching conjunctiva or cornea	Winking	Nuclei of 5th & 7th Cranial N
6	Pupillary	Fall of light on eye	Contraction of pupil	3rd nerve Nucleus

Deep Reflexes

	Deep reflexes	Method of eliciting	Response	Centre
1	Knee jerk	Tapping patellar tendon	Jerking forward of leg	L 3 & 4
2	Ankle jerk	Tapping tendo Achillis	Planter flexion of foot	S 1 & 2
3	Biceps jerk	Tapping of biceps tendon	Flexion of forearm	C 5 & 6
4	Triceps jerk	Tapping of triceps tendon	Extension of fore arm	C 7 & 8
5	Wrist jerk or supinator jerk	Stroking supinator tendon just above wrist	Jerking up and supination of hand	C 5 & 6

Visceral Reflexes are autonomic ie.- Deglutition, Defaecation, micturition, Pulmonary and Gastrointestinal reflexes.

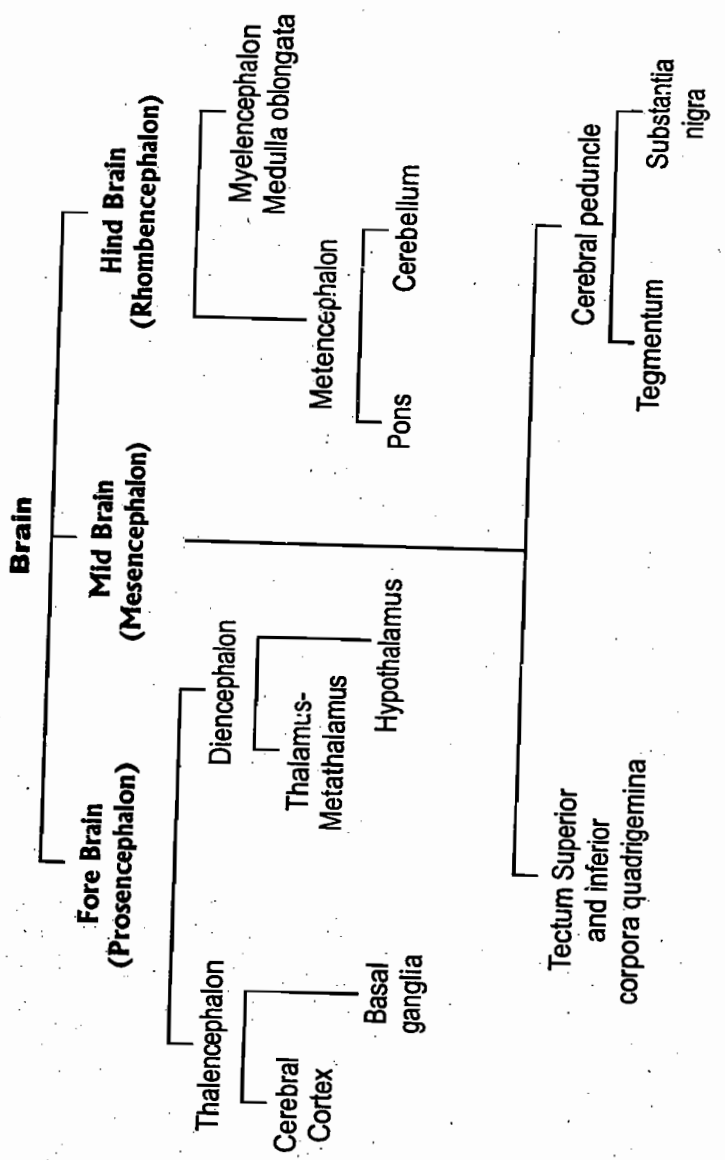

1) Spinal chord

Spinal chord is a downward continuation of medulla oblongata extending from the first cervical to first lumber vertebrae. The tail ends at 2 nd sacral. It gives out 31 pairs of spinal nerves. Each nerve is made up of posterior (Sensory) and anterior (Motor) roots. Spinal cord is symmetrically divided into two lateral halves by means of two median raphes (Anterior and posterior)

Functions of pyramidal tract

1) Chief pathway of voluntary movements.
2) Possibly form a part of the pathway for superficial reflexes.

Functions of extra pyramidal tracts

1) Cortico - nuclear fibres control the movements of the eye - ball.
2) All the tracts are collectively responsible for tone, posture and equilibrium.
3) They control complex movements of the body and limbs such as coordinated movements of arms and legs during walking.
4) The cortex exerts tonic inhibitory control over the lower centres through these tracts.
5) When pyramidal tracts are damages, the extra pyramidal tract may carry the volitional impulses to some extent.

2) Medulla Oblongata

Upward continuation of the cord, Medulla Oblongata, forms a pathway for ascending and descending tracts. The nucleus of 4, 5, 6 and 7 cranial nerves are located in this region. The importance of Medulla Oblongata lies in the location of the centres performing vital functions. eg.- Respiratory centre, Cardiac centre, Vasomotor - deglutition - vomiting - Sweat secreting centre and sugar regulating centre.

3) The pons

Lies between Medulla (below) and mid - brain (above) with cerebellum on each side. The pons is superior to Medulla. It connects the spinal cord with the brain and links parts of the brain with one another by way of tracts. It relays nerve impulses from the cerebral cortex to the cerebellum. It contains the nuclei for cranial nerves 5, 6 and 7 and the vestibular branch of 8. The reticular formation of the pons contains the pneumotaxic and apneustic centers, which help to control respiration.

Cerebellum

The Cerebellum occupies the inferior and posterior aspects of the cranial cavity. It consists of two hemispheres and a central constricted vermis. It is attached to the brain stem by three pairs of cerebellar peduncle. The Cerebellum functions in the co-ordination of skeletal muscles and the maintenance of normal muscle tone and body equilibrium.

4) Mid - brain

Upward continuation of medulla. Through it passes the aqueduct of Sylvius. The cranial nerves except 1st and 2nd originate or terminate in nuclei situated in floor of 4th ventricle or floor of cerebral aqueduct.

12 pairs of cranial nerves

1) Olfactory	2) Optic	3) Occulomotor
4) Trochlear	5) Trigeminal	6) Abducens
7) Facial	8) Auditory	9) Glossopharyngeal
10) Vagus	11) Accessory	12) Hypoglossal

5) Thalamus

Functions

1) Acts as relay station for the sensory impulses, which are received here, codified and then transmitted onto respective cortical areas.
2) Acts as a centre for conscious sensations.
3) Control of muscle tone and movements from the cerebellum also is through latero ventral nucleus of thalamus.
4) The area for sexual perception is also present in the thalamus.
5) The reticular and intralaminar nuclei in the thalamus are associated with reactions of alertness of wakefullness.
6) Also acts as reflex centre for somatic and visceral manifestation of emotions etc.

6) Hypothalamus

The Hypothalamus is inferior to the thalamus. It controls and integrates the autonomic nervous system, receives sensory impulses from viscera, connects the nervous and endocrine systems, secretes a variety of regulating hormones, co-ordinates mind-over body phenomena, functions in rage and aggression, controls body temperature, regulates food and fluid intake, maintains the waking state and sleeping patterns and acts as a self sustained oscillator that drives biological rhythms.

Cerebrum

The Cerebrum is the largest part of the brain. Its cortex contains convolutions, fissures and sulci. The cerebral lobes are named as the frontal, parietal, temporal and occipital. The white matter is under the cortex and consists of myelinated axons running in three principle directions. The Basal Ganglia (cerebral nuclei) are paired masses of gray matter in the cerebral hemispheres.

They help to control muscle movements. The Limbic System is found in the cerebral hemispheres and diencephalon. It functions in emotional aspects of behaviour and memory. The sensory areas of the cerebral cortex are concerned with the interpretation of the sensory impulses. The motor areas are the regions that govern muscular movement. The association areas are concerned with emotional and intellectual processes. Brain waves generated by the cerebral cortex are recorded as an electroencephalogram (EEG) . It may be used to diagnose epilepsy, infections and tumors.

Physiology of motor pathways

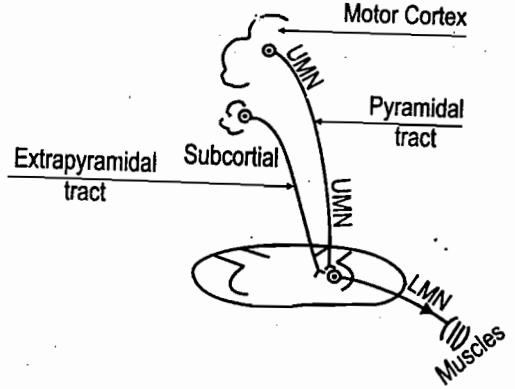

UMN and LMN (Upper motor neuron and Lower motor neuron)

1) UMN

First Neurons in motor pathway which end on anterior horn cells.

2) LMN

Last Neuron in Motor pathway, which directly supply muscle.

UMN are having Inhibitory Influence on LMN

	UMN Lesion	LMN Lesion
1	Rigidity	Flaccidity
2	Hypertonia	Hypotonia
3	Sup. Reflexes are lost but Deep Ref. Exaggerated	All are lost
4	Involuntary movements may be seen	Absent
5	Motor Nerve degeneration not seen	Motor nerve degeneration seen
6	No Atrophy	Atrophy (wasting of muscles present)
7	Babinski's sign +ve	Babinski's sign absent
8	E.g. Haemiplegia Paraplegia	e.g. Poliomyelitis

Descending Tract or Motor Tract

(From brain to the extremities) आज्ञा वहन मार्ग (हाथ, पैर की हलचल)

1) Practical importance of this tract

i) In 1st year B.A.M.S., clinical hammer is used to test the deep reflexes. These reflexes are altered due to the pathology at the spinal cord level or at the brain level.

ii) In the practice, all the cases of paralysis or hemiplegia, the doctor should understand that the problem is in the Motor tract

3) Mainly two types of the Motor pathway are as follows

i) Pyramidal tract or cortico-spinal tract

ii) Extra pyramidal tract (This path starts from subcortical area)

Cortico-Spinal Tract (Descending Tract)

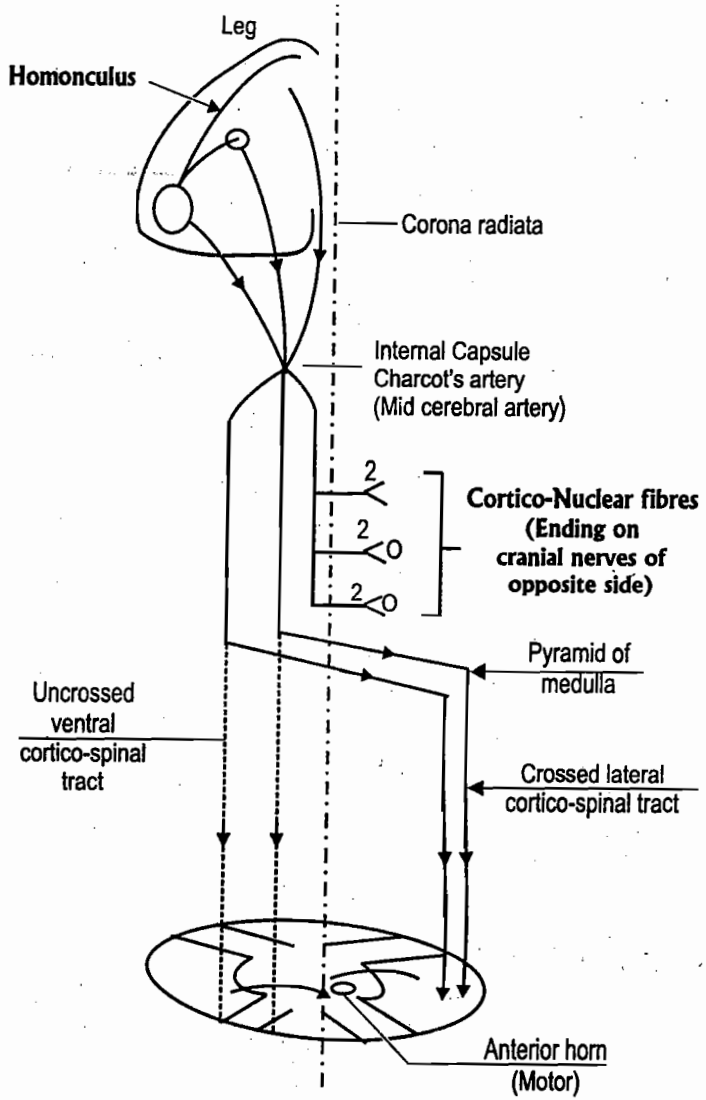

Functions of cortico spinal Tract (Motor pathway)

i) Voluntary movements are controlled.

ii) Especially skilled movements of distal joint (writting, painting)

Names of Extra-pyramidal tract

(sub-cortical motor area to – spinal cord)

i) Reticulo – Spinal tract

ii) Vestibulo – Spinal tract

iii) Rubro (Mid brain) – Spinal Tract

iv) Olivo (Medulla) – Spinal Tract

v) Tecto (Mid brain) – Spinal Tract

Functions of Extra pyramidal tract

i) Controls gross postural movements of proximal joints

ii) Regulation of muscle tone

iii) They can control voluntary movements if Pyramidal tracts are damaged.

Autonomic nervous system (ANS)

The system was originally named autonomic because, previously, physiologists thought that, it functiones with no control from CNS ie.- autonomous or self - governing. But today, it is known that the ANS is neither structurally, nor functionally independent of CNS. It is regulated by centers in the brain in particular by the cerebral cortex, hypothalamus and medulla oblongata.

(ANS का विस्तृत वर्णन शारीर क्रिया विज्ञान - Handbook में किया है।)

Structures

The ANS consists of visceral efferent neurons organised into nerves, ganglia and plexuses. It is considered mostly of motor type. All autonomic axons are efferent fibres. Efferent neurons are pre ganglionic (with myelinated axons) and post ganglionic (with unmyelinated axons) . The ANS consists of two principle divisions -

- Sympathetic (Thoraco - Lumbar) and
- Para sympathetic (Cranio - sacral)

Autonomic ganglia are classified as sympathetic trunk ganglia (On both sides of spinal column), pre - vertebral ganglia (anterior to spinal column) and terminal ganglia (near or inside visceral effectors)

Physiology of ANS

Autonomic fibres release neurotransmitters at synapses. On the basis of neurotransmitter produced, these fibres may be classified as cholinergic or adrenergic. Cholinergic fibres release acetylcholine (Ach) . Adrenergic fibres produce nor - epinephrine (NE)

Ach interacts with Nicotinic receptors on postganglionic neurons and Muscarinic receptors on certain visceral effectors.

NE interacts with Alpha Receptors on visceral effectors and epinephrine generally interacts with alpha and beta receptors on visceral effectors.

Sympathetic responses are widespread and concerned with Energy Expenditure. Parasympathetic responses are restricted and concerned with Energy restoration and Conservation.

The **parasympathetic** division is primarily concerned with activities that conserve and restore body energy during times of rest or recovery of the body. It is an **energy conservation - restorative system.** Activation of the **sympathetic** division sets into operation a series of physiological responses collectively called **the Fight or Flight Response.**

ANS - Control by Higher Centers

The Hypothalamus Controls and integrates the autonomic nervous system. It is connected to both the sympathetic and the parasympathetic divisions. **Bio - feedback** is a process in which **people learn to monitor visceral functions and to control them consciously.** It

has been used to control the heart rate, alleviate migraine headaches & make childbirth easier. Current therapeutic applications of bio - feedback include treatment of asthama, Raynaud's disease, hypertension, gastrointestinal disorders, fecal incontinence, anxiety, pain and neuromuscular rehabilitation following cerebrovascular accidents (CVAs)

Yoga

Yoga, which means Union is defined as a higher state of consciousness, achieved through a fully rested and relaxed body and a fully awake and relaxed mind. Technique for achieving higher consciousness is called Trans - cedental Meditation (TM) . One sits in a comfortable position with the eyes closed and concentrates on a suitable sound or thought. Research suggests that TM can alter physiological responses. For Eg.- O_2 consumption, BMR, BP ↓. Increase in the intensity of alpha brain waves. These responses (Integrated response) are exact opposite of the fight or flight response, which is a Hyperactive state of the sympathetic division.

The existence of the integrated response suggests that the CNS does exert some control over the ANS.

ईडा पिंगला नाडी वर्णनम्

मन के संतुलन के लिए अर्थात शरीर स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए 'योग' की सहायता होती है, यह अत्याधुनिक संशोधन के द्वारा सिद्ध हुआ है (विगत दो परिच्छेद देखिए) । वस्तुतः 'योग शास्त्र' आयुर्वेद के समान ही प्राचीन भारतीय शास्त्र है। यद्यपि वेद, उपनिषदों में योग सिद्धांतों का वर्णन नहीं दिखाई देता, तथापि योग का शास्त्रबद्ध वर्णन सर्वप्रथम महर्षि पतंजली ने योगसूत्र ग्रंथ में किया (४ अध्याय, १९५ सिद्धांत) ।

योग भी आयुर्वेद के समान ही महत्त्वपूर्ण है ।

योगेन चित्तस्य, पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
यो पा करोत्तं प्रवरं मुनिनां पतंजलिं प्रांजलिरानतो ऽ स्मि ।।

योग क्या है ?

१) 'युज - युज्यते' अर्थात जोडना।

आत्मा का परमात्मा से, जीव का शिव से मिलन। द्वैत से अद्वैत की ओर प्रवास।

२) **योगस्तु चित्तवृत्ति निरोधः।** ... **योगदर्शन १/२**

३) **समत्वं योग उच्यते।** ... **गीता २/४८**

४) **योगः कर्मसु कौशलम्।** ... **गीता २/५०**

तं विद्यात् दुःख संयोग वियोग योगसंज्ञितम्

५) **योगो मोक्षप्रवर्तकः।** ... **च.शा.१/१३७**

६) **योगे मोक्षेच सर्वेषां वेदनानामवर्तनम्।**

मोक्षो निवृतिर्तिश्शेषां योगो मोक्षप्रवर्तकः। ... **च.शा.१/१३७**

७) **शरीरं सत्व संज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मनः।**

तथा योगस्तु सुखानां कारणं समः। ... **च.सू.१/५५**

८) हठयोग = ह + ठ,

ह = सूर्य नाडी = पिंगला नाडी = उष्ण,

ठ = चंद्रनाडी = इडा नाडी,

हठयोग का अर्थ है - शीत-उष्ण का सन्तुलन।

अष्टांग योग

१) यम, २) नियम, ३) आसन, ४) प्राणायाम,
५) प्रत्याहार, ६) धारणा, ७) ध्यान, ८) समाधि।

१) यम (५) = सामाजिक नियम

तत्र अहिंसा सत्य अस्तेयं ब्रम्हचर्य अपरिग्रह यमाः।

२) नियम (५) = वैयक्तिक आचरण किस प्रकार होना चाहिये ?

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः। ...योगसूत्र २/३२

३) आसन = स्थिर सुखम् आसनम्। (Physical Postures)

४) प्राणायाम = प्राण + आयाम। (Deep breathing exercises)

५) प्रत्याहार = प्रति + आ + ह्र (हर, करण करना)
= प्रत्येक अवयवं का उसके विषय से हरण करना।
मन को अंतर्मुख करना।

६) धारणा = तत्र देशबंध चित्तस्य धारणा।
= मन एकरूप करना।

७) ध्यान = तत्र एकरूपता ध्यानम्।

८) समाधि (सबीज / निर्बीज) = स्थिरता, सत्‌चित आनंद।

चरकाचार्य ने मानसिक व्याधि की चिकित्सा का वर्णन करते हुए कहा है,

मानसो ज्ञानविज्ञान धैर्य स्मृति समाधिभिः।

योग में नाडी विज्ञान

'चित्तवृत्तिनिरोध' यह योग का उद्दिष्टसाध्य करने के लिए मस्तिष्कस्थित वायु पर नियंत्रण प्राप्त करना आवश्यक होता है।

(आयुर्वेद ने भी 'वायुरेव भगवान' कहा है तथा निम्न प्रकार से वर्णन किया है।)

वायु तंत्र यंत्र धरः, चेष्टा प्रवर्तकः, नियंता प्रणेता च मनसः

योग / अध्यात्म शास्त्र में 'कुंडलिनी' जागृत होना, शाश्वत ज्ञानप्राप्ति, ब्रम्हज्ञान प्राप्ति के लिए जो विविध उपाय बताए हैं उनमें योग में वर्णित नाडियां एवं षट्‌चक्र विशेष महत्वपूर्ण हैं।

योग में स्थूल एवं सूक्ष्म नाडियां (७० हजार से ३५ लक्ष) वर्णित हैं। अपितु प्रत्यक्ष शवविच्छेदन में सभी नाडियां दिखालाना संभव नहीं होता।

इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण ब्रम्हनाडी मेरुदण्ड के मध्यभाग में स्थित है। वह मस्तिष्क के ब्रह्मरंध्र के निचले मज्जाधातु के द्वारा प्रारंभ होकर सुषुम्ना नाडी के अंत तक जाती है। ब्रह्मनाडी के चारों ओर रजोगुणप्रधान चित्रिणी नाडी और उसके बाहर तमोगुणप्रधान वज्रिणी नाडी होती है।

उनके बाहर सत्वगुणप्रधान सुषुम्ना नाडी है, जिसके द्वारा प्राणिक तत्त्व ऊपर-नीचे जाता है।

सुषुम्ना नाडी के दोनों ओर से मुडते हुए इडा तथा पिंगला नाडियां, कटि से पृष्ठिवंश की बाजू से क्रमशः वाम तथा दक्षिण नासिका तक आती हैं।

- **इडा नाडी** = किंचित सफेद, सौम्य, अमृतविग्रह स्वभाव की होती है और शरीर में शीतत्व निर्माण करने में सहायता करती है।
- **पिंगला नाडी** = लाल, केशरी वर्ण की तथा सूर्यविग्रह स्वभाव की होती है। उष्णत्व वर्धित करने के लिए इसका उपयोग होता है। प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा भी यह स्पष्ट होता है कि, एक समय में किसी एकही नासिका के द्वारा प्रायः श्वसन होता है।

इडा - पिंगला नाडियों के स्वभावगुणधर्म का वैद्यक शास्त्र में उपयोग किया जा सकता है, जैसे - ज्वर, सर्वांगदाह, अम्लपित्त आदि पित्तज उपद्रवों में इडा नाडी को उत्तेजित करने के लिए वाम नासा के द्वारा अधिक श्वसन करना। इसके विपरीत प्रतिश्याय, कफज श्वास, संधिवात आदि में, दक्षिण नासा के द्वारा अधिक श्वसन कर पिंगला नाडी उत्तेजित करना।

१) **नाड्यो अनन्ता समुत्पन्न सुषुम्ना पंच पर्वसु ...**

२) **तत उर्ध्व तालुमूले सहस्त्रार सुशोभनम्।**
अस्ति यत्र सुषुम्नायाः मूलं सविस्तरं स्थिताम्।।
तालुमूले सुषुम्ना सा अधोवक्त्रा प्रवर्तते।
मूलाधारेण यो अनन्ता सर्वनाडी समाश्रिता।।

३) **इडा भगवती गंगा, पिंगला यमुना नदी।**
इडा पिंगलायोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती।।

४) **मस्तिष्क का महत्त्व – वाग्भट**
उर्ध्वमूलमधः शाखामृषयः पुरुषं विदुः।
मूलप्रहारिणस्तमात् रोगात् शीघ्रतरं जयेत्।
सर्वेंद्रियाणि येनास्मिन् प्राणाः येन च संश्रितः।
तेन तस्त्रोत्तमांगस्य रक्षायामादूतो भवेत्।।

उपरोक्त सभी नाडियों पर नियंत्रण प्राप्त कर, कुंडलिनी जागृत करने के विषय में योगशास्त्र में विस्तारपूर्वक मार्गदर्शन किया गया है।

षट्चक्र

इडा एवं पिंगला जिन-जिन स्थानों में एकत्र आती हैं वहां शरीर के महत्त्वपूर्ण नियंत्रक स्थान होते हैं, जिन्हें योगशास्त्र में षट्चक्र कहा जाता हैं। ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए मन पर नियंत्रण प्राप्त करना अत्यावश्यक होता है। इस दृष्टि से इंद्रिय अर्थ की ओर आकर्षित होनेवाले बहिर्मुख मन को इन षट्चक्रों के स्थान में अंतर्मुख करना यही षट्चक्र पर विजय प्राप्त करना कहलाता है। इन छह स्थानों को पद्म अथवा चक्र स्वरूप मान कर, उस पद्म की पंखुडियां, उस स्थान का मंत्राक्षर, तत् स्थान संबधित महाभूत, ज्ञानेंद्रिय आदि का आकृति स्वरुप में एकत्रित वर्णन नीचे किया गया है।

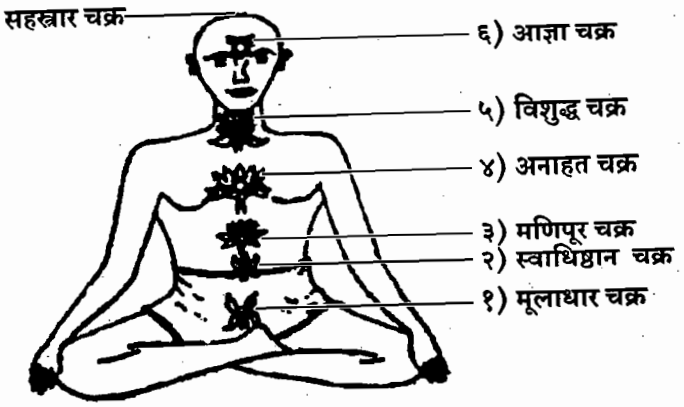

षट्चक्र दर्शनम्

	चक्र	स्थान	पंखुडियां	मंत्राक्षर	महाभूत
१	मूलाधार	गुदसमीप	४	भं	पृथ्वी
२	स्वाधिष्ठान	लिंगोर्ध्व	६	वं	आप
३	मणिपूर	नाभी	१०	रं	तेज
४	अनाहत	हृदय	१२	यं	वायु
५	विशुद्ध	कंठ	१६	हं	आकाश
६	आज्ञा	भ्रूमध्य	०२	-----	-----
७	सहस्त्रार	मस्तिष्क	१०००	-----	-----

विशिष्ट चक्र में विशिष्ट महाभूत नियंत्रण कार्य होता है, जैसे -

- स्वाधिष्ठान चक्र के समीप 'बस्ति' (Urinary Bladder) के द्वारा शरीरस्थ उदक धातु की मात्रा का नियंत्रण किया जाता है।
- नाभि स्थित मणिपूर चक्र जाठराग्नि के क्षेत्र में होनेवाले पचन का अर्थात तेजमहाभूत का नियंत्रण करता है।

इन षट्चक्रों के मंत्राक्षरों का उपयोग जाप, मंत्र चिकित्सा के लिए किया जा सकता है, तथापि योग - आयुर्वेद तज्ञों के द्वारा इस विषय में अधिक संशोधन करने की आवश्यकता है। आयुर्वेदोक्त शिरोधारा इस उपचार पद्धति में, स्थिर तेल की अखंडित धारा भ्रूमध्य चक्र के समीप करने से होनेवाले लाभ प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार, इन षट्चक्रों का और प्रत्यक्ष दर्शन की सहायता से उस स्थान में दिखाई देनेवाली विशिष्ट शरीर रचनाओं का (Anatomy) परस्पर संबध होता है।

यह तुलनात्मक विचार निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया हैं।

	षट्चक्र	अवयव	विशिष्ट रचना
१	मूलाधार	Testes / Ovary	Pelvic Plexus
२	स्वाधिष्ठान	Adrenals	inferior mesentric plexus
३	मणिपूर	Pancreas	----------
४	अनाहत	Thymus	----------
५	विशुद्ध	Thyroid/Parathyroid	----------
६	आज्ञा	Pituitary	----------

प्रकरण १५

मन, आत्मा, निद्रा, स्वप्न

शारीर क्रिया – पेपर – २ विभाग – २, भाग ख – गट ५

अ) १) मनसः स्वरुप, अणुत्वम्, एकत्वम्

२) ज्ञानः कर्मेंद्रियामत्वंचं

३) मनसः स्थानम्, संज्ञावहस्त्रोतस वर्णनम्

४) मानसा विषय - चिंत्यादि वर्णनम्

५) तस्य कार्यत्वम् - संकल्पत्वम्, इंद्रियानिग्रहत्वं च (And Study of Mind)

ब) १) मन चेतयित्वा आत्मा- तस्य गुणः सुखदुःखानुभव, ज्ञानोत्पतीकरणम्

२) आत्मा मनः इंद्रिय विषय सन्निपातत्वम् तस्य अभावः अज्ञानम्

क) निद्रा उत्पत्तिः, स्वप्नोत्पत्तिश्च वर्णनम् (And Study of Sleep, Dreams etc.)

ड) मनोवह स्त्रोतस दोष वर्णनं च इंद्रियग्रहणं, ज्ञानसंवहनम्, प्राणस्य ज्ञानमयत्वं, धारकत्वं, बलदायकत्व च वर्णनम्, हृदयास्थित साधकपित्तस्य अभिप्रेतार्थ साधकत्वम्, उदानव्यानवायोः इंद्रियप्रेरकत्वम्, बुद्धिः सहकारत्वम् सारासार विवेकत्वं च, मानस शारीर दोषयोः पारस्पारिक संबंधः तेषां प्रभावः पुरुषाभिन्नत्वे मनसः भिन्नस्वरुप वर्णनम्, शारीरक्रियात्मक मनोविज्ञान तत्वविवेचनं च।

मन

मनुष्य शरीर के स्थूल घटकों का विचार करने के उपरान्त सूक्ष्म घटकों का (मन, आत्मा आदि) अध्ययन किया जाएगा। स्वस्थ व्यक्ति कौन है ? यह सुनिश्चित करते हुए कहा गया है, **प्रसन्न – आत्मा – इंद्रिय – मनः।**

इंद्रिय, मन, आत्मा की प्रसन्नता किस प्रकार जानी जाती है ?

इंद्रिय पटुत्वेन, मनः आमोदेन, आत्मा संतोषेन।

यह महत्वपूर्ण है। वाग्भटाचार्य ने 'विषादो रोगवर्धनानाम्' ऐसा वर्णन करते हुए सत्वसारता का महत्व स्पष्ट किया है। अतः व्यवहार में भी 'सत्वावजय' चिकित्सा महत्वपूर्ण है।

मनुष्य का जीवन (आयु) ४ घटकों का संयोग, समयोग है। (शरीर, इंद्रिय, सत्व, आत्मा संयोगे ... ।)। निरोगी जीवन की तिपाई अर्थात,

सत्वं आत्मा शरीरं च त्रयम् एतत् त्रिदण्डवत्। ... च.सू.१/४६

व्याधि का शरीर एवं मन, दोनों से भी संबंध होता है।

- **शरीरं सत्व संज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः तथा सुखानाम्।** ... च.सू.१

अथवा

- **वेदनानाम् अधिष्ठान मनो देहश्च सेन्द्रियः।** ... च.शा.१

मनुष्य देह पंचभूतात्मक होता है।

- **इति भूतमयो देहः।** ... अ.हृ.
- **भौतिकानि च इंन्द्रियाणि आयुर्वेदे उच्यन्ते तथोन्द्रियार्थाः।** ... सुश्रुत

मन पांचभौतिक होने पर भी उसकी गणना अध्यात्म द्रव्य में की गई है।

- **अतीन्द्रिय पुनर्मनः सत्वसंज्ञकम् चेत इति आहुः एके।** ... च.सू.८
- **मनो मनो ऽ र्थो बुद्धिश्चेत्यध्यात्म द्रव्य गुणसंग्रहः।** ... च.सू.८

केवल दार्शनिक ही नहीं, बल्कि व्यवहारिक दृष्टिकोण से भी मन, आत्मा, बुद्धि, तर्क, संशय, भ्रम, निर्णय आदि विषयों को आध्यात्म द्रव्य तथा आध्यात्म गुण माना गया है, क्यों कि जीवंत शरीर से अन्यत्र इनका अध्ययन करना संभव नहीं होता।

१) निरुक्ति, पर्याय

'मन्' अर्थात विचार करना, मनन करना इस धातु से 'मन' शद्ब निर्मित है।

पर्याय

१) **चित्त, चेतस** – मूल धातु चित्ति संज्ञाने = ज्ञान में साधनभूत अन्तरिन्द्रिय।

२) **मनः एवं मानस** – मूल धातु - मनु अवबोधने।

३) **हृदय – हृत्** – मूल 'हृ' धातु - विषय अर्थ का हरण कर, आत्मा को प्रदान करना।

४) **स्वान्त** – 'स्व' शद्ब आत्मा सूचक, अन्त शद्ब समीपता वाचक, अर्थात आत्मा के निकटतर निवास करने वाला साधन इंद्रिय।

५) **सत्वम्**

२) स्वरुप

उभयात्मकं मनः। ... सु.शा.१

मन ज्ञानेंद्रिय एवं कर्मेन्द्रिय ऐसे दोनों स्वरुप के कार्य करता है तथा दोनों को जोडने वाला साधन है। न्याय वैशोषिक मतानुसार ९ द्रव्यों में से एक द्रव्य - नित्य, परमाणुरुप है, प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होने के कारण अनंत है, सुख-दुःख का आत्मा को अनुभव कराने का साधन है। प्रत्येक जीवात्मा के साथ मन का नित्य संबंध होता है। केवल मोक्षावस्था में ही यह संबंध समाप्त होता है।

- **खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः।** ... च.सू.१/४८
- **अतीद्रियं पुनर्मनः सत्वसंज्ञकं चेतः इत्याहुरेके**

तदर्थात्मसंपदायत्तचेष्टं चेष्टाप्रत्ययभूतम् इंन्द्रियाणाम्॥ ... च.सू.१४

सांख्य मतानुसार मन १६ विकारों में से एक विकार है, जिसकी उत्पत्ति सात्विक एवं राजस अहंकार से हुई है। तथापि आयुर्वेद ने मन को पांचभौतिक मान कर कहा है कि, पांचभौतिक आहार द्रव्यों का मन पर निश्चित ही परिणाम होता है।

३) स्थान

१) 'मन' मुख्यतः आत्मा से संबंधित होने के कारण आत्मा का स्थान 'हृदय' यही मन का भी स्थान है।

आत्मा च सगुणश्चेतश्चिन्त्यं च हृदि संश्रितम्।

हृदय एवं मन का निकट संबंध, प्रत्यक्ष रुप से जाना जा सकता है। हृदय के उपघात के परिणामस्वरुप मूर्च्छा, चित्तनाश होते हैं और मन दुष्टी के कारण क्रोध, चिंता, उद्वेग, विषाद के परिणामस्वरुप हृदय में उपघात होकर हृद्-द्रव (Palpitation), भेद, पीडा आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

मनोवह स्त्रोतस, चेतोवहाः सिराः संज्ञावह स्त्रोतस, 'दुर्बलं चेतसो स्थानम् बुद्धेर्निवासं हृदयम्।

आदि द्वारा हृदय यह प्रमुख स्थान है, यह स्पष्ट होता है।

२) भेलसंहिता में मन का स्थान तालु एवं शिर के मध्य भाग में बताया गया है।

शिरस्तालवन्तरगते सर्वेंद्रिय परं मनः।

३) वस्तुतः संपूर्ण शरीर ही मन का अधिष्ठान है।

अतीन्द्रियाणां पुनः सत्वादिनां केवलं चेतनावच्छरीरम् अयनभूतम्
अधिष्ठानभूतं च। मनः प्रभृतीनाम् अतीन्द्रियाणां कृत्स्नमेव शरीरं स्त्रोतोरुपं वक्ष्यति॥ ... चक्र.च.वि.५/३

४) गुण / लक्षण - मन का लक्षण

लक्षण मनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव च।
सति हि आत्म इंद्रिय अर्थानां सन्निकर्षे न वर्तते॥
वैवृत्त्यान्मनसो ज्ञानं सान्निध्यात् तत् च वर्तते॥

आयुर्वेदोक्त ज्ञान ग्रहण प्रक्रिया

- **आत्मा मनसा संयुज्यते, मनः इंद्रियेण, इंन्द्रियं अर्थेन ततः ज्ञानम्।**
  मनः पुरःसराणि च इंद्रियाणि अर्थ संग्रह समर्थानि भवन्ति। ... च.सू.८
- **इंद्रियेणैन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते॥** ... च.शा.१/२२

मन - गुण

अणुत्वमथचैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतो। ... च.शा.१/१९

१) मन यह द्रव्य होने के कारण गुण - कर्म का आश्रय है। मन संख्या में एक तथा परिमाण में अणु स्वरुप है। यह सर्वज्ञात है कि एकही समय अनेक इंद्रिय ज्ञानप्राप्ती कराते हैं। यदि ऐसा है तो मन एकही है इस विधान के विषय में संदिग्धता उत्पन्न होती है। इस स्वरुप की चर्चा चरक संहिता में, सत्व का स्वरुप एवं कर्म विवेचन करते हुए की गई है। वस्तुतः विभिन्न इंद्रियों के द्वारा होने वाला ज्ञान 'क्रमिक' ही होता है, अपितु मन के शीघ्रवेग के कारण भिन्न इन्द्रियविषय ज्ञान में अंतर अनुभूत नहीं होता।

दृष्टांत -अलात चक्रदर्शन एवं उत्पल शतपत्र सूचीवेधन न्याय।

२) चंचलता यह भी मन का स्वाभाविक धर्म है। गीता ग्रंथ में मन की अस्थिरता, चंचलता तथा बहिर्निःस्सरणशीलता वर्णित है। 'मनोजवं मारुततुल्यवेगं' इस श्लोक में भी मन का वेग तथा चंचलता वर्णित है। मन का स्थिरीकरण गहरी निद्रावस्था में ही होता है; न कि जागृत, स्वप्न अवस्था में। मन को वश करनेवाले व्यक्ति को पुरुषवशी कहते है, जिसे ईश्वरीय बल, परम अध्यात्म बल, परम प्रबल, आंतरिक बल, एकाग्रता, समाधान, आनंद आदि का लाभ होता है। अतः मन का एक धर्म. "स्वस्य निग्रहः" बतलाया है।

३) मन त्रिगुणात्मक है - प्रत्येक व्यक्ति में सत्व, रज, तम् ये भाव उपस्थित होते ही हैं। किन्तु व्यपदेशस्तु भूयसा न्याय से किसी एक गुण का अधिक्य होता है। सात्विक वृत्ती - कल्याणांश प्रधान, सत्य, समानता, धर्म, ज्ञानप्रवृत्त होती है, राजसिक भाव - ईर्षा, क्रोध, द्रोह उत्पन्न करता है और तामसिकता - आलस्य, जडता उत्पन्न करती है। सात्विकता ज्ञान ग्रहण में सहायता करती है और रजो एवं तमो गुण ज्ञानप्राप्ती में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अतः रज एवं तम को मन के दोष माना जाता है।

मन के कार्य

१) जन्मपूर्व

उत्क्रमण तसेच शरीरान्तर प्रवेश किंवा देहाद्देहान्तरं गतिः।

गर्भधारण समय में शुक्र-शोणित संयोगरुप, जीवात्मा का अंभिसंमूर्च्छन मन के द्वारा ही होता है। अर्थात एक प्रकार से मन का कार्य शरीर के प्रारंभ से ही शुरु होता है। विविध योनि में शरीरधारण, धर्माधर्म निमित्त अथवा पूर्वजन्मार्जित शुभाशुभ संस्कारों के आधार पर होते है। मन गुणों का अधिष्ठान है। संस्कार के द्वारा, सत्वादि गुणों में से जिसका उद्रेक होता है, उसके अनुसार देव, मानुष, आसुर या तिर्यक योनि का शरीर प्राप्त होता है। इन संस्कारों के आधार पर ही गर्भ ३ - ४ मास का होने पर हृदय का विकास होता है और मन की क्रियाएं अधिक स्पष्ट होने लगती हैं (दौहृद)।

२) **जन्मोत्तर मनोव्यापार**

जीव को गर्भवास के दरम्यान कर्मवशात् जन्मान्तरानुभूत सुख-दुःखादि सभी भले-बुरे संस्कारों का ज्ञान होता है, उनका स्मरण रहता है। किन्तु प्रसवकाल में निर्माण होनेवाले ज्वर के कारण (महामोह या महत्तमः।) सर्व ज्ञान विस्मृती में चला जाता है।

कर्म (मन के कार्य)

इंद्रियाभिग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः।
ऊहो विचारश्च ततः परं बुद्धिः प्रवर्तते॥ ... च.शा.१ - १९

मन जड है, तथापि आत्मा के संयोग से ही जड मन क्रियाशील बन जाता है।

अचेतनं क्रियावत् च मनश्चेतयितापरः।

अतः मन के कार्य 'आत्मसम्पदायत्त' बताए हैं। 'विषयप्रणवता' मन का नैसर्गिक धर्म है।

इंद्रियों की प्रवृत्ती का हेतु

ज्ञानेंद्रिय तथा कर्मेंद्रिय दोनों भी मन की प्रेरणा से ही स्व-स्व विषयों की ओर प्रवृत्त होते हैं। जिनके साथ मन का संबंध, उन्हीं इंद्रियों की प्रवृत्ती होती है।

मनः पुरःसराणी इन्द्रियानि अर्थग्रहण समर्थानि भवन्ति। ... चरक

अतः 'मन' इंद्रियों का नाथ, अधिपति अथवा नियंता है।

चेष्टाप्रत्ययभूतम् इंद्रियाणाम् ॥ (च.) इंद्रियाणांमनोनाथः ॥

मन का उभयेन्द्रिय स्वरुप का कार्य किस प्रकार होता है ?

१) रुपादि विषयों के कारण मोहित होकर आत्मा को उनके संदर्भ में आकर्षण उत्पन्न होने पर मन की प्रेरणा से इंद्रिय स्व विषयाभिमुख हो जाते हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, अंतःकरण ये द्वारि अर्थात द्वारपाल होते हैं। द्वार खोलना अथवा विशिष्ट पदार्थों का प्रवेश होने देना अथवा न होने देना इन द्वारपालों के नियंत्रण में होता है। मन जिसे प्रेरणा देता है, वही इंद्रिय स्व विषय ग्रहण करता है।

इंद्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते ॥ ... चरक

(Sense Perception - Sensory Function)

२) प्राप्त रुप आदि विषयों को मन एकत्र या संगृहित करता है।

इंद्रियाभिग्रहः कर्म मनसः। ... चरक

(Storage or Retention)

३) ज्ञान के विषय में पुनः विमर्ष एवं संकल्प-विकल्प, चिंतन, विचार आदि द्वारा गुण-दोष विवेचन कर बुद्धि 'निश्चयात्मक ज्ञान' उत्पन्न करती है।

- **ऊहो विचारश्च ततः परं बुद्धि प्रवर्तते।** ... चरक
- **कल्प्यते मनसा तूर्ध्वं गुणतो दोषतो अथवा जायते विषये तत्र या बुद्धिः निश्चयात्मिका।** ... चरक

(Reasoning, Discrimination and Decision)

बुद्धिसहकारत्वं सारासार विवेकत्वं च।

४) ज्ञान संगृहित होकर स्मृती स्वरुप में संचित किया जाता है।

५) बुद्धीनिर्णय के अनुसार कर्मेंद्रियों की क्रिया प्रारंभ होती है।

व्यवस्यति तया वक्तुं कर्तुं वा बुद्धिपूर्वकम्।

... (Voluntary Motor Function)

६) कोई क्रिया अनुचित प्रतीत होने पर उसे मन के द्वारा ही अवरुद्ध किया जाता है, प्रवृत्युन्मुख मन को प्रवृत्ति से विन्मुख किया जाता है। इसीको मन के द्वारा 'स्वस्य निग्रहः।' कहा जाता है (Restraint or Voluntary Suppression)।

रस-रक्त संवहन, श्वसन, पचन, धातुपरिवर्तन, मल-मूत्र विसर्जन जैसे कर्म बुद्धिपूर्वक (Voluntary) न होकर 'जीवन्मूलक प्रयत्न' इस स्वरुप के होते हैं। किन्तु इन पर भी मन का प्रवर्तक, नियंत्रक स्वरुप का कार्य दिखाई देता है।

मन के कार्य पर वात का नियत्रण होता है।

मनोनाथस्तु मारुतः।

याद्वारे 'सर्वेन्द्रियार्थानाम् अभिवोढा, सर्वेन्द्रियाणाम् उद्योजकः, प्रणेता च मनसः।

ये वात के कार्य हैं।

७) स्वस्य निग्रह - मन में स्वभावसिद्ध चांचल्य दिखाई देता है। विषयों की ओर प्रतिरागात्मक प्रवृत्ति या प्रवणता, लोलुपता होती है। अपितु 'स्वस्य निग्रह' अर्थात अहित अर्थ की ओर प्रवृत्ती को रोकना और हितकारक विषय में एकाग्र होना यह भी मन का ही एक धर्म है, जिसे धृति (धैर्य) कहा जाता है।

विषय प्रवणं चित्तं धृतिभ्रशान्नशक्यते।

नियन्तुमहितादर्थात् धृति हिं नियतात्मिका।

(Self Control, Strong Will Power, Power of Concentration.) - धृति।

८) बुद्धि तथा उससे संलग्न व्यापार - ऊह्य, विचार, संकल्प+विकल्प, चिंतन, ध्यान (बुद्धिः सहकरत्वं सारासार विवेकत्वं च)।

गुणदोष विवेचनार्थ मन को ऊह्य, संकल्प, चिंतन, ध्यान आदि विशेष स्वरुप की शक्ति प्राप्त हैं। बुद्धि विकृत होने पर अथवा दुष्ट होने पर यथार्थ ज्ञान न होकर अन्यथा ज्ञान होता है। इस स्थिति को अतत्त्वाभिनिवेश अन्यथा दर्शन अथवा बुद्धी विभ्रंश कहते है।

भर्तृहरि के अनुसार, मनुष्य का विवेक नष्ट होने पर निम्न स्थिति उत्पन्न होती है।

विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

मन के विषय - पाँच

चिन्त्यं विचार्यम् उह्यं च ध्येयं संकल्प्यमेव च।

यत् किंचित मनसो ज्ञेयं तत् सर्वं हि अर्थसंज्ञकम्। ... च शा.१

१) **चिन्त्य** - किसी घटना/कार्य के कर्तव्य, अकर्तव्यता के विषय में विचार।

२) **विचार्य** - उपपत्ती, अनुपपत्ती के विषय में विचार। उपपत्ती - कोई घटना/कार्य किस प्रकार हुआ इसका सुसंगत प्रकटीकरण/प्रस्तुतीकरण।

३) **उहय** - अनुमान, कोई घटना/कार्य सम्पन्न होगा, इस प्रकार का अनुमान।

४) **ध्येय** - अंतःकरण की भावनाओं का ज्ञान प्राप्त कर, कोई कार्य मनःपूर्वक करना।

५) **संकल्प** - आवश्यक विषय का गुणदृष्टी तथा दोषदृष्टी से विवेचन कर अंतिम निर्णयप्रत पहुँचना।

उपनिषद में - रथ की उपमा

('आत्मा - बुद्धी - मन - इंद्रिय और उनके विषय' इनका परस्पर संबंध।)

शरीर = रथ, आत्मा = रथ का स्वामी, बुद्धि = सारथी, मन = प्रतोद (चाबुक), पंचज्ञानेंद्रिय = रथ के घोडे, इंद्रियों के विषय = मार्ग।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि ...॥

प्राणस्य ज्ञानमयत्वं, धारकत्वं बलदायकत्वं च

वातादि त्रिदोषों का परिणाम मन तथा उसके कार्य पर निश्चित ही होता है।

वायु - नियंता प्रणेता च मनसः।

प्राणवायु

१) **स्थानं प्राणस्य मूर्धोरः कण्ठजिव्हास्यनासिकाः॥** ... च.चि.

२) **प्राणो ऽत्र मूर्धगः॥** ... वा.सू.१२/६

मन का स्थान; अर्थात मस्तिष्क; यही प्राणवायु का मूलस्थान है। जिस प्रकार मनोवह स्त्रोतस सर्वव्यापी है, उसी प्रकार प्राण का संचार क्षेत्र विस्तृत है। जहाँ-जहाँ स्पर्श अथवा संवेदना की अनुभूती हो सकती है, उन सभी स्थानों में प्राणवायु का संचार होता है।

शिरसि च इंद्रियाणि इन्द्रियप्राणवहानि स्त्रोतांसि। ... च.९

प्राण के कार्य

उरः कण्ठोचरो बुद्धिहृदयइंद्रियचित्त धृक्। ... वा.सू.१२

१) **इंद्रियधृक्**

पंचज्ञानेंद्रियों का धारण करना। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण के सूक्ष्म केंद्र शिरस्थ मस्तिष्क में होते हैं। उन्हें प्राणद्रव्यों की प्राप्ति अनवरत स्वरुप में होना आवश्यक होता है। यह प्रेरणा देने का कार्य प्राणवायु का है। बाह्य इंद्रियों से प्राप्त शब्द, स्पर्शादि इंद्रियार्थ, उनकी संवेदनाएं मन की ओर ले जाना। संक्षेपतः इंद्रियों का कार्य समुचित बनाए रखना यही इंद्रियधृक् है।

२) **चित्तधृक्**

चित्त अर्थात मन का धारण करना। मन उभयेंद्रिय है, जो मस्तिष्क में स्थित होता है। इंद्रियों के द्वारा ग्रहण की गई संवेदनाओं का ज्ञान आत्मा को कराना, उस पर योग्यायोग्य विचार कर, कर्मेंद्रियों को प्रेरणा देना ये मन के कार्य उत्तम प्रकार से संयोजित करने का कार्य प्राणवायु करता है। साथही दुर्विचारों से मन को निवृत्त करने के कार्य में भी प्राणवायु सहायक होता है, अर्थात चित्तधृक्।

३) **बुद्धिधृक्**

स्वीकृत ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन कर निर्णय लेने की प्रेरणा बुद्धि को प्राणवायु के द्वारा ही मिलती है।

बुद्धीः सहकारत्वं सारासार विवेकत्वं च

इंद्रियों को विषयग्रहण सामर्थ्य प्रदान करना, इंद्रियों से विषयग्रहण कार्य कराना और इंद्रिय कार्य में अनुशासन, क्रम तथा व्यवस्था बनाए रखना आदि अर्थ 'धारणं' इस शब्द से जानने चाहिए।

संक्षेपतः, प्राणवायु के द्वारा शरीर को बाह्य प्राण का अनुवर्तन न होने पर शरीर - इंद्रिय - सत्व - आत्मा का संयोग टूटकर बिखर जाता है और 'आयु' प्राकृत नहीं रहती।

उदान व्यान वायोः इंद्रियप्रेरकत्वं

१) **उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः।**

२) **वाक् प्रवृत्ती प्रयत्न उर्जा बल वर्ण स्मृति क्रियः॥** ... वा.सू.१२

स्वीकृत ज्ञान का कुछ काल तक जतन यही स्मृति है।

१) **अनुभवजन्य ज्ञानं स्मृतिः, पूर्वानुभूतस्य अर्थस्य स्मरणम्, अनुभूतार्था संप्रमोषः स्मृतेः॥** ... सु.शा.१/१७

२) **स्मृतिशास्त्राजं ज्ञानम्।**

... च.वि.४/४

स्मृती यह कार्य उदान का है। मन को विषय का ज्ञान प्राप्त होकर, हितकर-अहितकर के अनुसार स्वीकार अथवा त्याग करने के लिए प्रतिक्रिया उदान के द्वारा कर्मेंद्रियों तक पहुँचाई जाती है। स्मृती में उपस्थित अनुभव बाहर निकालने का कार्य उदान के द्वारा ही होता है।

स्मृतीभ्रंश यह प्रज्ञापराध का एक कारण है। रुग्णेतिहास में स्मृती महत्वपूर्ण है ही किन्तु इसके अलावा औषध सेवन तथा पथ्यापथ्य पालन करने की दृष्टी से स्मृती उत्तम होनी चाहिए।

स्मृती के विषय में अन्य संदर्भ – च.सू.१३/४३, च.शा.१/९८, सु.उ.६१/३

व्यानवायु

व्यानो हृदि स्थितः। प्रायः सर्वा क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शारीरिणाम्।

मस्तिष्क को रक्त की समुचित आपूर्ति होने पर ही मन एवं इंद्रियों के कार्य प्राकृत रहते हैं।

मस्तिष्क व हृदय, दोनों पर प्राण का नियंत्रण होता है। अतः दोनों अवयवों के क्रियाओं में सुसंवाद होता है। प्राणवायु शिरस्थ मस्तिष्क से निकलनेवाली धमनी के द्वारा हृदय को स्वकार्यार्थ प्रेरणा देता है और शिरस्थ सूक्ष्म इंद्रीयस्थानों को रस-रक्त प्रदान करने का कार्य व्यानवायु के द्वारा किया जाता है।

साथही साधक पित्त और मन में निकट संबंध होता है।

बुद्धिमेधाभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात्।

साधकं हृद्गतं पित्तम्॥

... वा.सू.१२

साधक पित्त को ही ओजकृत् पित्त अथवा मेधाकर पित्त कहा जाता है। मेधावान एवं बुद्धिवान होने पर मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ती होती है। साधक पित्त हृदय के आश्रय से (मस्तिष्क) रहकर मन एवं बुद्धि के सभी व्यापार सम्पन्न कराता है। पित्त तेजोमय तथा प्रकाशमय होता है। बुद्धि की झलक पित्त के कारण प्रतीत होती है।

मेधा = ग्रंथावधारण शक्ति। वर्णित अथवा अवलोकित विषय ग्रहण करने की क्षमता को मेधा कहा जाता है। ब्राह्मी, वेखंड जैसे द्रव्य मेधावृद्धिकर होते है।

संदर्भ – च.सू.२७/३५०, अ.हृ.सू.१४/२८, सु.शा.१/१८, ३/३३, सु.चि.२८/४

हृदयस्थित अवलंबक कफ तथा मस्तिष्कस्थित तर्पक कफ इनका प्राकृतत्व भी मन के कार्य समुचित चलते रहने की दृष्टी से आवश्यक होता है।

मानस – शारीर दोषयोः पारस्परिक संबंधः

इसका विस्तृत वर्णन शारीर क्रिया-भाग १ में किया गया है। संक्षेपतः दोहराते हुए-

शारीर दोष	मानस दोष	समानता
वात	रज	चंचलता, क्रियाशीलता
पित्त	सत्व (गुण)	प्रकाशक, ज्ञानप्रवणता, शुचिता
कफ	तम	स्थिरता, जडत्व, आलस्य 'आवरण' स्वरुप।

पुरूष भिन्नत्वे मनसः भिन्नस्वरूप वर्णनम्

इस विषय में मानस प्रकृति एवं सत्व परीक्षा इनका विचार करना आवश्यक है। इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत लेखक के 'शारीर क्रिया - प्रात्यक्षिक' इस ग्रंथ में किया गया है। यहां केवल नामनिर्देश किया जा रहा है।

सत्व, रज, तम के आधिक्य के अनुसार सात्विक, राजस एवं तामस मानस प्रकृति ३ प्रकार की होती हैं। उनके उपप्रकार निम्न हैं।

सात्विक प्रकृति – (७) - ब्राह्म, ऐंद्र, वारूण, कौबेर, गांधर्व, याम्य, ऋषी।

राजस प्रकृति – (६) - आसुर, राक्षस, पैशाच्य, प्रेत, सर्प, शाकुन।

तामस प्रकृति – (३) - पाशव, मात्स्य, वानस्पत्य।

मानसिक सामर्थ्य (३ प्रकार)

प्रवर (उत्तम) | मध्यम (मध्यम) | अवर (हीन)

'मन' की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए सत्त्वसार परीक्षा का उपयोग किया जाता है।

आत्मा

'शरीर - इंद्रिय - सत्व - आत्मा' इनका संयोग - समयोग वाहीत्व अर्थात आयु। इनमें से 'आत्मा' यह चेतना धातु है। आत्मा अर्थात चेतना की उपस्थिति, अनुपस्थिति के अनुसार ही सेंद्रिय - निरेन्द्रिय द्रव्य इस प्रकार भेद किए गए हैं। आत्मा विभु, सर्वग, नित्य, निर्गुण, निर्विकार, केवल साक्षीमात्र स्वरुप का होने के कारण प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से उसका आकलन करना कठिन है। इसी कारणवश आत्मा का अस्तित्व मानना चाहिए

अथवा नहीं ? ऐसा मूलभूत प्रश्न प्राचीन काल से ही उपस्थित किया जाता है। आत्मा (चेतना धातु) का स्वतंत्र अस्तित्व आयुर्वेद ने मान्य किया है, किन्तु चार्वक, बौद्ध, जैन आदि दर्शन शास्त्र आत्मा की संकल्पना का स्वीकार नहीं करते।

वस्तुतः चैतन्य के अंश सर्वत्र होते हैं। सृष्टी में होने वाला चैतन्य यही परमात्मा (शिव) है और मनुष्य देह में होने वाला चैतन्य यही आत्मा (जीव) है। मनुष्य देह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है - चैतन्य (आत्मा)।

चेतना धातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः। ... च.शा.१/२६

मनुष्य देह के अन्य सर्व घटक अपेक्षाकृत गौण होते हैं, परंतु हम सभी केवल पांचभौतिक देह को ही सत्य मानते है; यही देहबुद्धी है। यह देहबुद्धी; आत्मबुद्धी में परिवर्तित होने पर मोक्ष प्राप्ती (सत्, चित्, आनंद) होती है, क्यों कि उस समय यह आकलन होता है कि प्रत्येक मनुष्य में एक ही चैतन्य (परमात्मा) के अंश उपस्थित हैं। इससे विश्वबंधुत्व की भावना निर्माण होकर 'अहं' तथा 'त्वं' की भावना नष्ट होकर द्वैत से अद्वैत तक प्रवास प्रारंभ होता है।

त्रयोपस्तंभ

सत्वम् आत्मा शरीरं च त्रयम् एतत् त्रिदण्डवत्।

सत्व, आत्मा, शरीर ये जीवन के तीन प्रमुख आधारस्तंभ हैं।

आत्मा यही कर्ता

चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्ता निरुच्यते॥ ... च.शा.१/७५

मन / शरीर चेतनावान यह केवल आभास

अचेतनं क्रियावच्च मनश्चेतयिता परः॥ ... च.शा.१/७२

आत्मा के साक्षित्त्व से ही मन, बुद्धी, इंद्रिय कार्यकारी होते हैं।

आत्मा ज्ञः करणैर्योगाज्ज्ञानं तस्य प्रवर्तते॥ ... च.शा.

धातु - परमाणुओं की उत्त्पत्ति, स्थिती, लय, जागृती - सुषुप्ति- स्वप्न, बाल्य - तारुण्य - वार्धक्य इन सभी अवस्थाओं में आत्मा सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी स्वरुप में होता है, इसी लिए वह अनादि, अनंत होकर जीवन का प्रमुख आधारस्तंभ है।

आयुः चेतनावृत्तिः। ... च.सू.३०/२२

साथही गर्भनिर्माण में शुक्र - शोणित के साथ आत्मा का संयोग महत्वपूर्ण है।

शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थं आत्मप्रकृति विकार सहितं गर्भ इति अभिधीयते॥

आत्म लक्षण

आत्मा निर्गुण, निराकार होता है। उसके अस्तित्व की परीक्षा करने के लिए ग्रंथकारों ने कुछ विशिष्ट लक्षणों का वर्णन किया है।

आत्मा निर्गुण है। आत्मा के लक्षणों को ही आत्मा के अस्तित्व के लक्षणों के स्वरुप में जानना चाहिये।

१) **चरकोक्त – पुरुष लक्षण**

प्राणापानौ निमेषाद्या जीवनं मनसो गतिः।
इंद्रियान्तर संचारः प्रेरणे धारणं च यत्।
देशान्तरगतिः स्वप्ने पञ्चत्वग्रहणं तथा।
दृष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्या सव्येनावगमस्तथा।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः।
बुद्धिः स्मृतिरहंकारो लिंगानि परमात्मनः। ... च.शा.१/७२

उपरोक्त आत्मा के लक्षण केवल जीवंत शरीर में ही दिखाई देते हैं। कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों का अर्थ -

१) **प्राणापान** – प्राण = उपयुक्त पदार्थों का स्वीकार,
अपान = त्याज्य पदार्थों का निःस्सरण।

२) **उन्मेष** = उत्साह, प्रसारण, निमेष = विश्राम, आकुंचन।

३) **जीवनं** = दोष धातु मलों के क्रियाव्यापार।

४) **मनसो गति.** = संकल्प - विकल्प = मन के विचार।

५) **इंद्रियान्तर संचार** – मन एक से दूसरे इंद्रिय से संयुक्त।

६) **प्रेरणं– धारणं** – मन के द्वारा इंद्रिय विषयों की ओर प्रेरणा अथवा नियमन।

७) **देशांतरगतीः स्वप्ने** = स्वप्न में निवास स्थान से अत्यंत दूर देश में गमन करने का प्रत्यय।

८) **पंचत्वग्रहण** = आत्मा के वियोग के पश्चात केवल पांचभौतिक शरीर शेष।

९) **दृष्यस्य दक्षिणेन अक्षणा सव्येनाव·गमस्तथा** = अविच्छिन्न ज्ञान, जो वस्तू वाम नेत्र से दिखाई देती है वही उसी समय दक्षिण नेत्र से भी दिखाई देती है। दोनों आँखों से होनेवाला ज्ञान एकरुप ही।

१०) सुख-दुःखादि गुणों का आश्रय द्रव्य केवल आत्मा ही है।

खादीन्यात्मा मनः कालो ...

इत्यादि द्रव्य में इन गुणों का अभाव होता है।

सुश्रुतोक्त 'षोड्श कला' पुरुष

तस्य (पुरुषस्य) सुख दुःखे इच्छा द्वेषौ प्रयत्नः प्राणापानो उन्मेषनिमेषौ बुद्धिः मनः संकल्पः विचारणा स्मृतिः विज्ञानम् अध्यावसायः विषयोपलब्धिश्च गुणाः।

... सु.शा.१ /१७

१) सुखं = स्वभावतः अनुकूलवेदनीयं।
२) दुःख = स्वभावतः प्रतिकूलवेदनीयम्।
३) इच्छा = अभिलाषः ।
४) द्वेषो = अप्रीतिलक्षणः।
५) प्रयत्नः = कार्यारंभेषु उत्साहः।
६) प्राणवायुः = वक्त्रसंचारी।
७) उन्मेषनिमेषौ = चक्षुषो उन्मीलननिमीलने।
८) बुद्धिः = निश्चयात्मिका।
९) मनः = संशयात्मकं।
१०) संकल्पः = मनसः कर्म।
११) विचारणा = ऊहापोहाभ्यां वस्तुविमर्शः।
१२) स्मृतिः = पूर्वानुभूतस्य अर्थस्य स्मरणम्;
१३) विज्ञानम् = शिल्पशास्त्रादिबोधः।
१४) अध्यवसायो = बुद्धेः व्यापारः।
१५) विषयोपलब्धश्च = विषयाणां शब्दादीनाम् उपलब्धिः।
१६) अपान = पक्वाशयास्थितिः अधोगमनशीलः।

व्यवहार में **'मैं** - निवासस्थान की निर्मिती करुंगा, **मुझे** - आनंद चाहिए, यह **मेरा** - सिर, **मेरा** - मन' इस प्रकार शब्दप्रयोग करनेपर **'मै'** आत्मस्वरुप होता है।

आत्मा के चैतन्य का अविष्कार तथा तदनुसार उसके लक्षण - गर्भउत्पत्ति काल से (आत्मसंयोग से) मृत्यु तक (आत्मवियोग तक) प्रतीत होते हैं। गर्भ हृदय की अभिव्यक्ति

होने के उपरान्त माता के द्वारा व्यक्त होनेवाले दौहृद नूतन जीवात्मा के सुख, दुःख स्वरुप के लक्षण हैं। मृत्यु समीप आने पर रुग्ण की इच्छाएं, सुख, दुःख की भावनाएं कम होने लगती हैं। संभवतः यह वस्तुस्थिति भी जीवात्मा का शरीर से वियोग ही सूचित करती है।

जीवात्मा के लक्षण सार्वदेहिक स्तर पर तथा प्रत्येक अणु-परमाणु स्तर पर (Cellular Level) निम्न स्वरुप में निश्चित रुप से प्रतीत होते हैं।

	जीवात्मा के शारीरिक स्तर पर लक्षण	क्या सूचीत होता है ? (Cellular Level)	जीवात्मा के मानसिक स्तर पर लक्षण
१	इच्छा	Assimilation	चेतना
२	द्वेष	Excretion	धृति
३	सुख	Growth	बुद्धि
४	दुःख	Irritability.	स्मृति
५	प्रयत्न	Reproduction	अहंकार

मनुष्य के सामाजिक - शारीरिक - मानसिक - बौद्धिक - आत्मिक स्वास्थ्य का परिपूर्ण विचार आयुर्वेद ने किया है।

आत्मा निरुक्ति, पर्याय

'अत - सातत्यगमने' धातु से आत्मा शद्ध की निर्मिती हुई है। जन्म - मृत्यु के अखंडित चक्र के द्वारा तथा गर्भावक्रांती से मृत्यु तक विविध अवस्थाओं में से भ्रमण यह अर्थ सूचित होता है।

पर्याय

(च. शा. १, ४; सु. शा. १, ४) - आत्मा, परमात्मा, गर्भात्मा, अन्तरात्मा, इंद्रियात्मा, भूतात्मा, जीवात्मा, पुरुष, पुमान्, चेतनाधातु, ईश्वर, परमेश्वर, जीव, सत्व, बीजधातु, बीजधर्मा, विश्वकर्मा, विश्वरुप, अव्यक्त, क्षेत्रज्ञ, विभुः निर्विशेष, ज्ञ, अतीन्द्रिय, पर, अनपर, अनादि, नित्यपुरुष, निर्विकार, निर्गुण, वशी, सर्वग, अक्षर, नित्ययुज् सानुशय।

स्वरुप

आत्मा - ९ कारण द्रव्यों में से एक। आत्मा द्रव्य होने के कारण गुण, कर्मों का आश्रय है। आत्मा एक, विभु, नित्य है तथा अन्य अभ्यासकों के अनुसार अनेक, सूक्ष्म एवं नित्य है। (चरक के अनुसार - सत्व एवं शरीर संयोग के अनुसार असंख्य, भिन्न तथा

अनंत, असर्वज्ञ एवं जन्ममृत्युरुप संसार से बद्ध। सांख्य मतानुसार भी पुरुष - अनेक हैं।)
सुश्रुत तथा न्यायवैशैषिक मतानुसार आत्मा के २ प्रकार -

१) जीवात्मा = देही, संसारी - आत्मा।

२) परमात्मा = सर्वगतात्मा = विश्वात्मा = ब्रह्म।

आत्मा के कर्म

१) चैतन्य प्रदान करना। इंद्रिय, मन, देह इस जड समूह को सचेतन, स्वकार्यक्षम बनाना।

२) ज्ञानोत्पत्ति तथा इंद्रियों को प्रेरणा, नियंत्रण, इसी लिए आत्मा को 'ज्ञ' कहा जाता है। प्रयत्न यह आत्मा का विशिष्ट गुण है। प्रयत्न = कृति, कर्म, चेष्टा।

आत्मा के अन्य विशेष

१) 'आत्मा' संस्कारों का आश्रय है। इसी को 'वासना' भी कहा जाता है। ये संस्कार ही कर्मानुसारी जीवात्मा के विविध योनियों में होनेवाले संचरण का कारण होते हैं।

उदा.– सात्विक संस्कारों के कारण देवयोनि आदि।

२) **आत्मा – स्वतंत्रता व वशीत्व –** कर्तृत्व दृष्टि से आत्मा स्वतंत्र, तथापि कर्म के ईष्ट, अनिष्ट फल की दृष्टी से वशीभूत (बंधयुक्त) है।

३) **आत्मावशी –** फल के उद्देश से किस प्रकार कर्म करने चाहिये ?

इस निर्णय के विषय में स्वाधीन, स्ववश है; न कि परवश। साथही सभी प्रवृत्तियों से मन को रोक कर समाधि अवस्था में मन को स्थिर, शांत करने के लिए आत्मा समर्थ है।

४) **आत्मा – विभु –** सर्वव्यापक, सर्वगत - इंद्रियों की मर्यादित शक्ति के अनुसार भूत - वर्तमान - भविष्य का ज्ञान होता है। किन्तु इन देहगत इंद्रियों से बंधनमुक्त होकर समाधि अवस्था में जब आत्मा अपने शुद्ध (रज, तम रहित) तथा निर्विकार (सत्वप्रधान) स्वरुप में रहता है तब आत्मा की ज्ञानशक्ति सीमारहित हो जाती है।

५) **आत्मा – भोक्ता –** वस्तुतः आत्मा निर्विकार है। परंतु चेतन आत्मा के संयोग के कारण त्रिगुणात्मक चित्त रोगद्वेषात्मक प्रवृत्ती कर सुखदुःख की अनुभूति करता है। चेतना के अभाव में यह असंभव होने के कारण आत्मा - भोक्ता।

६) **आत्मा – द्रष्टा अथवा साक्षी –** ज्ञानवान होने पर भी स्वयं निर्विकार। अतः गुणों के प्रभाव से होनेवाली क्रियाएं तटस्थ - उदासीनभाव - साक्षीभूत होकर अवलोकित करता है।

७) **आत्मा – अनादि, शाश्वत, नित्य –** कर्मफल भुगतने के लिए विभिन्न देहधारण। किन्तु जन्ममरण चक्र से मुक्त होने की इच्छा होने पर ज्ञान - तप - योग के द्वारा मन के रज, तम का क्षय करके सत्ववृद्धि करने पर, मन को स्ववश करने पर, आत्मा मुक्त हो सकता है। स्वयं का विभात्मा स्वरूप प्राप्त कर सकता है।

आत्मज भाव

आत्मा के कारण प्राप्त विशिष्ट लक्षणों को आत्मज भाव कहते है। आत्मा के अलावा अन्य किसी कारण से ये लक्षण उत्पन्न नहीं हो सकते।

लक्षण

१) चेतना, २) मन, बुद्धि, इंद्रिय, ३) धृति, स्मृती, अहंकार, प्रयत्न, ४) सुख-दुःख का अनुभव, ५) इच्छा (राग), द्वेष (अरुची), ६) आत्मज्ञान - त्रैकालिक, सार्वत्रिक, ७) प्राणापानौ - जीवन धारणोपयोगि क्रिया, ८) प्रेरण एवं धारण - इंद्रियों को कार्य प्रेरणा तथा नियमन, ९) विविध योनियों में जीव का अवागमन - जन्मधारण (तासु तासु योनिषु उत्पत्तिः) - चतुर्विध मुख्य योनी - जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज, १०) एक ही जाति में उत्पन्न विभिन्न व्यक्तियों में आकृति - वर्ण - स्वरभेद।

आत्मज्ञान के प्रकार

१) प्रायः जागृत अवस्था में आत्मा को इंद्रियजन्य ज्ञान प्राप्त होता है।

२) स्वप्नावस्था में इंद्रिय तम से आच्छादित एवं क्रियारहित होने पर भी आत्मा - अपनी आंतरिक साधना के द्वारा जागृतावस्था के समान ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

३) समाधी - अवस्था में इंद्रिय, मन का निरोध। उनका किसी भी विषयों से (अर्थों से) संबंध नहीं होता। ऐसा होने पर भी आत्मा त्रिकालाबाधित, सार्वत्रिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसके कुछ उदाहरण संतचरित्र में मिलते हैं। यह अलौकिक ज्ञान - शक्ति स्वरूप तथा ऐश्वर्य है। आत्मज्ञान के कारण प्राप्त अष्टविध ऐश्वर्य, इच्छित वस्तुओं का → दर्शन, श्रवण, साक्षात अनुभव, परचित्त का ज्ञान, परकाया में प्रवेश, स्वयं अदृश्य होना।

आत्मा का ज्ञान किस प्रकार होगा ?

आत्मा विभु अथवा सुक्ष्मतम होने के कारण 'चर्मचक्षु' के द्वारा उसका ज्ञान होना संभव नहीं। इसके लिए **ज्ञान चक्षु, तपश्चक्षु अथवा ध्यान चक्षु** (योग - समाधि) की आवश्यकता होती है।

निद्रा - स्वप्न

शरीर तथा मन तरोताजा एवं उल्हसित होने के लिए 'निद्रा के कारण' प्राप्त होनेवाली **विश्रांती** अत्यावश्यक है। साथही आहार, निद्रा एवं ब्रम्हचर्य ये जीवन के **त्रयोपस्तंभ** हैं। प्राकृत निद्रा के कारण जीवनावश्यक लाभ होते हैं तथा अनिद्रा अथवा अयोग्य निद्रा के कारण हानि होती है।

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्य बलाबलम्।
वृषता क्लीबता ज्ञानम् अज्ञानं जीवितं न च॥ ... वा.सू.७ /४१

इसी लिए आयुर्वेद में निद्रा के कारण; निद्रा सेवन किस व्यक्ति ने, कितने प्रमाण में, किस स्वरुप में करना चाहिये; अतिनिद्रा - अनिद्रा के कारण, उनके उपाय इसके विषय में विस्तृत वर्णन किया है। सद्यकाल में वर्धित मानसिक तनाव के कारण अनिद्रा के कारण पीडित रूग्णों की संख्या चिंताजनक रुप से बढती जा रही है। महीष दुग्ध अथवा अभ्यंग, शिरोधारा ये उपाय अनिद्राग्रस्त रुग्णों के लिए वरदान ही हैं।

निद्रा के कारण

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मान क्लमान्वितः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥ ... च.सू.२१ /३५

शरीर एवं मन थक जाते हैं, इंद्रिय स्व विषयों से (अर्थों से) निवृत्त होते हैं, मन के साथ आत्मा निष्क्रीय होता है तब मनुष्य निद्राधीन होता है। मुख्यतः मन की विषयों से निवृत्ती होने पर अपने आप आत्मा विषय ग्रहण नहीं करता। आत्मा की ही अप्रवृत्ती होने के कारण इंद्रिय विषयों की ओर प्रवृत्त नहीं होते।

मन कहाँ जाता है ?

मन का इंद्रियों के साथ होने वाला संपर्क खंडित होता है। मन यह इंद्रिय व्यतिरिक्त प्रदेश में अवस्थित हो जाता है। न्याय शास्त्र के अनुसार मन का 'पुरिततीं' नाडी में प्रवेश होता है।

यदा मनः पुरीतति नाड्यां प्रविशति तदा सुषुप्तिः। ... तर्कसंग्रह सू.१८.दिपिका

निद्रा की संप्राप्ति

हृदयं चेतनास्थानं उक्तं सुश्रुत देहिनाम्।
तमोभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनाम्।
निद्राहितुस्तमः सत्वं बोधते हेतुरुच्यते॥ ... सु.शा.४/३४, ३५

हृदय इस चेतनास्थान में तमोगुण का अधिक्य होने पर निद्रा उत्पन्न होती है। सत्व गुण का उत्कर्ष होने पर अवबोधन (जागृतावस्था)।

निद्रा के प्रकार

तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च। मनः शरीरश्रमसंभवा च।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च। रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा॥...च.सू.२१/५८

१) **तमोभवा** – प्रलयकाल में उत्पन्न होनेवाली, व्याधि की गंभीरावस्था में उत्पन्न होनेवाली तामसी निद्रा। तमोगुणी श्लेष्मा का संज्ञावह स्त्रोतस में अवरोध, जिससे रजोगुण में - अर्थग्रहण में अवरोध उत्पन्न होता है।

२) **श्लेष्मसमुद्भवा** – शरीर में आत्यंतिक कफवृद्धि के कारण ज्ञानग्रहण में अवरोध।

३) **शरीर सश्रमसंभवा** – शरीर अत्यधिक श्रमित होने के कारण मानसिक थकान।

४) **आगंतुकी** – बाह्यतः कारणों की वजह से विशेषतः व्याधिजन्य।

५) **रात्रिस्वभावप्रभवा** – रात्रिकाल स्वभावतः अंधारमय, तमोप्रधान होने के कारण नैसर्गिकतः ही मन पर आवरण की क्रिया होती है। इसी लिए रात्रिकाल की निद्रा निसर्गचक्र के अनुसार होने के कारण वास्तविक रुप से शरीर एवं मन को विश्राम, आरोग्य प्रदान करनेवाली होती है। यह आरोग्य तथा आयुष्य का पोषण करनेवाली होने के कारण चरकाचार्य ने उसे 'भूतधात्री' कहा है। निद्रा के पोषण गुण के कारण नवजात शिशुओं में स्वाभाविक रुप से अधिक निद्रा प्रवृत्ती दिखाई देती है। निद्रा शीतगुण प्रदान करती है, अतः केवल ग्रीष्म ऋतु में ही दिवास्वप्न की अनुमती दी गई है।

प्रकृति एवं निद्रा

वातप्रकृति व्यक्ति **प्रजागरुक** और कफप्रकृति व्यक्ति **निद्रालु** होती है।

निद्रायोग

रात में ८ - १० घंटे निद्रा यह सम्यक योग है। दिवास्वप्न यह मिथ्या योग है, जो कफ-पित्त वृद्धि करता है। रात में निद्रा सेवन न करना यह अयोग है, जिसके कारण वातवृद्धि तथा मलावष्टंभ होते हैं। अधिक निद्रा सेवन के कारण कफवृद्धि, स्थौल्य उत्पन्न होते हैं।

एकत्रित संदर्भ – निद्रा के तीन प्रकार

सु. शा. ४/३२, निद्रा के सात प्रकार - अ. सं. सू. ६/६, निद्रा के गुण - च. सू. २१/३५, ३६, निद्रा की संप्राप्ति - अ.सं.सू. ९/५५, सु.सू.४५/३ (डल्हण)

रात्रिचर्या में वर्णित 'निद्राविषयक' अध्ययन के पश्चात निद्रा से संबंधित स्वप्न प्रकार का अध्ययन किया जाएगा।

स्वप्न

स्वप्न का कारण – रजोगुण की प्रवृत्ती

मन पर तमोगुण का आवरण होने पर निद्रा उत्पन्न होती है। स्वप्न में कई बार मन पर होने वाला तमोगुण का आवरण दूर होकर रजोगुण की प्रवृत्ती होती है। निद्रावस्था में इंद्रियों के द्वारा बाह्य विषयों का ग्रहण करने की प्रवृत्ती नहीं होती। तथापि रजोगुण के कारण पूर्वस्मृती की ओर मन की प्रवृत्ती होती रहती है। अनुभविक स्मृती की उत्पत्ति होने पर पूर्वानुभव का ज्ञान प्राप्त कराते हैं, यही स्वप्न हैं।

पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः।
रजोयुक्तेन मनसा गृहणात्यर्थान् शुभाशुभान्॥

स्वप्न के प्रकार (७)

दृष्टं श्रुतं अनुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः॥ ... च.इं.५/४३

१) **दृष्ट** – जागृतावस्था में अवलोकित घटनाएं/वस्तुएं स्वप्न में दिखाई देना।
२) **श्रुतं** – जागृतावस्था में श्रवण की हुई बातें स्वप्न में अनुभूत होना।
३) **अनुभूतं** – श्रोत्र एवं नेत्र इनके अलावा इंद्रियों ने जागृतावस्था में प्राप्त किए हुए ज्ञान के कारण स्वप्न में अनुभव।
४) **प्रार्थित** – जागृतावस्था में की हुई कामनाओं को स्वप्न में पूर्ती।
५) **कल्पित** – जिसका प्रत्यक्ष अनुभव कभी भी नहीं किया गया, किन्तु कल्पना के कारण कुछ बातें स्वप्न में साकार होती हैं।

६) **भाविक** – भविष्यकाल में होनेवाली घटनाओं का सूचित स्वरुप में शुभाशुभ फल देनेवाले स्वप्न।
७) **दोषज** – त्रिदोषों की वृद्धि के कारण उत्पन्न स्वप्न।

प्रकृति एवं स्वप्न

दोषों के गुणों के अनुसार दोषज प्रकृति की व्यक्ति को स्वप्न दिखाई देने की संभावना होती है, जैसे - वात के चल गुण के कारण वातप्रकृति व्यक्ति को दौडना, गगनविहार, वृक्षारोहण आदि स्वरुप के स्वप्न दिखाई देते हैं और पित्त के उष्ण - तीक्ष्ण गुण के कारण,

सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान्।
संपश्येदपि च हुताश विद्युत् उल्काः॥

इस प्रकार स्वप्न विवरण सुश्रुताचार्य ने किया है। कफ के सौम्य, शीत, स्थिर, आप्य गुणों के कारण कफप्रकृति व्यक्ति के स्वप्न का वर्णन देखिए -

सुप्तः सन् सकमलहंस चक्रवाकान् संपश्येदपि च जलाशयात् मनोज्ञान॥

भाविव्याधिसूचक स्वप्न

	स्वप्न	व्याधि संभावना
१	स्वप्न में रक्त, नील, हरित, पीत वर्ण	रक्तपित्त विकार की
२	केश, अस्थि, रक्षा आदि के ढेर पर चढना, देश मनुष्यरहित है, जलाशय शुष्क हुआ है।	राजयक्ष्मा

अरिष्ट सूचक स्वप्न

व्याधि की गंभीरता अथवा मृत्युसूचक स्वप्न किस समय ?

मनोवहानां पूर्णत्वाद्दोषैरतिबलैस्त्रिभिः।
स्रोतसां दारुणान् स्वप्नान् काले पश्यति दारुणे॥
जातिप्रसुप्तः पुरुषः सफालनफलांस्तथा।
इंन्द्रियेशन मनसा स्वप्नं पश्यत्यनेकधा॥ ... च.इं.५/४२

संक्षेपतः, स्वप्नों का शारीर क्रियात्मक व्याधि-मृत्युसूचक वर्णन ग्रंथों में वर्णित है।

एकत्रित संदर्भ – च. इं. ४/२, ५/४३, सु.शा.४/३६, ३७, अ.सं.सू. ६/५६, अ.हृ.शा. ६/२१ (अरुणदत्त)

Limbic System

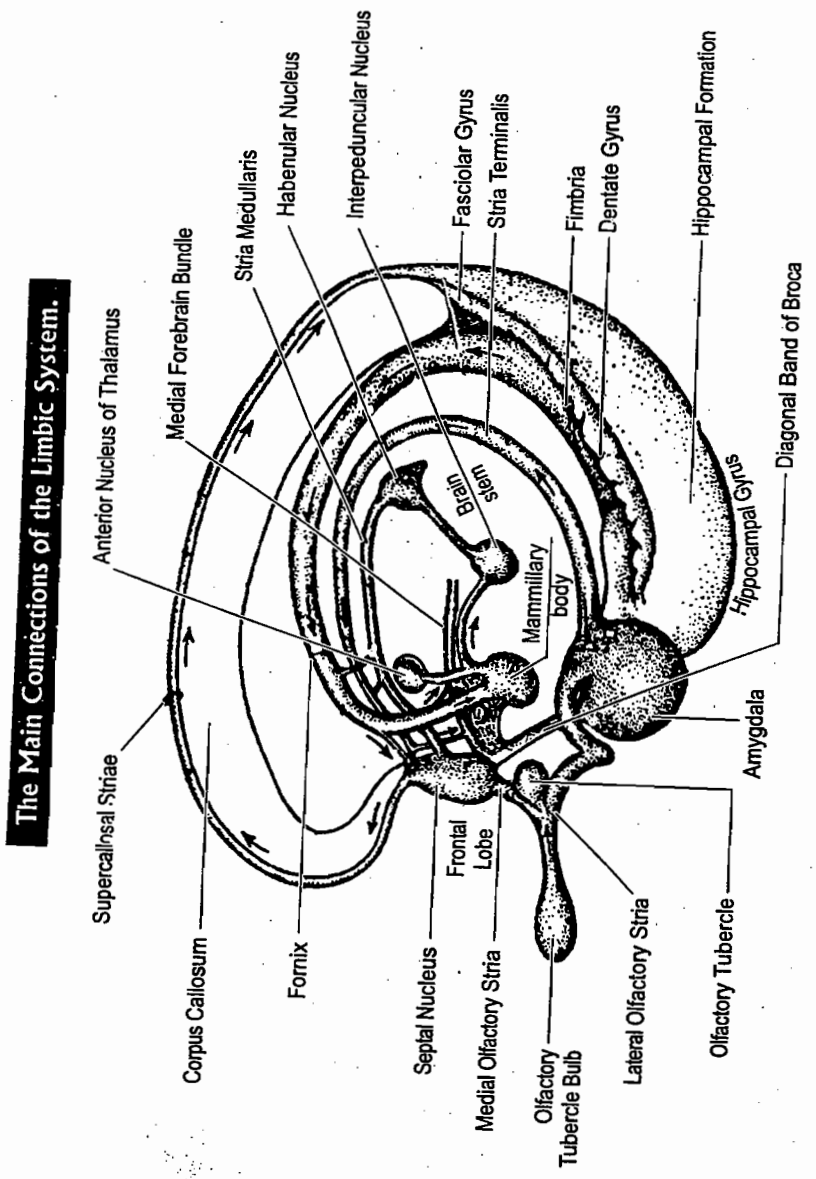

Certain components of the cerebral hemisphere and diencephalon constitute the limbic (Limbus = Border) system. This is important as research work shows its association with a control of visceral functions as a primary area for emotional expression and outlets. Following are the important regions of the system.

1) Cortex (Limbic Lobe) - Largest components are Para - hippocampal and Cingulate Gyri (both gyri of cerebral hemispheres) and Hippocampus, which extends into the floor of the lateral ventricle.
2) Dentate Gyrus
3) Amygdaloid body (Amygdala)
4) Septal Nuclei
5) Mammillary bodies of the hypothalamus
6) Anterior nucleus of the hypothalamus
7) Olfactory bulbs
8) Bundles of interconnecting myelinated axons.

The Limbic System is a wishbone shaped group of structures that encircles the brain stem and functions in the Emotional aspects of behaviour related to survival. The Hippocampus, together with portions of the cerebrum also functions in Memory. Memory impairment results from lesions in the limbic system. Experiments on the limbic system of the monkeys and other animals indicate that the Amygdaloid Nucleus assumes a major role in controlling the overall pattern of behaviour.

Limbic System is associated with Pleasure and Pain. Stimulation of the perifornical nuclei of the hypothalamus results in a behavioural pattern called Rage. The animal assumes a defensive posture - extending its claws, raising its tail, hissing, spitting, growling and opening its eyes wide. Stimulating other areas of the limbic system

results in an opposite behavioral pattern - docility, tameness and affection.

As the limbic system assumes a primary function in emotions such as pain, pleasure, anger, rage, fear, sorrow, sexual feelings, docility and affection, is called as **Visceral or Emotional Brain.**

Sleep

Definition

A state of consciousness, that differs from alert wakefulness, by a loss of critical reactivity, to events in the environment, accompanied by a profound alteration in the function of the brain.

Rhythm

One sleep period in 24 hours. It also depends on habit. Commonly, sleep occurs during the period of rest i.e.- at night. In night workers, day sleeping is the habit.

Requirement

Varies inversely with age.

- New born baby - 16 - 20 Hours.
- Children - 12 - 14 Hours.
- Adults - 7 - 9 Hours.
- Old age - 5 Hours.

Curve

1) **In adults** - Max. depth at the end of 1st hour.
2) **In children** - 2 max. periods -
   a) Between 1st and 2nd hour.
   b) Between 8th and 9th hour.
   (No dreams during deep sleep.)

Physiological responses during sleep

1) **C. V. S.** - Pulse ↓, B. P.↓
2) **RS** - Rate ↓
3) **B. M. R.** - ↓
4) **Secretions** - Salivary and lacrimal - ↓
   Gastric - ↑ or unaltered
   Sweat - ↑
5) **Muscles** - Relaxed.
6) **Eyes**
- **Eye - balls** - roll up and out
  (Due to flaccid external ocular muscles),
- **Eye lids** - come closer (due to drooping of the upper lids),
- **Pupils** - contracted
7) **CNS - EEG** = Appearance of δ waves,
   Deep Reflexes - ↓, Babinski - Extensor.

Different stages during sleep

1) Light sleep = Rapid Eye Movement Sleep (REM Sleep) = Rhomben - cephalic sleep - During this stage, high incidence of penile erection and grinding of teeth (Bruxism) .
2) Non Rapid Eye Movement Sleep (NREM Sleep)-Slow wave sleep.

Causes of sleep

1) Howell's Theory of Cerebral Ischaemia

The drowsiness after food is due to splanchnic vasodilatation, fall of B. P. and consequent cerebral ischaemia.

2) Biochemical theories

a) Acetylcholine

Acetylcholine is closely related to functional integrity of the nervous system. It is claimed that sleep is due to the accumulation of Acetylcholine in the cerebral cortex.

b) Hypnotoxin

Some scientists claim that hypnotoxin, which is liberated from the brain tissue, produces sleep.

c) Lactic Acid

During fatigue, lactic acid accumulates in the tissues. Lactic acid depresses the activities of the cerebral cortex. (But what is real ? - In fatigue, there is often sleeplessness and oxidation of lactic acid occurs which supplies energy to the brain, which disapprove this theory.)

3) Kleitman's Theory

More acceptable than others. Due to the reduction of muscle tone and discharge of less afferent impulses, the cerebral cortex remain inactive.

Fatigue of the muscle with consequent reduction of transmission of afferent impulses to the cerebral cortex and thereby keeping it inactive seems to be a plausible factor in the production of sleep.

Pathology

Insomnia

Abnormal wakefullness or inability to sleep.

Effects of insomnia

(Symptoms observed, when subjects keep awake for 60 - 114 hours) - Equilibrium - disturbed, Neuromuscular fatigue, mental concentration difficult and inaccurate, Threshold for pain - lowered, Babinski - Extensor.

प्रकरण १६

ग्रंथीसंस्थानम्

पेपर २ – विभाग ख – गट ६

ग्रंथीसंस्थानम् - विभिन्न अंतःस्त्रावी ग्रंथीनां वर्णनम्, कार्य वर्णनं च तेषां शारिर मानस प्रभाव वर्णनम् च तेषां क्षयवृध्दिजन्य लक्षणानि वर्णनम् च (Study of endocrine system, Endocrine Glands etc.)

Endocrine Glands

Endocrine Glands are the ductless glands, which secrete the chemical substances called, Hormones, directly in to blood circulation. Any chemical substance synthesized in the body tissues and carried by the blood to other parts of the body for its specific actions is termed as hormone. The hormones in general are stimulatory in action.

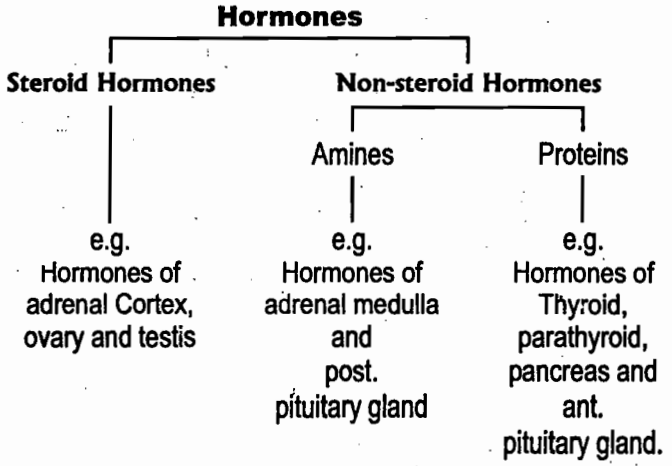

Mode of action of Hormones

The hormones usually have low molecular weight, are easily soluble and diffusible and act by increasing the cells membrane

permeability. These mostly tend to accelerate the specific body reaction by acting as catalysts and coenzymes, so that these are effective even in minute amounts.

Transport of Hormones

Occurs though the blood, where these may be found in free state to some extent but mostly bound to plasma proteins to avoid their over - action and early degradation

Metabolism of Hormones

The hormones are inactivated by conjugation, oxidation etc. Some of the hormones may be inactivated in the gland itself.

Inter - relation of hormones

The hormones do not function in the body as single independant units. Their actions are inter dependant and well coordinated and balanced in normal persons.

Feed-back mechanism between anterior pituitary and target glands

This is one of the ways by which the secretion of target glands is controlled by the interior pituitary and vice versa eg.- Excessive secretion of thyroid hormone tends to depress further release of thyroid hormone (TSH) .

Nervous Control

The brain cells are assumed to produce neuro - humours, which control the anterior pituitary secretions, which in turn affect the target glands. Most of the sites of nervous control of hormonal secretions have been located in the hypothalamus. Interrelation between brain and anterior pituitary is via portal vessels, though which neuro hormones are released to stimulate the secretion of specific hormones of anterior pituitary. Such neuro-humours have been named as Releasing Factors. eg.- Thyrotrophic releasing factor (TRF) .

Effects of environmental factors

Factors like light, temperature and emotions have been known to affect the hormones. eg.- Emotions stimulate adrenaline secretions.

Auto - regulation of hormonal secretion

Blood glucose levels and Insulin is a classical example. Any increase in blood sugar levels tends to stimulate insulin, so that blood sugar is brought down to within normal limits, when once again insulin is depressed.

Classification of endocrine glands

1)	**Purely**	-	**endocrine Glands.**
		eg.-	Thyroid, Parathyroid, Adrenal & Pituitary.
2)	**Mixed type**	eg.-	Pancreas, Ovaries, Testes, Thymus.
3)	**Temporary**	eg.-	Placenta.
4)	**Disputable**	eg.-	Pineal body.

Hormones

Any chemical substance synthesized in body tissues and carried by blood to other parts of body for its specific action.

i) **Anterior Pituitary**
G.H., prolactin, TSH, FSH, LH, ACTH, M.S.T.

ii) **Posterior Pituitary**
Oxytocin, ADH (Vasopressin)

iii) **Thyroid**
Tri-iodo thyroxine (T3) and Thyroxine (T4), Thyro-Calcitonin.

iv) **Parathyroid -- Parathormone**

v) **Adrenal cortex**
Cortisol, Aldosterone, sex hormones (Androgens)

vi) **Adrenal Medulla**

Adrenaline and non-Adrenaline

vii) **Pancreases**

Insulin and Glucagon

viii) **Tests – Testosterone**

ix) **Ovary – Oestrogen**

Action of Hormones

1) Growth Hormone

Stimulates general body growth, uptake of Amino acids and Protein synthesis. Stimulates liver to produce – somatomedins, which cause proliferation of cartilage cell in epiphyseal plates of developing or growing long bones.

2) Prolactin

Stimulate development of mammary glands, during pregnancy. Following parturition – Prolactin maintains milk production in mammary glands during lactation.

3) TSH

Stimulates synthesis and secretion of T3 and T4 from Thyroid gland.

4) FSH

In females – Promotes oestrogen secretion and growth and maturation of ovarian follicles.

In males – Stimulates spermatogenesis and secretion of Androgen binding protein (ABP) by 'Sertoli cells'.

5) LH

In Female – In association with FSH – induces ovulation, promotes final maturation of ovarian follicles and formation of corpus luteum, following ovulation. Also promotes secretion of Oestrogen and Progesterone from corpus Luteum.

In male – Maintains and stimulates the interstitial cells of Leydig to produce Testosterone (LH = ICSH = Interstitial cell stimulating Hormone)

6) ACTH

Influences the functions of cells in Adrenal cortex – Stimulates the synthesis and release of Gluco-corticoids from Zona fasciculata and Zona Reticularis of Adrenal Cortex.

7) MSH

Increase pigmentation of skin by causing dispersion of Melanin granules.

8) Oxytocin

During labour – it increases strong contractions of smooth muscles of uterus – resulting in child birth. Milk ejection reflex – release oxytocin, which stimulates contraction of myoepithelial cells of alveoli of breast milk ejection.

9) ADH

To increase water permeability in distal convoluted and collecting tubules of kidney – more water reabsorption therefore concentration of urine increases.

10) T_3 and T_4

Accelerates metabolic rate and increase cell metabolism. Growth, differentiation and development throughout body. Increase rate of Protein, Carbohydrates and Fat metabolism.

11) Calcitonin

Secreted by Para Follicular cells – Reduce number of Osteoclasts – more Ca is preserved in Bones) – calcitonin decreases blood Ca level.

12) Parathormone

Produced by chief cells – Maintain proper ca level in blood. Increase the proliferation of osteoclasts. Antagonistic to calcitonin. Parathormone influences kidney to form "Calcitriol" Hormone, which increase ca absorption from G.I. tract into blood.

13) Aldosterone

Cells of Zona Glomerulosa, produce this hormone increases Na (& waste) reabsorption from distal tubules – Increase fluid volume – restores normal electrolyte balance – Raises BP.

14) Gluco-corticoids (cortisol and cortisone)

Secreted by cells of zona fasciculata and zona reticularis. Secretion of this hormone is Imp body response to stress – increase blood sugar, suppress inflammatory responses.

15) Sex steroids

Produced by cells of zona reticularis – Amount produced are of little physiological significance.

16) Epinephrine and Non epinephrine

These catecholamines are secreted by Adrenal medulla. These hormones prepare individual, for fight or flight response resulting in increase in Heart rate, cardiac output, blood flow.

17) Testosterone

Needed in seminiferous tubules for normal spermatogenesis. Structure and function of all accessory reproductive glands and development and maintenance of Male secondary sex characteristics are depending on Testosterone.

18) Oestrogen

Development of – Female accessory sex organs. Secondary sex characters, influence follicular phase (1st half) of M.C., Ca^+ deposition in bones is stimulated.

19) Thymus

Lymphocyte formation in children related to growth of gonads, Imp in association with Immunology process in body.

Abnormalities in Hormonal secretion (Hyper or Hypo)

1) Thyroid

- Hyperthyroidism (Goitre / Thyrotoxicosis)
- Hypothyroidism – cretinism (children) and Myxoedema (Adult)

2) Parathyroid

- Hyperparathyroidism (due to Tumour of glands) – Excess osteoclastic activity
- Hypoparathyroidism (Tetany)

3) Adrenal cortex

- Primary Hyperaldosteronism (Conn's disease)
- Secondary hyper aldosteronism
- Over secretion of cortisol (Cushing syndrome)
- Chronic Adrenal insufficiency (Addison's disease)

4) Adrenal medulla

- Tumour – Over secretion of nor-Adrenaline (Pheochromocytoma)

5) Pituitary (Anterior)

- Over secretion of GH – Gigantism (in young), Acromegaly (in Adults)
- Deficiency of GH (Dwarfism)
- ACTH (Hyperfunction) – Cushing disease (Male) Cushing disease and virilism (Female)
- ACTH – Hypofunction – In young – Laurence Biddle moon syndrome and Frohlich's syndrome (Adult type)
- Pan-Hypo pituitarism – Simmond's disease.

6) Post-Pituitary

- Hypo – ADH secretion = Diabetes Insipidus

Local Hormones

Acetylcholine, Heparin, Histamine, Serotonin, Angiotensin, Bradykinin

Hormones are chemical substances produced by the various endocrine glands and released into the blood stream to effect actions, by way of specific receptor sites in other parts of the body. These substances control and co - ordinate body growth and the build - up and breakdown of the body tissue (Metabolism), nutrition, body temperature, the circulation of the blood, salt and water balance, the development of the secondary sexual characteristics and reproduction.

The hormonal system of the body is under overall combined control of psychic stimuli, external stimuli and biochemical stability mechanisms which interact and operate on the hypothalamus of the brain. The hypothalamus control the pituitary gland, which has been

described as "**the conductor of the endocrine orchestra**". This central gland releases a range of hormones which stimulates the action of the other endocrine glands.

1) The pituitary gland

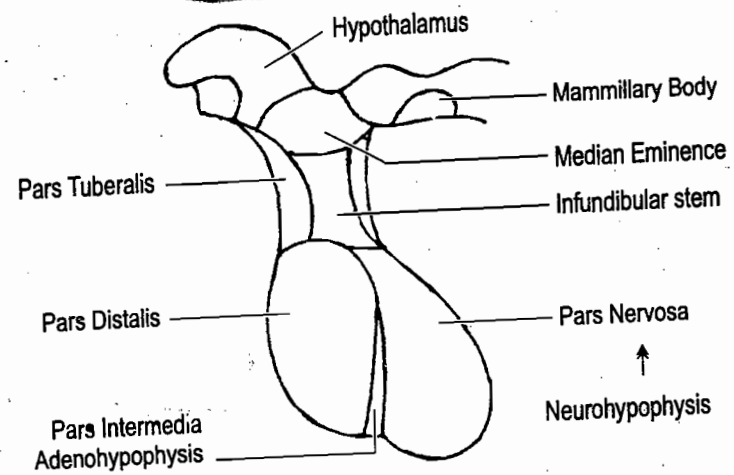

Parts of Pituitary

- Small endocrine gland situated at the base of the brain in sella turcica or hypophyseal fossa or pituitary fossa.
- Connected to the hypothalamus by pituitary stalk or hypophyseal stalk.
- Oval in shape
- Measures 8 mm anteroposteriorly and 12 mm transversely.
- Wt. – 500 mg (0.5 gm)

The pituitary gland is a small, pea sized organ connected to the middle of the underside of the brain by a short stalk and lying in a hollow in the central bone of the base of the skull (Sphenoid Bone), just behind the nose cavity. It is connected to the hypothalamus area of the brain, immediately above it and is the central hormone -

producing gland and the controller of all the other glands which secrete hormones into the bloodstream (Endocrine glands or glands of internal secretion) . The pituitary gland is the nodal point of the whole endocrine system and in conjunction with the hypothalamus, forms the link between the nervous system (Movement, sensation, mental activity) and the chemical control system (all metabolic, growth and regulatory processes) of the body.

The pituitary gland secretes a variety of different hormones. They are -

1) **Growth hormone** - which controls growth.
2) **Prolactin** - which promote milk production at the end of pregnancy.
3) **Thyroid** - Stimulating hormone which control the output of thyroid hormone (TSH) .
4) **Follicle** - Stimulating hormone (FSH) and luteinizing hormone (LH), which control the production of eggs (Ovum) from the ovary and maintenance of pregnancy after fertilization.
5) **Adrenocorticotropic hormone (ACTH)** - which control the output of cortisol from the adrenal glands.
6) **Oxytocin** - which releases milk from the breast and causes the womb (Uterus) to contract.
7) **Vasopressin** - Also called the antidiuretic hormone, which increases the reabsorption of water in the kidneys and controls water loss.
8) **Melanocyte** Stimulating hormone (MSH), which stimulates the growth of pigment cells in the skin.

Details of pituitary gland

1) Growth Hormone (G.H.)

- Secreted by chromophils (Acidophilic cells)
- G.H. = Somatotrophic Hormone (S.T.H.) (Soma = body cell)
- The function of this hormone is seen on all the cells of the body, except reproductive cells.

Functions

i) Promotes and regulates the process of growth.

ii) Increase of Messenger RNA in the cells, which promotes protein synthesis.

iii) Amino acid transport and protein synthesis is enhanced.

iv) Accelerate linear growth of skeleton and widening of epiphysis.

- Muscles, viscera and tissue increase in size and weight.

v) Rate of carbohydrate utilization decreases. So conservation process takes place.

vi) Fat metabolism increases blood level of free fatty acids and glycerol increases.

vii) Increased retention of sodium, potassium and phosphorus

Pathology

Causes of excessive GH

Tumour, idiopathic (cause not known)

A) Hyper secretion of GH

1) (Gigantism)

It occurs in the growing age (12 to 20 years)

Symptoms

i) Overgrowth of skeleton (Height becomes 7 to 8 feet) . Bones are thickened and deformed.

ii) Increase in the size of muscles, viscera and other body tissues.

iii) Skin and subcutaneous tissue – thick.

iv) BMR increases

2) Acromegaly

If GH secretion increases, in the adult person then in spite of linear growth, transverse growth occurs

Symptoms

i) Enlargement, overgrowth and thickening of bones of limbs, jaw, cheecks and supraorbital ridges.

ii) Skull bones thickened.

iii) Face appears broader.

iv) Hands and feet thickened.

v) Viscera (Heart, lungs, liver and spleen) enlarged.

B) Hyposecretion of GH

1) Dwarfism

Causes

Necrosis (नाश/मृत्यु होना) of the gland, after intracranial hemorrhage

a) Lorain levy type

Symptoms

i) Stunted body growth up to the 3 feet

ii) Sex organs remain infantile

iii) Metabolic functions and intelligence can remain normal.

a) Brissaud type

Symptoms

i) Symptoms are same as above.

ii) In addition, excessive fat deposition on face.

If growth hormone is absent during early life, pituitary Dwarfism results. Excess during this period causes Gigantism. After the end of the growth period, excess growth hormone causes the disease Acromegaly. Pituitary failure has widespread effects, including failure of normal sexual development at puberty, loss of steroid (Cortisol) production and consequent weakness, a low metabolic rate from thyroid underaction, an excessive urinary output (Diuresis) and bleaching of the skin.

Cushing's Syndrome

Cushing's Syndrome is a result of excessive output of some of the pituitary hormones, usually from a tumour. Simmond's disease is the result of extreme under function of the gland, usually from loss of blood supply or destruction by tumour. The effect is severe weight loss, great weakness and underactivity of the thyroid and adrenal glands. Diabetes insipidus is the result of lack pf production of the hormone vasopressin. There is an abnormally large output of urine, resulting in extreme thirst. Deficiency of this hormone causes the tubules of the kidneys to lose their power to concentrate urine.

The other endocrine glands

Prompted by the pituitary, the other endocrine gland, in turn, produce their own hormones such as -

1) **Adrenaline** - From the inner part of the adrenal glands.

2) **Cortisol (Corticosteroid)** - From the outer part of the adrenals.

3) **Thyroxine, Tri - iodothyronine** - From the thyroid gland.

4) **Calcitonin** - From the thyroid gland.

5) **Insulin and Glucagon** - From the pancreas.

6) **Parathyroid** - From the parathyroid gland

7) **Oestrogen and Progesterone** - From the ovaries.

8) **Testosterone** - From the testicles.

All have specific functions. The levels of these hormones in the blood are monitored by the hypothalamus so that the normal balance (homeostasis) is achieved.

2) The Thyroid Gland

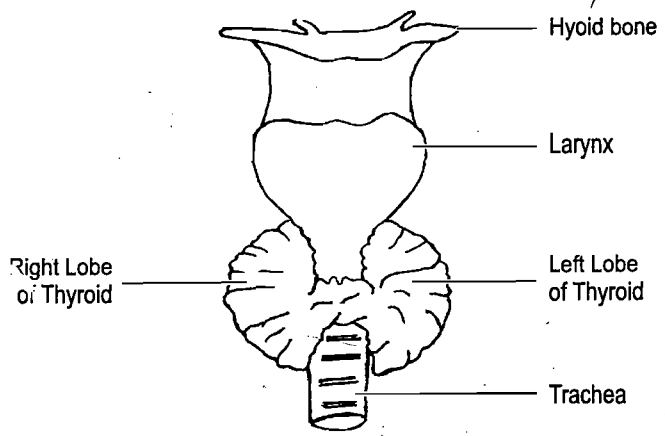

Thyroid Gland

- The thyroid is an endocrine gland.
- Situated in the lower part of the front and sides of neck.
- Wt. = 20-40 gm.
- It consists of right and left lobes that are joined to each other by the isthmus.
- A third, pyramidal lobe may project upwards from the isthmus or from one of the lobes.
- Sometimes a fibrous or fibromuscular band or levator of thyroid gland descends from the body of the hyoid bone to the isthmus or to the pyramidal lobe.

- Accessory thyroid glands are sometimes found as small detached masses of thyroid tissue in the vicinity of the lobes or above the isthmus.
- Structure and function of thyroid gland change in different stages of the sexual cycle in females.
- Its function is slightly increased during pregnancy and lactation and is decreased during menopause.

This lies in the neck, just under the 'Adams Apple' (Larynx) . The Thyroid produces two iodine - containing hormones, thyroxine and tri - iodo thyroxine, which act directly on almost all the cells in the body to control the rate at which they break down and built up chemical substances (Metabolism) .

Excess Thyroid hormone causes an abnormal rate of breakdown (Catabolism) and increased heat production. Fuel stores become depleted and muscles waste. There is a rapid pulse, hyperactivity, jumpiness, anxiety and loss of weight. This is called 'Hyper - thyroidism'. Insufficient Thyroid hormone in adults (Hypo - thyroidism) causes both, physical and mental slowing, sensitivity to cold, weight gain and puffiness of the tissues (Myxoedema) . In babies, lack of thyroid hormones causes cretinism and in other children, failure of growth and development.

The production of thyroid gland hormone is controlled by thyroid - stimulating hormone (TSH) from the pituitary gland. There is a **feed - back mechanism** by which the level of thyroid hormone in the blood also control the pituitary reducing its output of TSH.

A third hormone, Calcitonin, is secreted by cells in the thyroid glands and is released into the blood, but has nothing to do with the thyroid hormones. It's action is on bone, where it interferes with release of calcium. The specialized cells in the thyroid gland which produce calcitonin also monitor the blood calcium level continuously.

Calcitonin control of calcium blood levels acts in opposition to the parathyroid hormone system. It is less important in calcium balance than the parathyroids.

Details of Thyroid gland

Functions

1) **Convert energy into heat (by oxidative phosphorylation – ATP break down)**

Body temperature is maintained by this heat.

40% heat produced in the body is regulated by thyroid gland. So, in the thyroid deficiency BMR is reduced.

2) **Tissue and cellular metabolism is stimulated**

3) **Metabolism of Nutrients**

- **Protein –** Uptake and break down of proteins is accelerated
- **Carbohydrates –** More breakdown of carbohydrates. Hence, in hyperthyroidism, mild diabetic symptoms are observed.
- **Fats –** Blood cholesterol level goes down (Normal cholesterol level in the blood is equal to 200 mg%. in hyperthyroidism cholesterol level can be up to 120-100 mg %)
- **Minerals –** Calcium and phosphates are removed from bones and excreted in more mount.
- In thyroid deficiency. NaCl is retained in ECF (Extra Cellular Fluid) So, increased fluid retention and oedema a develops in Myxoedema.
- **Vitamins –** Thyroxine helps in conversion of β carotene into vitamin A.

4) **Effects on various organs**

i) CNS – Due to deficiency of thyroxine, subnormal development of Neurons (Hence, mental retardation in cretinism,

ii) CVS (Cardio Vascular System) – Due to more O_2 consumption rate and force of cardiac output increases. (Hence in hyper thyroidism, patient complains of (c/o) Tachycardia. Palpitation (Perceiving the self heart sound)

iii) G.I. tract (Gastrointestinal tract) – Thyroxine increases the absorption rate and hence appetite increases.

iv) Bone – Removal of calcium and phosphorus from bones (In hypersecretions due to Demineralization bones become hollow and osteoporosis develops)

v) Testes and ovaries – Normal functioning of gonads.

vi) Blood – Normal maturation of RBC' s

vii) Mammary glands – Maintain and increased secretion of Milk (Lactation)

5) Thyroid hormone is essential for normal metabolic processes. So, normal body development is also depends on this hormone. Hence in thyroid deficiency (Cretinism) retarted growth is seen.

6) Thyroid Hormone maintains body temperature.

7) Thyroid hormone maintains water balance in the body (by controlling ECF – Extra cellular fluid)

3) Parathyroid Glands

These are four small, bean - shaped organs, each about half a centimeter long, which lie in the substance of the thyroid Gland. They secrete the hormone called parathormone, which regulates the fate of calcium and phosphorous in the body. This hormone is automatically produced, if the level of calcium in the blood drops and its presence causes the blood calcium level to rise again by the

release of calcium from the bones, a reduction in calcium loss by the kidneys and increased absorption from the bowel.

Sometimes the Parathyroids enlarge or develop tumours and secrete too much parathormone. The result is excessive loss of calcium from bones resulting in softening. Surgery is usually necessary to remove some of the glands. Insufficient parathormone result in low blood calcium - a potentially dangerous condition featuring abnormal muscles excitability and spasm (Tetany) .

4) The adrenal glands

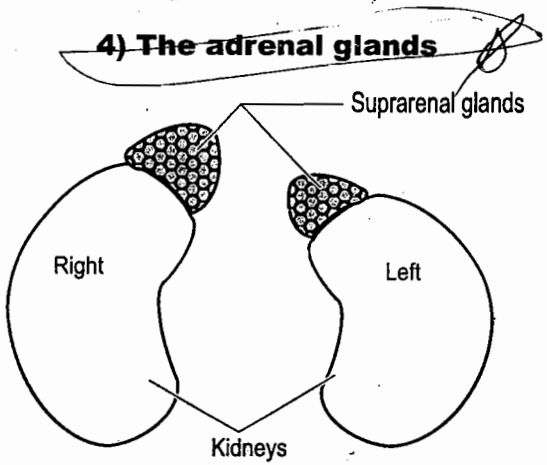

The Suprarenal glands

- A pair of important endocrine glands situated on the posterior abdominal wall over the upper pole of the kidneys, behind the peritoneum.
- Each gland measures

Height	= 50 mm	Breadth	= 30 mm
Thickness	= 10 mm	Weight	= 5 gm

- Right suprarenal is triangular in shape and left is semilunar in shape.
- It is approximately one-third of the kidney at birth and about one-thirteenth of it in adults.

The adrenals are two small but important endocrine organs, sitting like triangular caps - one on the top of each kidney. Each adrenal has two distinct parts, the inner core - which produces adrenaline and an outer layer (Cortex) - which produces three kinds of steroid hormones - Cortisol to help the body to react to stress, Aldosterone to control water balance and sex hormones. Because all these hormones have such a powerful effect on the body, any disorder of the adrenals is serious.

Adrenaline is the secretion of the inner part of the adrenal glands and of certain nerve endings. It is produced when the body is required to make unusual efforts. It speeds up the heart, increases the rate breathing, raises the blood pressure, deflects the blood circulation from the digestive system to the muscles, mobilizes the fuel glucose and causes a sense of alertness and excitement. These changes allow more effective physical action, as may be needed in a situation of danger. It has been described as the hormone of 'fright, fight or flight'. One of the ways in which stress is thought to cause damage is by the over - frequent and inappropriate production of adrenaline and the resultant raising of the blood pressure with possible permanent damage to the vital arteries.

The natural corticosteroid hormones secreted by the cortex of the adrenal glands are cortisol, corticosterone, aldosterone and androsterone. Cortisol and corticosterone are called glucocorticoids because they are concerned with the body's usage of glucose and other nutrients. Aldosterone is called as mineral corticoid because it is responsible for the control of blood levels of minerals such as sodium and potassium and, thereby, control of water balance. Androsterone is an androgen, a male sex hormone similar to testosterone produced in the testicles.

Details of Glucocorticoids

Functions

1) Hypersensitivity due to allergy is inhibited. Histamine synthesis depressed. Check anaphylactic shock (inj. Decadron or Efcorlin should be in the emergency bag.)
2) Produce peripheral vasoconstriction, hence BP rises. This function is useful in the hypotensive shock.
3) Eosinophil count is reduced hence used in the condition of Eosinophilia (Causes are – Bronchial asthma, allergy worms, Tropical eosinophilia)
4) Muscular action is stimulated, hence used in bodyache and backache.
5) Counter act the symptoms of stress.
6) Mental changes – Euphoria (Mental feeling of enjoyment)
7) Promote the secretion of HCl in the stomach. Hence steroids should not be used in the cases of hyperacidity (अम्लपित्त) or peptic ulcer
8) Anti-inflammatory action – used in R.A. (Rheumatoid arthritis)
9) Action on nutrients

a) Proteins – Steroids break down the tissue proteins.
b) Due to steroids, blood sugar level increases (Hence contraindicated in diabetes mellitus)
c) Fats – Steroids increase the absorption of dietary fat (Hence uncontrolled use of steroids may increase the obesity)

Details of Adrenaline (Epinephrine)

Actions of Adrenaline

1) Systolic blood pressure is raised.
2) Rate, force and output of the heart is increased.
3) Coronary blood vessels are dilated.
4) Eyes – pupils are dilated.
5) Skeletal muscles are stimulated, enhanced working capacity, hence delayed fatigue.
6) Smooth muscles of G.I. tract, urinary bladder and uterus are relaxed.
7) BMR is increased, blood glucose level is increased.

Note

Inj. Adrenaline subcutaneous (S/C) is also a life saving drug and should be kept in emergency bag.

Adrenaline acts as a neurotransmitter at the sympathetic system.

Details of Nor-Adrenaline (Nor-Epinephrine)

Actions of Non-adrenaline

1) General vasoconstrictor.
2) Hence systolic and diastolic both the types of blood pressure are raised.
3) **Pathology**

Over secretion of nor-adrenaline

Cause

Benign tumour of adrenal medulla (Pheocromocytoma)

Investigation

Urinary catecholamines (VMA) are increased in 24 hr. urine sample.

5) The pancreas

The pancreas produces digestive enzymes which pass into the first part of the small intestine (Duodenum) . But it is also an endocrine gland, containing groups of specialized cells, in areas known as the Islets of Langerhans, which monitor the concentration of glucose in the blood and secrete appropriate amount of the hormones, insulin and glucagon to lower or raise the amounts of sugar as necessary.

Glucagon is a protein hormone, produced by the islet cells of the gland, which has an effect opposite to that of insulin. Glucagon is also involved in the mobilization of fatty acids for energy purposes. It is used as an emergency measure when the blood sugar levels are dangerously low (Hypo glycaemia) and must be rapidly raised. A glucagon injection can prevent brain damage or even save life.

Insulin acts by forming port on cell membranes which allows glucose to pass in. In its absence, glucose, which is the main fuel of the body, can not get into the cells and accumulates in the blood. The body responds to its need for glucose by releasing more from the muscles which waste away. The wasting disorder caused by insufficient insulin is called Diabetes mellitus and is corrected by injections of insulin.

6) The sex glands

Puberty is the period, occurring usually between the ages of ten and fourteen, when the sexual organs mature, the secondary sexual characteristics begin to develop, the significance of sexuality begins to become apparent to the young person and reproduction becomes possible. The time scale varies considerably, especially, in boys, so that at the age of fourteen one body may appear sexually mature while another may have infantile genitalia.

In both female and male, puberty is initiated by the production, by the pituitary gland, of hormones, called gonado trophines, which cause the ovaries and the testicles to increase, respectively oestrogen and testosterone.

In girls, the first sign of puberty is breast budding or the appearance of pubic hair. One breast may develop more rapidly than the other, but inequalities normally disappear as growth continues. It is usually are mature enough for ovulation to occur so that the first menstrual period is induced. By this time the breast are well advanced and pubic and underarm hair are fully grown. During this period there is an acceleration of growth with a widening of the pubis and characteristic deposition of fat under the skin. When the menstrual periods are fully established at regular intervals, puberty is complete.

The first sign of puberty, in boys is an increase in the rate of growth of testicles and scrotum. This is followed by the beginnings of a beard and the appearance of pubic hair extending upward in a diamond pattern towards the naval. The penis then begins to grow, reahing its adult size in about two years. Sperm production gets under way, under the influence of testosterone and this also prompts the maturation of the prostate gland and the seminal vesicles and enlargement of the voice box (Larynx) so that the voice deepens.

About 80 % of the adult's height is reached before sexual maturation starts, but a considerable spurt in growth and even more in weight gain, occurs during the period around puberty. The body weight may be almost doubled during this period in boys, this mainly due to increase in the weight of the muscles. In girls, muscle weight increases by about 50 % but there is also a large increase in fat deposition. By around eighteen years of this amounts to over 20 % of the body weight, compared to 10 % in young man.

Functions of Testesteron

1) Development and maintains male accessory organs (like seminal vesicles, prostate gland)
2) Enhances spermatogenesis
3) Development and control of secondary sex characters in male (जात व्यंजन लक्षण)
4) Acts as an anabolic hormone in association with GH.
i) Affecting protein metabolism – Positive nitrogen balance
ii) Deposition of calcium in bones and their development
iii) Na, K, Ca, P – These minerals are retained in the body
iv) Stimulates growth and body weight increases.
5) Stimulation of Erythropoiesis
6) BMR is increased.
7) Skin – Subcutaneous tissue, sweat and sebaceous gland are developed and they are under the influence of testesterone.
8) Renal blood flow increases.
9) Development of emotional maturity.

Functions of Oestrogen

Functions

1) Development of female accessory sex organs.
2) Development of female secondary sex characters.
3) Menstrual cycle – Oestrogen influences Follicular phase i.e. 1st half of menstrual cycle. Oestrogen secretion is maximum around ovulation period. During secretory phase (2nd half of M.C.) Oestrogen acts with progesterone.
4) During pregnancy – Oestrogen secretion by placenta keeps on increasing till full term, when myometrium of uterus develops under its action.

5) Vaginal epithelium multiplies and is keratinized by oestrogen and pH of vaginal secretion becomes more acidic (prevents infection)
6) Due to oestrogen, calcium deposition in the bones in stimulated. Hence Osteoporosis or backache are common problems after menopause. In these cases gynecologist suggest HRT (Hormonal Replacement Therapy)
7) Oestrogen prevents atherosclerotic changes. Hence, after menopause, hypertension is common in the females also.

Functions of Progesterone

Secreted by Corpus luteum and by placenta.

Functions

1) Progesterone with oestrogen maintains the secretory phase of menstrual cycle.
Withdrawal bleeding is due to fall in progesterone level.
2) Progesterone helps in embedding of fertilizing ovum and its nourishment.
3) Progesterone influences, the formation of placenta. After 1st Trimester, placenta secretes progesterone.
4) Progesterone serves to make the myometrium of gravid uterus, which is non-sensitive to the action of Oxytocin. Action of Oxytocin starts at the time of parturition (labour)
5) Progesterone influences the development of mammary gland (only the growth but not the milk production)
6) Due to progesterone, birth canal, during pregnancy is enlarged.
7) During the progesterone therapy, development and rupture of Graffian follicle is inhibited resulting unovulatory menstrual cycle.

7) Thymus gland

- No specific hormone is secreted. Secretes Lymphopoietin.
- Thymus gland is situated in the thorax, in the midline, behind the sternum and in front of trachea.
- Weight at birth = 20 gm and at puberty = 40 gm.
- Thymus gland has two lobes with cortex and medulla.

Functions

1) Thymus gland is partly lymphoid and partly endocrine in function.
2) Thymus gland is one of the seats of lymphocyte formation in children.
3) Thymus gland has a relation with the growth of gonads.
4) Thymus helps for the salt deposition in the bones.
5) Recently, it is found that thymus is important in association with immunological processes in the body.
6) Small lymphocytes are said to migrate to various antibody-forming tissues of the body (Spleen, lymph node, thymus etc.)
7) Thymus gland produces 'curare-like substance which depresses Myoneural junction. Hence, in the disease 'Myasthenia Gravis', thymus is found to be enlarged. Myasthenia Gravis is a disease due to deficiency of Ach i.e. Acetylcholine.

संदर्भ ग्रंथ

- आयुर्वेदीय क्रिया शारीर - वैद्य रणजीत राय
- अभिनव शारीर क्रिया विज्ञान - आचार्य प्रियव्रत शर्मा
- दोषधातुमल विज्ञान - शंकर गंगाधर वैद्य
- प्राकृतदोष विज्ञान - आचार्य निरंजन देव
- त्रिदोषविज्ञान - श्री उपेन्द्रनाथ दास
- शारीरं तत्त्वदर्शनम् - हिर्लेकर शास्त्री
- प्राकृत अग्नि विज्ञान - निरंजन देव
- देहधात्वाग्निविज्ञान - वैद्य पं. हरिदत्तशास्त्री
- शारीर क्रिया विज्ञान - श्री मोरेश्वर द. वैद्य
- दोषधातुमल विज्ञान - बसन्त कुमार श्रीमाल
- अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान - डा. शिवकुमार गौड
- प्रायोगिक क्रियाशारीर - आचार्य पी. सो. जैन
- फिजियोलॉजी - गायटन
- कायचिकित्सा परिचय - डा. सी. द्वारकानाथ
- कन्सेप्ट ऑफ अग्नि - वैद्य भगवान दास
- फिजियोलॉजी - चटर्जी
- पुरुष विचयः - आचार्य वी. जे. ठाकर
- चरक - सुश्रुत - वाग्भटादीनामुपयोगिनोऽशाः।